स्वनामधन्य
पं. अम्बिकादत्त व्यास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

[समालोचनात्मक विशिष्ट शोधलेखसंग्रह]

प्रकाशक

राजस्थान संस्कृत अकादमी (संगम)
जयपुर

प्रकाशक—
राजस्थान संस्कृत अकादमी
वीरेश्वर भवन
गणगौरी बाजार
जयपुर—303 002

मूल्य—
100.00 (सौ रुपये मात्र)

मुद्रक
शंकर आर्ट प्रिन्टर्स
त्रिपोलिया
जयपुर

सूचनिका

'शिवराज-विजय' के यशस्वी लेखक

"भारत-भूषण", "भारत-भास्कर", "भारत-रत्न",

"महामहोपदेशक", "गद्य-सम्राट्"

"अभिनवबाण"

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

'प्राच्यशोधसंस्थान' का 'जयन्ती समारोह' प्रतिवेदन

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि राजस्थान संस्कृत अकादमी ने वर्तमान शताब्दी के सर्वोत्कृष्ट गद्यलेखक और संस्कृत साहित्य के इतिहास में "आधुनिक बाण" के रूप में सुप्रसिद्ध पं. श्री अम्बिकादत्त व्यास के जयन्ती समारोह का आयोजन स्वीकृत किया। एसे तो संस्कृत के अनेक उद्भट विद्वान् हुए हैं, परन्तु उन सभी की जयन्तियां आयोजित नहीं हो पाती। केवल महाकवि कालिदास या संस्कृत अकादमी की स्थापना के पश्चात् नियमतः महाकवि माघ जयन्ती का आयोजन राजस्थान प्रान्त में हो रहा है। न कोई भारवि को स्मरण करता है और न कोई भवभूति को। वाल्मीकि और व्यास में भी व्यास का स्मरण फिर भी कभी-कभी आनुषंगिक रूप से गीता जयन्ती के रूप में कर लिया जाता है। महाकवि माघ, जिनके जन्म से राजस्थान प्रान्त स्वयं को धन्य मानता है और जो अपने वैदुष्य के कारण जहां सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रौढ़ पाण्डित्य के लिए अपनी छाप छोड़ता है, उनके विधिवत् स्मरण करने की प्रक्रिया का शुभारम्भ सर्वप्रथम राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के महामंत्री एवं इन पंक्तियों के लेखक के पिताश्री स्वर्गीय पं. वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री को दिया जाता है, जिन्होंने सन् 1958 से इस परम्परा का शुभारम्भ किया था। इस बात का उल्लेख यहां अप्रासंगिक सा लगता है, परन्तु इसके स्मरण का उद्देश्य यह है कि राजस्थान में लब्धजन्मा संस्कृत के विद्वानों का सादर स्मरण उनकी जयन्ती के रूप में यदि राजस्थान प्रान्त में नहीं किया जाएगा तो संभवतः अग्रिम पीढ़ी उन महत्त्वपूर्ण सूचनाओं से वंचित रहेगी,

जिनके कारण यह प्रान्त शूरता, वीरता एवं सारस्वत साधना में सर्वथा अग्रणी रहा है। पं. अम्बिकादत्त व्यास भी राजस्थान प्रान्त के थे और इनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत एक छोटे से गांव में हुआ था। वर्तमान पीढ़ी अथवा अधिकांश अध्येता इस तथ्य से पूर्णतः अपरिचित लगते है, इसलिए संस्कृत अकादमी वस्तुतः धन्यवादार्ह हैं, जिसने सर्वप्रथम पं. अम्बिकादत्त व्यास जयन्ती समारोह का निर्णय लिया तथा इसे आयोजित करने का दायित्व "प्राच्य शोध संस्थान" को सौंपा।

संवत् 1994 अर्थात् 1937 ईसवी में महामहोपाध्याय पं श्री दुर्गा प्रसाद जी द्विवेदी की पुण्यस्मृति में संस्थापित शोध संस्थान का ही नाम "प्राच्य शोध संस्थान" है। वर्तमान में इस संस्थान के निदेशक हैं मनीषी **पं. श्री गंगाधर जी द्विवेदी**। इनका आदेश प्राप्तकर संस्थान के मंत्री के रूप में मैंने इस समारोह का आयोजन निश्चित किया। यह आयोजन 22-23 जनवरी 1990 को राजस्थान विश्वविद्यालय के मानविकी पीठ में आयोजित किया गया। इस द्विदिवसीय समारोह का उद्घाटन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति मनीषी **डा. श्री राजदेवजी मिश्र** ने किया। **डा. श्री सच्चिदानन्द जी सिन्हा**, कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर इस समारोह के विशिष्ट अतिथि थे। मनोविज्ञान विषय के विशिष्ट विद्वान् के रूप ख्यातिप्राप्त कुलपति महोदय संस्कृत एवं संस्कृति के अनन्य संरक्षक प्रमाणित हुए, जिन्होंने इस समारोह के समायोजन के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने इस समारोह के आयोजन के लिए अपने कोष से दो हजार रुपये की आर्थिक सहायता भी प्रदान की। उनका लिखित संदेश यहां अविकल रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है—

पंडित अम्बिकादत्त व्यास जयन्ती समारोह – 22–23 जनवरी 90

"पंडित अम्बिकादत्त व्यास का जन्म भारतीय इतिहास के उस युग में हुआ था, जब भारत के सांस्कृतिक जीवन में नवीन क्रान्ति का प्रवेश हो चुका था। युग की परिस्थितियों का प्रभाव उस समय के कवियों को

रचनाओं से परिलक्षित होता है। यह उन कवियों की महत्ता ही कही जायेगी, जिन्होंने निर्भीक होकर तात्कालिक स्थिति का यथावत् वर्णन किया। उनकी कृतियों से तत्कालीन युग की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक शैक्षणिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के अध्ययन में एक दिशा प्राप्त होती हैं।

1858 ई में जन्मे पं. अम्बिकादत्त व्यास ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। सन् 1857 ई. तक यह देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश शासन के आधीन हो गया था। भारतीयों की स्वाधीनता के सभी प्रयत्न अंग्रेजों की कूटनीति और शक्ति द्वारा विफल कर दिए गए थे, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए दृढ़व्रती भूमिका बनाने में जुटे थे। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार हो रहे थे। हिन्दू बलपूर्वक इस्लाम में दीक्षित कर लिए जाते थे। मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण किया जा रहा था। धार्मिक पुस्तकों को बेगमों के हरमों में पानी गरम करने के लिए जलाया जाता था, हिन्दू-स्त्रियों का सम्मान भी असुरक्षित था। ऐसी विषम स्थिति में पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने छत्रपति शिवाजी के जीवन पर एक सशक्त गद्यकाव्य लिखा। संस्कृत में - जिसका नाम है "शिवराजविजय"। इसी कृति ने पं. व्यास को अमर बना दिया। भारतीयता, राष्ट्रीयता, धार्मिकता तथा एकत्व के प्रबल समर्थक पं व्यास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जनमानस को उद्वेलित किया।

पंडित अम्बिकादत्त व्यास का जन्म राजस्थान प्रांत में हुआ और सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा उत्तरप्रदेश में। जयपुर तथा वाराणसी दोनों ही नगर अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण जगत् प्रसिद्ध हैं। आपने संस्कृत भाषा के साथ हिन्दी भाषा को भी अपनी लेखनी का विषय बनाकर लगभग 80 ग्रन्थ लिखे।

पंडित अम्बिकादत्त व्यास हमारे सम्मुख अनेक रूपों में आज भी विद्यमान हैं। भक्तहृदय, संस्कृति के प्रचारक, दार्शनिक, रसिकहृदय, कौतुकी, हास्यव्यंग्यप्रिय, प्रौढ़ विद्वान्, काव्यशास्त्री, संस्कृतप्रेमी,

राजभक्त, देश और धर्म के अनन्य भक्त, नाटककार, गद्यकाव्य की नवीन शैली के जन्मदाता, उपन्यासकार, अनुवादक, सम्पादक तथा बहुमुखी रुचि व प्रतिभा के धनी रहे हैं। उन्हें विहारभूषण, भारतभूषण, भारतरत्न, भारतभास्कर, घटिकाशतक, शतावधान, धर्माचार्य, महामहोपदेशक, सुकवि व साहित्याचार्य के रूप में जाना जाता है।

ऐसे बहुमुखी व्यक्तित्व सम्पन्न पं. अम्बिकादत्त व्यास के जीवन-दर्शन पर समायोजित इस द्विदिवसीय जयन्ती समारोह के लिए मैं प्राच्यशोध संस्थान व राजस्थान संस्कृत अकादमी को धन्यवाद देता हूं। वस्तुतः उनका यह आयोजन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण एवं सामयिक है।"

सर्वाधिक प्रसन्नता तो इस बात की रही कि गढवाल विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं वर्तमान में प्राच्य विद्या अकादमी के निदेशक **डा. श्री कृष्णकुमार जी अग्रवाल** ने इस जयन्ती समारोह की अध्यक्षता के लिए अपनी स्वीकृति दी। स्मरण रहे डा. कृष्णकुमार जी अग्रवाल वे प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम पं. अम्बिकादत्त व्यास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोधकार्य किया। इनके शोध प्रबन्ध का विषय है, "पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन" उन्होंने यह शोधकार्य सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा. कुन्दनलाल शर्मा के निर्देशन में सम्पन्न कर मेरठ विश्वविद्यालय से पी-एच. डी उपाधि प्राप्त की। मेरी दृष्टि में इनकी इस समारोह में उपस्थिति महत्त्वपूर्ण रही, क्योंकि आप पं. अम्बिकादत्त व्यास के अधिकृत विद्वान् हैं। आपका पं. अम्बिकादत्त व्यास के सम्बन्ध में जो चिन्तन इस समारोह में प्रस्तुत हुआ, उसे प्रथम लेख के रूप में मुद्रित किया जाना चाहिए।

मैं संस्थान की ओर से इस जयन्ती समारोह में उपस्थित होने वाले उद्घाटक महोदय, विशिष्ट अतिथि एवं माननीय अध्यक्ष जी के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूं तथा इस समारोह को अपने शोध-पत्रों के माध्यम से पूर्ण सफलता प्रदान कराने वाले विद्वानों में सर्वश्री

डा. सुधीरकुमार जी गुप्त, डा. ब्रह्मानन्द जी शर्मा, डा. शिवसागर जी त्रिपाठी, डा. पुष्करदत्त जी शर्मा, डा. चन्द्रकिशोरजी गोस्वामी, डा. रूप नारायणजी त्रिपाठी, डा. राधेश्यामजी शर्मा, डा. हिन्दकेसरी जी, डा. जगत् नारायण जी पाण्डे, श्री पद्म शास्त्री, श्रीमती डा. उर्मिल गुप्ता, श्रीमती डा. उषा देवपुरा एवं श्री हरमल रेवारी शोधच्छात्र के प्रति भी हार्दिक आभार अभिव्यक्त करता हूं, जिन्होंने पं. अम्बिकादत्त व्यास के कृतित्व के विभिन्न पक्षों पर चिन्तन-अध्ययन कर महत्त्वपूर्ण शोधलेख प्रस्तुत किए। इस समारोह की सफलता के लिए अनेक विशिष्ट विद्वानों ने अपने शुभ संदेशों से हमारा मनोबल बढाया है, जिनमें डा. मण्डन मिश्र, कुलपति श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, डा एस.जी. कांटावाला, प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता, कला संकाय, एम. एस. यूनिवर्सिटी वडौदा, डा. लक्ष्मणनारायण शुक्ल, आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, अधिष्ठाता संस्कृत संकाय एवं मध्यप्रदेश की "विश्वसंस्कृत प्रतिष्ठानम्" के शाखा अध्यक्ष, डा. रामचन्द्र पाण्डेय, अध्यक्ष ज्योतिष विभाग काशी, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, डा. ज्ञानप्रकाश पिलानिया I.P.S. एवं सदस्य राजस्थान लोक सेवा आयोग अजमेर एवं प्राध्यापिका डा. (श्रीमती) उमा देशपाण्डे, एम. एस. विश्वविद्यालय, बडौदा, प्रभृति का भी विस्मरण नहीं किया जा सकता। वस्तुतः मूलतः धन्यवाद की पात्र है राजस्थान संस्कृत अकादमी की कार्यसमिति एवं आयोजना समिति के वे समस्त सदस्य, जिन्होंने इस जयन्ती समारोह के जयपुर में आयोजन करने का निर्णय किया। एतदर्थ मैं अकादमी के अध्यक्ष डा. मण्डन मिश्र शास्त्री एवं निदेशक श्री ललितकिशोर जी के प्रति भी संस्थान की ओर से साभार कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। अन्त में उन सभी सहयोगियों का स्मरण एवं उनके प्रति अपनी हार्दिक सद्भावना अभिव्यक्त करता हूं, जिनके सक्रिय सहयोग से यह जयन्ती समारोह सफलतापूर्वक सानन्द समपन्न हो सका।

डा. प्रभाकर शास्त्री
संयोजक समारोह एवं मंत्री, प्राच्य शोध संस्थान

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्राच्य शोध संस्थान जयपुर की संस्तुति पर राजस्थान संस्कृत अकादमी की प्रकाशन समिति ने विचार-विमर्श के उपरान्त निर्णय किया तथा महासमिति एवं कार्यसमिति ने प्रकाशन सम्बन्धी निर्णय की पुष्टि की। तदनुसार पं. अम्बिकादत्त व्यास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर समायोजित द्विदिवसीय उपनिषद् में पढ़े गए शोधपत्र अब प्रकाशित हो सके हैं। अकादमी की कार्यसमिति का यह निश्चय श्लाघनीय है कि उसके द्वारा प्रेरित एवं सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा समायोजित उपनिषदों के शोधपत्रों को सम्पादित रूप में प्रकाशित किया जाय। वस्तुतः अकादमी द्वारा स्वीकृत, उस योजना का यह प्रथम प्रयास है। पं. अम्बिकादत्त व्यास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को बहुआयामी कहा जा सकता है। यों तो सामान्य दृष्टि से अध्येता उन्हें "शिवराजविजय" के सफल लेखक के रूप में जानता है, परन्तु उन्होंने शिवराजविजय जैसे अप्रतिम संस्कृत उपन्यास के अतिरिक्त भी बहुत कुछ लिखा है। इसकी जानकारी इस ग्रन्थ में प्रकाशित विभिन्न शोध लेखों के माध्यम से हो सकेगी और संस्कृत का सर्वसामान्य अध्येता भी इन लेखों के अध्ययन से अवश्य लाभान्वित होगा।

यहां द्विदिवसीय पं. अम्बिकादत्त व्यास जयन्ती समारोह में पढ़े गए शोध निबन्धों के विषय में चर्चा करना आवश्यक है, ताकि सभी को उस लेख के लेखक का परिचय भी प्राप्त हो सके।

इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम डा. कृष्णकुमार (अग्रवाल) का यह लेख प्रकाशित किया गया है, जिसे उन्होंने उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष के रूप

में प्रस्तुत किया था। इसका शीर्षक है "पं. अम्बिकादत्त व्यास एक राष्ट्रीय कवि"। जैसा कि विदित है, डा. कृष्णकुमार को पं. अम्बिकादत्त व्यास पर सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण शोध कार्य करने का गौरव प्राप्त है। डा. कृष्णकुमार अनेक वर्षों तक संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अध्येता एवं अध्यापक रहे और आपकी इस क्षेत्र में दी गई सेवायें संस्कृत विभाग गढ़वाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल (श्रीनगर) के अध्यक्ष के रूप में स्मरणीय हैं। सेवानिवृत्ति के उपरान्त आपने प्राच्य विद्या अकादमी की स्थापना की और अब उसके मानद निदेशक के रूप मे कार्यरत हैं। अपने लेख में उन्होंने पं. व्यास के बहुमुखी व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए पं. व्यास को राष्ट्रीय कवि के रूप में चित्रित किया है।

दूसरे लेख का शीर्षक है "पं. अम्बिकादत्त व्यास का व्यक्तित्व" इनके लेखक हैं **डा. शिवसागर त्रिपाठी**। डा. त्रिपाठी वर्तमान में राजस्थान विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं। अध्ययन अध्यापन एवं शोध कार्यों में विशेष अभिरुचि रखने वाले डा. त्रिपाठी ने पं. अम्बिकादत्त व्यास के व्यक्तित्व पर विशेष सामग्री उपस्थित की है। सम्पादन की दृष्टि से यह आवश्यक प्रतीत हुआ है कि इस लेख को सर्वप्रथम स्थान पर प्रकाशित किया जाता। वस्तुतः इसे प्रथम स्थान पर ही मानना चाहिए। अध्यक्षीय वक्तव्य को केवल सम्मान प्रदान करने के लिए डा. कृष्णकुमार का लेख इससे पूर्व प्रकाशित किया गया है।

राजकीय महाविद्यालय, अजमेर के संस्कृत विभाग की प्राध्यापिका **डा. श्रीमती उषा देवपुरा** को पं. अम्बिकादत्त व्यास की समस्त कृतियों पर विवरणात्मक शोधलेख प्रस्तुत करने का अनुरोध किया गया था, इसीलिए उनके शोधनिबन्ध का विषय है—"पं. अम्बिकादत्त व्यास का कृतित्व परिचय"। श्रीमती देवपुरा ने पं. व्यास के समस्त उपलब्ध कृतित्व को दशधाराओं में विभक्त कर उनका सर्वाङ्गीण विवरणात्मक रूप प्रस्तुत किया है।

जैसा कि सर्वविदित है पं. व्यास आधुनिक युग में सफल गद्यकार के रूप में चर्चित हैं। उन्होंने गद्यसम्राट महाकवि बाणभट्ट की शैली का

अनुसरण करते हुए राष्ट्रीय व्यक्तित्व सम्पन्न छत्रपति शिवाजी के जीवन चरित्र पर संस्कृत में सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास लिखा। उनका यह कार्य वस्तुतः श्लाघनीय है, इसीलिए गद्यलेखन के क्षेत्र में पं व्यास के योगदान का मूल्यांकन करने हेतु वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध एवं तपोमूर्ति डा. सुधीर कुमार जी गुप्त से निवेदन किया गया था, जिन्होंने **"संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा में एक अभिनव प्रयोग"** शीर्षक शोधनिबन्ध लिखा। डा. गुप्त के विशेष परिचय की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि वे संस्कृत जगत् में सुपरिचित हैं। हरियाणा प्रान्त में लब्धजन्मा डा. गुप्त का जीवन भी बहुआयामी रहा है। सन् 1961 से लेकर अब तक राजस्थान प्रान्त एवं उसकी राजधानी जयपुर नगरी उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा है। वैदिक विद्वान् के रूप में मान्यता प्राप्त डा. गुप्त केवल वैदिक विद्वान् ही नहीं है, अपितु उनका संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न पक्षों पर भी अध्ययन चिन्तन है। सेवानिवृत्ति के बाद भी आप विगत 15 वर्षों से सारस्वत साधना में जुटे हैं। आपके लगभग सभी ग्रन्थ भारती मंदिर अनुसन्धान शाला से प्रकाशित हुए हैं, जिनकी एक लम्बी सूची है। आप उस अनुसन्धान शाला के संस्थापक एवं मानद निदेशक के पद पर प्रतिष्ठित हैं।

बहुचर्चित किंवा भारतवर्ष के समस्त विश्वविद्यालयों में अध्यानार्थ स्वीकृत *'शिवराजविजय'* का शास्त्रीय मूल्यांकन करने के लिए राजस्थान प्रान्त के मेधावी समालोचक, गद्य-पद्य एवं नाट्य विधा के मर्मस्पर्शी विचारक, वर्तमान में वनस्थली विद्यापीठ मानित विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा. **नन्दकिशोर गोस्वामी** से सभी परिचित हैं। इनके शोध निबन्ध का विषय रहा है ***'शिवराजविजय की शास्त्रीय समीक्षा'***। इसमें इन्होंने वस्तु, नेता एवं रस के अतिरिक्त पात्र-परिचय, शिल्पसौन्दर्य, भाषा शैली आदि प्रमुख छः तत्त्वों के आधार पर इस लेख को लिखा है। वस्तुतः यह सर्वसामान्य के लिए ज्ञानोपयोगी है।

प्रत्येक रचना में एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु समालोचनीय होता है, जिसे चरित्र-चित्रण कहा जाता है। चरित्र-चित्रण के द्वारा प्रमुख पात्रों

का व्यक्तित्व प्रकट होता है, यदि उस चरित्र-चित्रण को सर्वाङ्गीण दृष्टि से मूल्यांकित किया जाए। इस दृष्टि से मनोविश्लेषण का पक्ष महत्त्वपूर्ण प्रमाणित होता है, क्योंकि मनोविश्लेषण पात्रों के केवल बाह्यरूप की चर्चा नहीं करता, अपितु अन्तर्मन की भी चर्चा करता है। संस्कृत भाषा के माध्यम से प्रस्तुत **"शिवराजविजये चरित्रचित्रणम्"** शोधलेख के लेखक हैं **डा. पुष्करदत्त शर्मा**। डा. शर्मा राजस्थान प्रान्त की विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं। अनेक भाषाओं के जानकार, अनेक ग्रन्थों के लेखक, विचारक, चिन्तक एवं मनीषी डा. शर्मा ने आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य पर शोध कार्य किया है और आप इस क्षेत्र के उल्लेखनीय विवेचक हैं। मनोविश्लेषणात्मक विवेचक के रूप मे भी आप विशेषत: संदर्भित हैं। आपने अपने निर्देशन में जो अधिकांश शोध कार्य कराया है, वह भी मनोविश्लेषणपरक है। संस्कृत साहित्य के विवेचनात्मक क्षेत्र में मनोविश्लेषणात्मक चर्चा के सूत्रधार के रूप मे आप सुप्रतिष्ठित हैं। इस महत्त्वपूर्ण लेख में भी आपने "शिवराजविजय" के प्रमुख पात्रों का जो चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया है वह मनोविश्लेषण के प्रमुख बिन्दुओं पर आधारित है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह लेख महत्त्वपूर्ण है।

सातवां लेख भी संस्कृत भाषा में निबद्ध है। इसके लेखक हैं केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,जयपुर के व्याकरण विभागाध्यक्ष **डा. हिन्दकेसरी**। संस्कृत व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से 'शिवराजविजय' का मूल्यांकन भी नितान्त अपेक्षित था, इसके लिए नीरक्षीर विवेचक ऐसे विद्वान् लेखक की आवश्यकता थी, जो शब्दप्रयोग के औचित्य की दृष्टि से चिन्तन कर सके। जैसाकि सर्वविदित है शिवराजविजय बाणभट्ट की अलकृत शास्त्रीय शैली का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे प्रयुक्त अनेक भाषा प्रयोग ऐसे दुरूह भी हैं, जिनकी सिद्धि एक वैयाकरण ही कर सकता है। अपने अत्यन्त संक्षिप्त एवं सारगर्भित इस लेख में डा. केसरी ने शिवराज-विजय में प्रस्तुत कुछ भाषा शब्दों की महत्त्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है।

"शिवराजविजय" का सर्वाङ्गीण किंवा सभी दृष्टियों से विवेचना हो, इस लक्ष्य की पूर्ति में धर्म और दर्शन की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की है—

सुप्रसिद्ध अलंकार शास्त्री एवं सुप्रतिष्ठ दार्शनिक विद्वान् डा. ब्रह्मानन्द शर्मा ने। संस्कृत भाषानाध्यन से लिखे "शिवराजविजये धर्मस्य दर्शनस्य च सन्निवेश." शीर्षक शोधलेख में डा. शर्मा ने उपर्युक्त दोनों तत्त्वों धर्म एवं दर्शन के अनुसार शिवराजविजय का मूल्यांकन किया है। न केवल राजस्थान प्रान्त में अपितु, समस्त भारत भूमण्डल में काव्य - सत्यालोक सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक अर्थात् सत्य को काव्य को आत्मा स्वीकार करने के पक्षधर, वैदिक, साहित्यशास्त्र एवं भारतीय दर्शन के गम्भीर विवेचक डा शर्मा का व्यक्तित्व यथानामस्तथागुणः के अनुरूप है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के पूर्वनिदेशक के रूप में भी आपकी सेवाएं संस्मरणीय हैं। राजस्थान के आधुनिक विद्वानों की गणना में आपको विस्मृत नहीं किया जा सकता। अलंकार शास्त्र के साथ गम्भीर चिन्तक हैं और इसी पर आपने शोधकार्य भी किया है तथा अनेक महत्त्वपूर्ण लेख भी प्रकाशित किए हैं।

"शिवराजविजय" संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक कृति के रूप में चर्चित है। उसमें छत्रपति शिवाजी के जीवन चरित्र का विवेचन होने के कारण ही ऐतिहासिक नहीं माना गया है, अपितु ऐसे अनेक बिन्दु है, जो उसे एक सफल ऐतिहासिक रचना स्वीकारने में सहयोगी हैं। ऐतिहासिक विवेचना को सप्रमाण प्रस्तुत करने के लिए वर्तमान में केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर के सा हत्य - विभाग में प्राध्यापक के रूप में कार्यरत डा. रूपनारायण त्रिपाठी से अनुरोध किया गया था कि वे शिवराजविजय की ऐतिहासिक बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में समालोचना प्रस्तुत करें, इसीलिए उन्होंने "शिवराजविजय की ऐतिहासिकता" विषय पर शोधपत्र प्रस्तुत किया। ऐतिहासिक दृष्टि से किया गया यह विवेचन वस्तुतः चिन्तनीय एवं श्लाघनीय है।

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर के साहित्य विभागाध्यक्ष डा. श्री जगन्नारायण पाण्डेय ने पं. अम्बिकादत्त व्यास के उस रूप की समीक्षा की है, जो लोक में बहुत चर्चित है। पं. व्यास को लोग अभिनव बाण के रूप में जानते हैं, परन्तु उनका विचार कितना लोकपतिक है, यह इन

शोधलेख द्वारा प्रमाणित होता है। सामान्यतया लोक किसी विद्वान् को किसी भी पूर्ववर्ती विद्वान् की समकक्षता तो प्रदान कर देते हैं, परन्तु अन्त में वह अतिरेक व्यंजित ही प्रमाणित होती है, परन्तु पं. व्यास के लिए प्रयुक्त 'अभिनव बाण' का प्रयोग इसका अपवाद है। डा. पाण्डेय ने रस-योजना, गुण, संवाद-सौष्ठव, प्रकृतिचित्रण, अलंकारयोजना के अतिरिक्त नूतन संस्कृतशब्दराशि के प्रयोग की विलक्षणता प्रदर्शित कर उसे गद्यसम्राट् बाणभट्ट के समकक्ष मानने के लिए अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया है।

शिवराजविजय के मनन चिन्तन से हटकर पं. व्यास की अन्यान्य कृतियों पर भी प्रकाश डालना आवश्यक था। इसके लिए राजकीय महाविद्यालय, अजमेर की वर्तमान प्राध्यापिका (पूर्वतः सनातन धर्म महाविद्यालय, ब्यावर में कार्यरत) श्रीमती डा. उर्मिल गुप्ता से अनुरोध किया गया कि वे पं. व्यास की भक्तिप्रधान रचनाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि से अपना चिन्तन प्रस्तुत करें। श्रीमती गुप्ता ने व्यास जी की समस्त हिन्दी एवं संस्कृत भाषात्मक रचनाओं में भक्तितत्त्व को खोजा है तथा उसका महत्त्वपूर्ण निरूपण भी किया है। इनके शोधनिबन्ध का शीर्षक है "प. अम्बिकादत्त व्यास की भक्तिप्रधान रचनाएं"।

शिवराजविजय का धार्मिक दृष्टि से, सांस्कृतिक दृष्टि से, शास्त्रीय दृष्टि से, चरित्रचित्रण की दृष्टि से एवं अन्यान्य दृष्टियों से तो चिन्तन प्रस्तुत हो चुका, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से भी उसका मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाना आवश्यक प्रतीत हुआ। एतदर्थ "लेनिनामृतम्" महाकाव्य के प्रणेता महाकवि "श्री पद्मादत्त ओझा" ने, जो पद्म शास्त्री के नाम से जाने जाते हैं, शिवराजविजय के सांस्कृतिक पक्ष पर अपना शोधलेख प्रस्तुत किया। इस लेख का शीर्षक भी "शिवराजविजय का सांस्कृतिक पक्ष" ही था।

संस्कृत विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय के मेधावी शोधछात्र एवं वर्तमान में पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त डा हरमल रेबारी ने शिव-

राजविजय के कथानक पर विवेचनात्मक चिन्तन प्रस्तुत करने का विचार अभिव्यक्त किया, इसीलिए प्राच्य शोध संस्थान ने श्री रेवारी को **"पं. अम्बिकादत्त व्यास विरचित शिवराजविजय का कथानक: मूलस्रोत व परिवर्तन"** शीर्षक शोधलेख प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की गई। इस शोधलेख में डा. रेवारी ने ऐतिहासिक एवं काल्पनिक सभी दृष्टियों से सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। यह लेख भी महत्त्वपूर्ण है।

इन पंक्तियों के लेखक, प्राच्य शोध संस्थान के महामंत्री तथा इस ग्रन्थ के प्रकाशन के समय राजस्थान संस्कृत अकादमी के निदेशक का पदभार वहन करने वाले अकिंचन किंवा विद्वच्चरणचञ्चरीक ने यह पाया कि पं. व्यास की अन्यान्य रचनाओं पर तो पर्याप्त प्रकाश डाला गया, परन्तु उनके नाट्य साहित्य पर चिन्तन प्रस्तुत नहीं हुआ। वस्तुतः यह चिन्तन राजस्थान विश्वविद्यालय के तत्कालीन विभागाध्यक्ष डा. हरिराम जी आचार्य को प्रस्तुत करने के लिए निवेदन किया गया था परन्तु उनके द्वारा चिन्तन प्रस्तुत न करने पर समापन सत्र में मुझे ही नाट्य रचनाओं की विवेचना करनी पड़ी थी, जिसे कालान्तर में मैंने शोध-निबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया। इस चिन्तन का शोधलेख है **"पं. अम्बिकादत्त व्यास का नाट्य साहित्य"**।

इस प्रकार पं. अम्बिकादत्त व्यास के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर समायोजित द्विदिवसीय उपनिषद् में प्रस्तुत किए गए समस्त शोधनिबन्ध राजस्थान संस्कृत अकादमी के द्वारा पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। आशा है इन शोधनिबन्धों के माध्यम से अध्येतावर्ग विशेष लाभान्वित होगा। विज्ञेषु किमधिकम्।

गुरुपूर्णिमा,
संवत् 2049

निवेदक
डा. प्रभाकर शास्त्री
निदेशक,
राजस्थान संस्कृत अकादमी,
जयपुर

पं० अम्बिकादत्त व्यास-एक राष्ट्रीय कवि

● डा० कृष्णकुमार

पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म भारतीय इतिहास के उस युग में हुआ था, जबकि एक ओर तो हजारों मील सुदूर पश्चिम से आये अंग्रेजो का शासन सुदृढ़ हो गया था और दूसरी ओर भारतवर्ष के सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और धार्मिक जीवन में नवीन क्रान्ति का, परिवर्तनों का प्रवेश होने लगा था। अतः प्रखर प्रतिभा और व्यक्तित्व के धनी इस महान् युगकवि की कृतियों में उन भावों का उद्रेक स्वाभाविक था, जो इनको महत्तम ऊंचाइयों तक पहुंचाकर इसे राष्ट्रीय कवि की छवि प्रदान करने में समर्थ हुये।

पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म इसी जयपुर नगर के सिलावटों के मोहल्ले में अपनी ननिहाल में चैत्र शुक्ल अष्टमी सम्वत् १९१५ (१८५८ई०) में हुआ था। १९ नवम्बर १९०० ई० तक, लगभग ४१ वर्ष की आयु तक यह भगवती सरस्वती का वरद पुत्र अपनी लेखनी के चमत्कार से भारत की भूमि को आलोकित करता रहा। यद्यपि इस महान् कवि की आयु स्वल्प ही थी, तथापि विशाल साहित्य के सृजन ने इसको अविनश्वर यश प्रदान किया। व्यासजी की रचनाओं की विधायें और भावनायें इतनी विविध और बहुमुखी है कि इस प्रतिभा का उदाहरण अन्यत्र प्राप्त करना कठिन ही है। व्यासजी ने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में समान रूप से साहित्य का सृजन किया था। गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, चम्पू, महाकाव्य, दृश्यकाव्य, लघुकाव्य, मुक्तक आदि विविध विधाओं में ये रचनायें काव्य साहित्य, विज्ञान, कौतुक, उपन्यास, यात्रा, दर्शन आदि अनेक विषयों का स्पर्श करती हैं। व्यासजी की रचनाओं में एक ओर

राजविजय के कथानक पर विवेचनात्मक चित्रण प्रस्तुत करने का विचार अभिव्यक्त किया, इसीलिए प्राच्य शोध संस्थान ने श्री रेवारी को **"पं. अम्बिकादत्त व्यास विरचित शिवराजविजय का कथानक: मूलस्रोत व परिवर्तन"** शीर्षक शोधलेख प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की गई। इस शोधलेख में डा. रेवारी ने ऐतिहासिक एवं काल्पनिक सभी दृष्टियों से सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। यह लेख भी महत्त्वपूर्ण है।

इन पंक्तियों के लेखक, प्राच्य शोध संस्थान के महामंत्री तथा इस ग्रन्थ के प्रकाशन के समय राजस्थान संस्कृत अकादमी के निदेशक का पदभार वहन करने वाले अकिंचन किंवा विद्वच्चरणचञ्चरीक ने यह पाया कि पं. व्यास की अन्यान्य रचनाओं पर तो पर्याप्त प्रकाश डाला गया, परन्तु उनके नाट्य साहित्य पर चिन्तन प्रस्तुत नहीं हुआ। वस्तुतः यह चिन्तन राजस्थान विश्वविद्यालय के तत्कालीन विभागाध्यक्ष डा. हरिराम जी आचार्य को प्रस्तुत करने के लिए निवेदन किया गया था परन्तु उनके द्वारा चिन्तन प्रस्तुत न करने पर समापन सत्र में मुझे ही नाट्य रचनाओं की विवेचना करनी पड़ी थी, जिसे कालान्तर में मैंने शोध-निबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया। इस चिन्तन का शोधलेख है **"पं. अम्बिकादत्त व्यास का नाट्य साहित्य"**।

इस प्रकार पं. अम्बिकादत्त व्यास के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर समायोजित द्विदिवसीय उपनिषद् में प्रस्तुत किए गए समस्त शोधनिबन्ध राजस्थान संस्कृत अकादमी के द्वारा पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। आशा है इन शोधनिबन्धों के माध्यम से अध्येतावर्ग विशेष लाभान्वित होगा। विज्ञेषु किमधिकम्।

गुरुपूर्णिमा,
संवत् 2049

निवेदक
डा. प्रभाकर शास्त्री
निदेशक,
राजस्थान संस्कृत अकादमी,
जयपुर

पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक राष्ट्रीय कवि

■ डा० कृष्णकुमार

पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म भारतीय इतिहास के उस युग में हुआ था, जबकि एक ओर तो हजारों मील सुदूर पश्चिम से आये अंग्रेजों का शासन सुदृढ़ हो गया था और दूसरी ओर भारतवर्ष के सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और धार्मिक जीवन में नवीन क्रान्ति का, परिवर्तनों का प्रवेश होने लगा था। अतः प्रखर प्रतिभा और व्यक्तित्व के धनी इस महान् युगकवि की कृतियों में उन भावों का उद्रेक स्वाभाविक था, जो इनको महत्तम ऊंचाइयों तक पहुचाकर इसे राष्ट्रीय कवि की छवि प्रदान करने में समर्थ हुये।

पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म इसी जयपुर नगर के सिलावटों के मोहल्ले में अपनी ननिहाल में चैत्र शुक्ल अष्टमी सम्वत् १९१५ (१८५८ ई०) में हुआ था। १९ नवम्बर १९०० ई० तक, लगभग ४१ वर्ष की आयु तक यह भगवती सरस्वती का वरद पुत्र अपनी लेखनी के चमत्कार से भारत की भूमि को आलोकित करता रहा। यद्यपि इस महान् कवि की आयु स्वल्प ही थी, तथापि विशाल साहित्य के सृजन ने इसको अविनश्वर यश प्रदान किया। व्यासजी की रचनाओं की विधायें और भावनायें इतनी विविध और बहुमुखी है कि इस प्रतिभा का उदाहरण अन्यत्र प्राप्त करना कठिन ही है। व्यासजी ने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में समान रूप से साहित्य का सृजन किया था। गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, चम्पू, महाकाव्य, दृश्यकाव्य, लघुकाव्य, मुक्तक आदि विविध विधाओं में ये रचनायें काव्य साहित्य, विज्ञान, कौतुक, उपन्यास, यात्रा, दर्शन आदि अनेक विषयों का स्पर्श करती हैं। व्यासजी की रचनाओं में एक ओर

जहां जीवन के विविध पक्षों का उल्लास है, वहीं दूसरी ओर देश, जाति और धर्म की दुरवस्था के प्रति गहन पीड़ा की अभिव्यक्ति होकर स्वातन्त्र्य की भावनाओं को उद्दीप्त करने का उद्बोधन भी है।

व्यासजी की लेखनी अति सशक्त तथा ओजगुण से सम्पन्न रही है। आपका जन्म राजपूती शौर्य के केन्द्र उस जयपुर नगर में हुआ, जहां ज्ञान-विज्ञान के धनी पण्डितों को और कला-कुशल शिल्पियों को आश्रय मिलता रहा है। आपकी साहित्य की साधना विद्या के महान् केन्द्र काशीनगर में हुई। अतः इन रचनाओं में भगवती दुर्गा और देवी सरस्वती दोनों का प्रत्यक्ष और परोक्ष आशीर्वाद निहित रहना स्वाभाविक ही था। व्यासजी के जीवनवृत्त का अवलोकन करने से यह तथ्य निश्चय ही अभिव्यञ्जित होता है कि साहित्य की रचना के साथ ही वे शारीरिक बल के विकास एवं शस्त्रों के सञ्चालन की दक्षता को भी बहुत महत्त्व देते थे।

पं० अम्बिकादत्त व्यास की विविध विधाओं से सृजित अनेक विषयों से सम्बद्ध रचनायें उनको राष्ट्रीय कवि के पद पर प्रतिष्ठित करती हैं। उनकी कृतियों में मानव जीवन के सभी पक्षों का स्पर्श हुआ है, तथापि उनके द्वारा राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की भावनाओं को उद्दीप्त करना बहुत अधिक महत्त्व रखता है। उनका यह चरित्र 'शिवराज-विजय' में सबसे अधिक झलकता है। देश, धर्म और जाति को उद्बोधित करने वाली यह एक ही कृति कवि की उज्ज्वल ओजस्विता की अभिव्यक्ति में समर्थ है। संस्कृत भाषा में लिखा गया यह प्रथम आधुनिक विधा का उपन्यास है, जिसमें महान् स्वतन्त्रता सेनानी छत्रपति शिवाजी के चरित्र का वर्णन किया गया है। भारत के इस महान् सपूत ने अत्यधिक विपरीत परिस्थितियों में भी देश और जाति की स्वतन्त्रता का दीपक प्रज्वलित किया था। शताब्दियों तक मुस्लिम आक्रान्ताओं और शासकों के त्रास से संत्रस्त हिन्दुओं में धार्मिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता की मशाल आपने जलाई थी। इस महान् मराठा वीर के शौर्य और कूटनीति निपुणता के साथ व्यासजी ने राजपूती शौर्य एवं धर्मानुराग संयुक्त करने का प्रयत्न किया। सम्भवतः व्यासजी की यह भावना

रही थी कि राजपूताना के क्षत्रिय वीरों की धमनियों में शौर्य से उद्दीप्त उस रुधिर का प्रवाह अभी भी है, जो इस देश को स्वतन्त्र करके विश्व का मुकुटमणि बनाने का सामर्थ्य रखता है। निकट भूत के इतिहास के ज्ञाता इस बातको जानते है कि धार्मिक और सामाजिक जागरण के जनक महर्षि दयानन्द ने अपना अन्तिम समय राजपूताना के राजाओं की ओजस्विता को उद्दीप्त करने में ही व्यतीत किया था। वे इन राजाओं को सगठित करके भारतमाता की दासता की जजीरों को विच्छिन्न कर स्वाधीनता के सूर्य को उदित होता देखना चाहते थे। काशी मे महर्षि दयानन्द और पं० अम्बिकादत्त व्यास की सक्षिप्त भेट भी हुई थी। यदि इन कवियों और सुधारकों के प्रयास सफल होते तो इस देश का इतिहास दूसरे ही प्रकार से लिखा जाता और भारतभूमि का यह मर्मान्तिक विभाजन भी न होता।

पं० अम्बिकादत्त व्यास का 'शिवराज-विजय' स्वातन्त्र्य की भावनाओं को प्रकाशित करने वाला उज्ज्वल कान्तिमान् सूर्य है। इसका प्रारम्भ ही सूर्योदय के वर्णन से हुआ है। इसमे व्यासजी ने कल्पना की है कि स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये शिवाजी ने प्रत्येक दो कोस (गव्यूति) पर आश्रमों की परम्परायें स्थापित की थीं। यहा सन्यासियों, भक्तों और वैरागियों के वेष मे सैनिक रहते थे। वे लिखते है –

इतः पुण्यनगरपर्यन्तं प्रति गव्यूत्यन्तरालं महाव्रताश्रमपरम्पराः सन्ति । सर्वत्र कुटीरेषु सन्यासिनो भक्ता विरक्ताश्च निवसन्ति ।

इन आश्रमों मे से एक मे गुरु ब्रह्मचारिगुरु है। वे अपने छात्रों में शस्त्र-संचालन की दक्षता उत्पन्न करने के साथ-साथ उनमे देश-धर्म-जाति के प्रति स्वाभिमान की भावनाओं को भी सम्भृत करते हैं। यह एक प्रकार से शिवाजी की प्रच्छन्न सैनिक चौकी है, जो बीजापुर और देहली के मुसलिम शासकों की सैनिक गतिविधियों पर सतत दृष्टि रखती है। भारतवर्ष में इस प्रकार के आश्रमों की परम्परा बहुत प्राचीन काल से रही है। नगरों के बाहर उद्यानों में अखाड़े होते थे। यहां युवक आकर व्यायाम करते थे और विविध शस्त्रों के संचालन का अभ्यास भी करते थे।

व्यासजी का हृदय इस बात से अत्यधिक उत्पीड़ित और विह्वल रहता था कि आर्यों के वैदिक धर्म के, सनातन धर्म के इस देश में यवनों ने बाहर से आकर अधिकृत करके असंख्य अत्याचार किये हैं और जान-बूझकर वे इस धर्म को नष्ट करने में लगे हैं। वे लिखते हैं –

"केवलमार्यस्वभावानामार्यजनानां क्लेशनार्थमेव गोहिंसनम्, प्रतिमाखण्डनम्, दीनहीनसनातनधर्म-वैदिकधर्म-शरणानामेवास्माकं जीवजीवं करग्रहणं महतां कार्यं वा? वाराणस्यादि-देवतीर्थेषु बलात् पातितानां मन्दिराणां भग्नावशेषैः कपाट-देहलीपाषाणेष्टिका-प्रचयैरेव स्वमज्जित रचना च महतां कार्यं वा?"

मुसलमानों द्वारा गोवध के आग्रह को देखकर पं० अम्बिकादत्त व्यास का हृदय प्रज्ज्वलित रहता था। गोसंकट नाटक में उन्होंने लिखा है–

मुसलमान केवल हिन्दुओं को चिढ़ाने के लिए गोवध करते हैं। गौओं की अति उपयोगिता है। गौ का वध करना केवल उसी का प्राण लेना नहीं है, अपितु सब भारतवासियों के प्राण लेने का उपक्रम करना है।

हिन्दूजाति और धर्म पर होने वाले अत्याचारों का व्यासजी ने विस्तार से ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है –

"तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः रचिताः, रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा-गङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परःसहस्राणि देवमन्दिराणि धूलिसात्कृतानि।"

अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धृत्य धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते। क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, कदाचिद् धनानि लुठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः, इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।"

व्यासजी वाराणसी नगरी में मानपुर मोहल्ले में गंगा के तटपर ही रहते थे। यहा से काशी विश्वनाथ का मन्दिर समीप है। उसके पीछे मन्दिर को तोड़कर बनाई गई ज्ञानवापी मस्जिद है। व्यासजी ने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या आदि स्थानों की यात्रा करके वहा के मन्दिरों की दुर्दशा को देखा था। इनका उन्होंने मनोविदारक वर्णन किया है–

"हा विश्वम्भर! काश्यां विश्वनाथमन्दिरं धूलीकृतमेतं', हा माधव! तत्रैव विन्दुमाधव-मन्दिरस्य विन्दुमात्रमपि चिह्नं न प्राप्यते। हा गोविन्द! तव विहारभूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्ददेवमन्दिरस्यापोट्टिकावृन्द स्वच्छन्दं मपकैराक्रम्यते।"

देश की स्वतन्त्रता और धर्म की रक्षा के लिये व्यासजी ने शिवाजी को अपना आदर्श बनाया था। शिवाजी वीर थे, उनमे देश-धर्म-जाति की रक्षा करने और स्वतन्त्रता प्राप्त करने की उत्कट भावनाये निहित थीं और वे कूटनीति में भी निपुण थे। शिवाजी के विषय मे व्यासजी ने लिखा है–

"कश्चन प्रातःस्मरणीयः स्वधर्माविद्रुहिलः शिव इव धृतावतारः शिववीरः सतीनां सतां श्रेवर्णस्यार्य-कुलस्य, धर्मस्य भारतवर्षस्य च आशासन्तान-वितानस्यायमेवाश्रयः।

सर्वामप्यउर्वराक्रमाम् श्यामामपि यशःसमूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम्, कुशासनामपि सुशासनाश्रयाम्, स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनाम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम्, शोभितविग्रहामपि दृढसन्धि-बन्धाम्, कलित-गौरवामपि कलितलाघवाम्।"

शिवाजी में देश और धर्म की रक्षा की प्रबल भावना है। वे बचपन से ही इसके स्वप्न देखा करते थे –

"महाराज! बाल्येऽहं गिरौ स्वप्नानपश्यम्, यद् दुराचारैः म्लेच्छैः सह प्रतियोद्धुं स्वदेशस्य स्वातन्त्र्यं धर्मं च रक्षितुं मां स्वयं भगवती दुर्गाऽऽदिशति।"

व्यासजी ने शिवाजी के सहायकों के रूप में मुख्य रूप से राजपूत क्षत्रिय वीरों को पात्र कल्पित किया है। यद्यपि माल्यश्रीक आदि कुछ मराठा वीर भी उन्होंने निहित किये, जो इतिहास की सचाई है, परन्तु उनकी भूमिका इस काव्य में कम ही है। उनके मुख्य सहायक हैं– ब्रह्मचारि-गुरु वीरेन्द्रसिंह, गौरसिंह, श्यामसिंह और रघुवीरसिंह। ये सभी राजपूत क्षत्रिय हैं तथा जयपुर के सामन्त कुलों की सन्तान हैं। इनके पुरोहित भी राजपूताने के ही हैं। ये सभी धर्म की रक्षा के लिये स्वयं को आहूत करने के लिये तत्पर हैं। राजपूताने के शौर्य का वर्णन व्यासजी ने निम्न शब्दों में किया है–

"अस्ति कश्चन धैर्यधारिधुरन्धरैः धर्मोद्धारधौरेयैः, सोत्साहसचञ्चच्चन्द्रहासैः, सुशक्ति-सुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्न-परिपन्थिगलगलच्छोणितच्छुरितच्छुन्नच्छुरिकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः, स्वप्रतिकूलकुलोन्मूलनानुकूलव्यापारव्यासक्तशूलैः, घनविधून-विघट्टितघर्घराघोष-घोरशतघ्नीकैः प्रार्थयिशुण्डिशुण्डाखण्डनोद्दण्डभुशुण्डीकैः, प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्यभाण्डप्रकाण्डकाण्डैः क्षत्रियवर्यैरार्यधर्यैश्च व्याप्तो राजपुत्रदेशः।"

राजपूताने के ये वीर क्षत्रिय जाति-धर्म-देश के लिये सर्वस्व अर्पित करने के लिये सदा तत्पर हैं। शिवाजी का सहायक गौरसिंह इसी कोटि का क्षत्रिय है –

"पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः। तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति, महान्तो हि धर्मस्य कृते लुठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न च धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षार्थं सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि वर्षास्वपि, ग्रीष्मघर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, व्यालयूथेष्वपि, सिंहसंघेष्वपि, वारणवारेष्वपि, चन्द्रहासचमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति। तद्धन्याः स्थ यूयं आर्यवंशीयाः, वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः।"

व्यासजी की यह मान्यता रही है कि आर्य जाति या, हिन्दुओं का पतन और पराजय का एक मात्र कारण उनमें एकता का अभाव है।

यदि सभी आर्यजन मिलकर रहते, शत्रुओं का मिलकर सामना करते तो इतिहास कुछ और ही लिखा जाता –

"यद् भाग्यैरेवां भारत-परिपन्थिनां यवनानां न भवति पारस्परिक-प्रीतिरस्माकं भारतीयक्षत्रियाणाम्। तद् भारताभिजन-भूरिभाग्यभवन भारताभिभावक-भाग्यपराभवनं च सर्वथैवयमेवाऽऽसादनीयमस्माभिः। पारस्परिकविरोधज्वरावलीढानि दुर्बलानि भवन्ति बलानि, प्रेमपीयूष-धाराऽभ्युक्षितानि च महामहांसि सम्पद्यन्ते तेजांसि।"

अपने ही देशवासियों के साथ, धर्मावलम्बियो के साथ युद्ध करने के लिये तथा यवनों के राज्य का विस्तार करने के लिये आये मारवाड नरेश यशवन्तसिंह और जयपुर नरेश जयसिंह को सशक्त और ओजस्वी वाणी में शिवाजी ने उद्बोधित करने का प्रयास किया –

"कं च भस्मसात्कर्तुं ज्वालाजटिल एष भवत्कोपदावानल? ये भवन्त-मातिथो ब्रुवन्ति, तेषामेव रक्तरेणुकाराशिमरुणयितुम्? ये भवन्माहात्म्य-समाकर्णनेन मोदन्ते, तेषामेव मेदोभिर्मेदिनीं मेदस्विनीं निर्मातुम्? ये भवन्तं निजकुलावतंसं मन्यन्ते, तेषामेव वंशं ध्वंसयितुम्? ये निरर्थं दीनान् लुण्ठन्ति, कुलीनकन्या अपहरन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, सद्यो सुवर्णः प्रजानां मस्तकर्नेयनेश्च चिक्रीडन्ति, तानेव वैदिकमर्यादाविलोपनदृतिनो वैरिहतकान् वा वर्धयितुम्।

सत्यं योत्स्यते, स्ववंशजातानामेव क्षत्रिय-बालकानां वक्षश्छुरि-काभिर्विदारयिष्यते, सद्यश्छिन्न-ब्राह्मणकन्धर-विनिसद्रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते। यवनहस्तेऽधिकारं समर्प्य महामांसविक्रया च भारतमूर्वंक्ष्यते।"

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि औरंगजेब ने शिवाजी का दमन करने के लिये हिन्दू राजपूत राजाओं यशवन्तसिंह और जयसिंह को दक्षिण भेजा था। इनके साथ शिवाजी का जो संवाद व्यासजी ने कराया है वह ओ[illegible] से भरा है और लोभी [illegible] स्वार्थी [illegible] में भी

नव-भावनाओं का सचार करने में समर्थ है। परन्तु शिवाजी के उद्बोधन ने अन्दर ही अन्दर सहमत होते हुये भी इन राजपूत राजाओं ने उनका साथ पूरी तरह से नहीं दिया। यदि ये दोनों राजपूत राजा अपनी पूरी मानसिक और सैनिक शक्तियों को लेकर स्वातन्त्र्य सग्राम में योग देते तो भारतीय स्वतन्त्रता का इतिहास अन्य प्रकार से ही लिखा जाता तथा यह अखण्ड भारत विश्व की प्रथम शक्ति होता।

व्यासजी की मान्यता थी कि युद्धों में शौर्य और शस्त्र सचालन-चातुर्य ही पर्याप्त नहीं है। इसी से केवल विजय प्राप्त नहीं होती। *अधिक शक्तिशाली और कपटी शत्रु से कूटनीति का व्यवहार करना ही होता है।* राजाओं के लिये सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था भी अनिवार्य है। इन्हीं नीतियों का आश्रय लेकर शिवाजी ने अफजलखान को हराया तथा शाइस्ताखा को पराजित किया। मराठा सेनाओं द्वारा किलों को जीतने के लिये प्रयाण का वर्णन अति रोचक है—

"आसीदासन्नमेव विजयपुराधीशस्य गिरिशिखरस्यमेकं रुद्रमण्डला-भिधानं महद्दुर्गम्। महानेव उच्चगिरिः सघनमसं व्याप्तम्, अविदितचरः पन्थाः, तथापि क्वचिदुत्प्लुत्य, क्वचिद्शाखा अवलम्ब्य, क्वचिदुपविश्य, क्वचिन्निर्झरजलान्तः प्रविश्य, क्वचिल्लताजालान्यपसार्य, क्वचिद् विद्वान् कण्टकानपनीय, कथंकथमपि दुर्गस्य नेदीयस्याम-धित्यकायामायातः।"

शासन और युद्धों में व्यासजी ने भारतीय शिष्ट परम्पराओं और सदाचार के पालन का भी उपदेश दिया है। शिवाजी ने मुसलिम आक्रान्ताओं से युद्ध अपने देश-धर्म-जाति की रक्षा और स्वतन्त्रता के लिये किया था। युद्धों में पराजित तथा शरण में आये शत्रुओं के प्रति उनका व्यवहार सदाशयता से पूर्ण उदार था। शिवाजी ने प्रबलशत्रु औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा और पुत्र मोअज्जम को आदर के साथ पिता के पास भेज दिया था। अपने प्रति मोहित हुई रोशनआरा से उन्होंने कहा था—

"पित्रा अप्रदीयमाना यं कञ्चिदेवाङ्गीकुर्वती व्यभिचारिणी वचनीया च वदावदानाम्। मातापितृभ्यामदत्तामात्मसात् कुर्वंश्च लम्पट इत्युच्यते।"

ऊपर के विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यासजी का क्रान्तिकारी कवि-हृदय भारत देश की, आर्यजाति की दुरवस्था को देखकर सदा विह्वल रहता था, तड़पता रहता था और इसके लिये कुछ कर सकने की व्याकुलता से भरा रहता था। अपने भावों की अभिव्यक्ति उन्होंने साहित्य के माध्यम से करने का प्रयत्न किया। एक ओर तो उन्होंने संस्कृत साहित्य को उपन्यास नामक नई विधा प्रदान की, जिसका कि उन्होंने शास्त्रीय विवेचन अपनी मौलिक कृति 'गद्य काव्य मीमांसा' में किया है, दूसरी ओर इतिहास के पृष्ठों में से महान् स्वतन्त्रता सेनानी शिवाजी को खोजकर देश-धर्म-जाति को उद्‌बोधित करने का प्रयास किया। 'शिवराजविजय' की भूमिका में वे लिखते हैं–

"मया तु सनातनधर्मधुर्य-शिवराजवर्णनेन रसना पावितेव।"

पं० अम्बिकादत्त व्यास १९वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्ध के एक महान् कवि हुये, जिनका स्थान अपने युग के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि कवियों से कम नहीं है। उनके देहावसान पर वाराणसी के साहित्यिक जगत् में तो एक शून्य उत्पन्न हुआ ही था, देश का सम्पूर्ण संस्कृत एवं हिन्दी जगत् शून्यता का अनुभव करने लगा था। अपने समय में ही उनको महान् प्रतिष्ठा और यश प्राप्त हुये, जो अद्यतन विद्यमान है। उनकी कृतियों ने, विशेष रूप से 'शिवराजविजय' ने संस्कृत जगत् में उनको सुबन्धु, दण्डी और बाणभट्ट जैसे कवियों की कोटि में स्थान प्रदान किया।

अब जब कि व्यासजी के जन्म स्थान जयपुर नगर के संस्कृतानुरागियों ने उस महान् कवि को स्मरण किया है और उनका

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का व्यक्तित्व

○ डॉ. शिवसागर त्रिपाठी

'दैवी वाचमजनयन्त देवा!' "संस्कृतं नाम दैवी वाग् अन्वाख्याता महर्षिभि." अर्थात् देवों से समुद्भूत एवं महर्षियों से अन्वाख्यात संस्कृत भाषा विश्व में प्राचीनतम है तथा उसका साहित्य समृद्धतम है। साहित्य-सर्जना का जो ब्रह्मद्रव ब्रह्मनिःश्वसित वेदों में प्रस्तुत हुआ, वह साहिती मन्दाकिनी के रूप में विविध स्रोतों से समन्वित होकर अबाध तथा अविरामगत्या अद्यावधि प्रवाहित है। विदेशी आक्रमण, विदेशी शासन और अपने ही देशवासियों की उपेक्षा किंवा अवहेलना आदि विघ्नों, घात-प्रतिघातों की परवाह किये बिना आज भी साहित्यकार उसे अपने रचनामाल्यों से अलकृत कर रहे हैं। इन रचनाकारों ने वस्तु, संवाद, भाषा, अभिव्यक्ति, शैली, उद्देश्य आदि विविध तत्त्वों में युगीन प्रवृत्तियों का समावेश करके संस्कृत के जीवितत्व को प्रमाणित किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पं० अम्बिकादत्त व्यास ऐसे ही सरस्वती के वरद पुत्रों मे अन्यतम थे, जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से नवयुग का स्वागत अपने व्यक्तित्व में किया और उसकी अवतारणा साहित्य में। संस्कृत साहित्य के इतिहास में आपने आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रवर्तक के रूप में अपना पृथक् स्थान बनाया है और अपने 'व्यक्तित्व' को सार्थक किया है।

सामान्यतः व्यक्ति शब्द मनुष्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जब कि यह अमरकोष में उसके पर्याय रूपमें नहीं, पृथक् से पठित है– 'व्यक्तिस्तु पृथगात्मता'। 'व्यज्यतेऽनया' व्यनक्तीति वा–वि+अञ्जू+क्तिन् से निर्मित 'व्यक्ति' से तात्पर्य है कि जिससे पृथक् से पहचान हो और

'व्यक्तित्व' इसी का भाववाचक रूप है। और अंग्रेजी Personalety के लिए उपयुक्त शब्द है।

व्यक्तित्व केवल दृश्यमान भौतिक शरीर या वेशभूषादि का ही द्योतक नहीं होता, उसके निर्माण में व्यक्ति के विचार कार्यकलाप, व्यवहार, सर्जना आदि का भी योगदान रहता है। अतः बाह्य और अन्त भेद से इसके विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। अतः बाह्य व्यक्तित्व अन्त. व्यक्तित्व की अपेक्षा गौण होता है और अस्थायी भी होता है, यदि उसे आत्मवृत्त के रूप में लिखित एवं सुरक्षित रखा जाय। परन्तु यह हमारी प्राचीन परम्परा न थी। अतः संस्कृत रचनाकारों ने इसके प्रति अनास्था रखी और उसे आत्मश्लाघा मानकर अपने जन्म, स्थान, काल आदि के विषय में संकेत नहीं दिया। परन्तु यह प्रवृत्ति एक समस्या बन कर रह गई। वस्तुतः समग्र व्यक्तित्व दोनों से मिलकर ही उद्भासित होता है।

विवेच्य व्यासजी इस दृष्टि से अपवाद हैं। उन्होंने स्वयं 'निज-वृत्तान्त' में अपने जीवन की घटनाओं का विस्तृत परिचय दिया है, तथा १९०१ की 'सरस्वती' में भी आपका जीवन परिचय प्रकाशित हुआ था, अतः व्यक्तित्व का यह पक्ष ज्ञात और सुरक्षित है तथा अपरपक्ष उनकी कृतियों में व्यक्त है, जो अन्वेष्य और ज्ञेय है। यहां इन दोनों पक्षों का विवरण प्रस्तुत है।

राजस्थान की वीरप्रसविनी धरा में विद्यावैभव से सम्पन्न द्वितीय काशी के रूप में विश्रुत जयपुर नगरी ने चैत्र मास में नवरात्र की शुक्ला दुर्गाष्टमी सन् १८५८ (सं० १९१५) में एक सारस्वत पुत्र को जन्म दिया, अतः पिता पं० दुर्गादत्त व्यास ने उनका नामकरण 'अम्बिकादत्त' किया। किन्तु पितृव्य देवीदत्त ने रामनवमी निकट होने के कारण रामचन्द्र नाम दिया, जो प्रचलित न हो सका।

यह परिवार पाराशर गोत्रीय था और पहले जयपुर से ग्यारह मील पूर्व दिशा में 'रावलजी का बास' के समीप भानपुर ग्राम में रहता

था। प्रकाण्ड ज्योतिषी ईश्वरराम के पुत्र कृष्णराम की प्रतिभा से प्रभावित धूला के ठाकुर बख्तेसिंह ने उन्हें अपने ग्राम में बसा लिया था। इनके पुत्र हरिराम के चार पुत्रों (राधाकृष्ण प्रथम-द्वितीय गंगाराम और राजाराम) में से राजाराम पर्यटन प्रेमी थे। काशी में पहुंचने पर उनकी विद्वत्ता से प्रभावित विद्वत् समुदाय ने उन्हें वहीं आवास की सुविधा दे दी और ये वापस धूला न जा सके। इन्हीं के पुत्रद्वय दुर्गादत्त एवं देवीदत्त का उल्लेख ऊपर किया गया है। दुर्गादत्तजी की पत्नी अर्थात् अम्बिकादत्त की माता जयपुर के सिलावटों के मोहल्ले की थी।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा और संस्कृत भाषा का ज्ञान आदि घर पर ही सम्पन्न हुआ। पिता कुशल कथावाचक थे, अत. उन्हें भी इसका और भाषण देने का अच्छा अभ्यास हो गया। फलत. यह व्यास कहे जाने लगे। बाल्यावस्था में ही आपमें काव्यस्फुरण हो गया था, जो पिता के सान्निध्य में कोष्ठक यन्त्र या सरस्वती यन्त्रादि के द्वारा श्लोक रचना के अभ्यासवश परिपुष्ट हो गया था। अत. भारतेन्दु मण्डली ने इन्हें 'सुकवि' पद से विभूषित किया था। आप एक घटिका अर्थात् २४ मिनट में सौ श्लोकों की रचना कर लेते थे। अत. इन्हें 'घटिका-शतक' या स्मृति प्रबुद्धतावश 'शतावधानी' भी कहा जाने लगा था।

ज्योतिष, संगीत, वैद्यक, गणित, रेखागणित, इतिहास, सामवेद, पुराण, सांख्य, तर्क, दर्शन, व्याकरण, रत्नविज्ञान आदि के विस्तृत अध्ययन, तथा संस्कृत, हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी आदि भाषाओं के ज्ञान ने इन्हें भूयोविद्यता प्रदान की, जो इनकी रचनाओं में स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

पण्डितजी के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आये, विघ्न-बाधाएँ आई। सन् १८७४ में माता और उसके छः वर्ष बाद पिता का देहावसान हो गया। अग्रज गणेशदत्त सदा मनोमालिन्य रखते थे, अनुज गौरीशंकर के पालन-पोषण का भार था, उस पर भी उसका १८ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। इसके कुछ समय बाद अभिन्न मित्र, महात्मा,

पथप्रदर्शक और शुभचिन्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दिवङ्गत हो गये। इन सारी विपरीत परिस्थितियों में भी उनका अध्ययन, अध्यापन और लेखन यथा सम्भव सतत चलता रहा। सन् १८८० में साहित्याचार्य की उपाधि गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज से प्राप्त की। कुछ समय बाद मधुवनी (दरभंगा) संस्कृत पाठशाला में तत्पश्चात् १८८६ में मुजफ्फरपुर संस्कृत विद्यालय में, फिर १८८७ में भागलपुर जिला स्कूल में, १८९६ में छपरा जिला स्कूल में कार्य किया तथा जीवन के अन्तिम वर्ष १८९९ में पटना कालेज में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए, पर उदररोग से ग्रस्त होने के कारण मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी १९ नवम्बर १९०० को अपनी इहलीला समाप्त करदी।

इस प्रकार ४२ वर्ष की अल्पआयु में आपने गुणात्मक और संख्यात्मक दोनों दृष्टियों से प्रचुर साहित्य, गद्य, पद्य, दृश्य, अनुवाद आदि विविध विधाओं और काव्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र, खेलकूद कौतुक आदि विषयों में लिखकर सरस्वती की समाराधना की है। डा० कृष्णकुमार द्वारा प्रदत्त सूची के अनुसार संस्कृत में २७ और हिन्दी तथा ब्रजभाषा में ६४ ग्रन्थ लिखे थे। अनेक लेख अर्थमित्र, भारत वैष्णव पत्रिका तथा बाद में "पीयूषप्रवाह" में छपे। जीवन, विद्यार्थी और कुछ साहित्य अनुपलब्ध भी है, किन्तु व्यासजी की कीर्तिवैजयन्ती को गगनचुम्बी बनाने के लिए आधुनिक प्रवाहमयी शैली में लिखित ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराज-विजय' ही पर्याप्त है।

व्यक्तित्व का अपर किन्तु पूरक पक्ष रचना सङ्क्रमित होता है, जिसमें अन्य अनेक बिन्दु भी जुड़ जाते हैं। इस दृष्टि से युगीन परिस्थितियों को भी दृष्टिपथ में रखना होता है। अम्बिकादत्त का जन्म काल प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का काल था। भारतीय जनता ने मुसलमानों के अत्याचार देखे थे, अंग्रेजी शासन और भारतीय दासता साथ २ बढ़ रही थी। उनकी शासननीति ने सामाजिक विशृङ्खलता से राहत पहुंचाई थी, अतः उनके प्रति राजभक्ति बढ़ रही थी। व्यासजी की आस्था भी अंग्रेजी शासन के प्रति हुई। सन् १८८६ में इङ्गलैण्ड की महारानी का जयन्ती महोत्सव मनाया गया, तो उस उपलक्ष्य में आपने

'भारत-सौभाग्य' नामक नाटक लिखा था। किन्तु अंग्रेजों की मात्स्य नीति एवं दमन से जनता में घुटन और आक्रोश बढ़ रहा था। अत: पराधीन भारत की कसक तथा मुस्लिम बर्बरता उनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है। भारत दुरवस्था का एक चित्र द्रष्टव्य है–

'अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राणि उद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते। क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठ्यन्ते ......।'

भारतेन्दुजी ने भारत-दुर्दशा लिखी थी। व्यासजी का हृदय भी देश और धर्म की दुर्दशा देखकर, उद्वेलित हो उठा था –

'हा भारत! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे? ...... हा सनातनधर्म! किं विलयमेव यास्यसि? .... हा साङ्गवेद! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ....धिग् धिग् रे कलिकाल! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि।

व्यासजी भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म के पक्षपाती थे। इनके प्रति गहरी आस्था व्यवहार में तथा कथा, पात्र, संवाद आदि के माध्यम से अथवा सीधे साहित्य में प्रतिबिम्बित थी। 'प्राणा यान्तु न धर्मः' उनका आदर्श वाक्य था। अपने भक्तिहृदय और प्रचारक व्यक्तित्व के कारण उन्होंने धर्म के आधार पर प्रतिवाद किया, विरोधियों ने खण्डनार्थ पुस्तकें लिखी। बिहार, बंगाल, सिंध आदि में धर्म-यात्रायें की और वक्तृताएं दीं।/

इस समय देश में सुधारवादी प्रवृत्ति बढ़ रही थी। थियासोफिकल सोसायटी, ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज जैसी संस्थाएं धार्मिक और सामाजिक सुधारों में लगी थी, पर व्यास जी अपनी प्रवृत्ति की अननुकूलतावश अनेकत्र इनके विरोधी थे। 'अबोधकिरण'

दयानन्दमूलोच्छेद, मूर्तिपूजा, अवतारमीमांसा, अर्थव्यवस्था, आश्रम-धर्मनिरूपण आदि रचनाएँ इसी का प्रतिफल रही हैं।

पश्चिम के सम्पर्कवश भारतीय जनजीवन में, राजनीति, समाज और शिक्षा आदि प्रत्येक क्षेत्र में पुनर्जागरण आ रहा था। कतिपय अरुचिकर क्षेत्रों को छोड़कर व्यास जी ने नए जीवन, रूप और गति को अपनाया, इतिहास-बोध जागृत किया तथा वस्तु और पात्रों का चयन इस प्रकार किया कि उनके उद्देश्य की पूर्ति हो सके। अत उन्होंने जनमानस में चिरपरिचित और शौर्य गाथामय कथानक को 'शिवराजविजय' में स्थान दिया, जिसका नायक था शिवाजी– 'बद्धवत प्रातःस्मरणीय स्वधर्माग्रहग्रहिल. शिर इव शिववीर ......सतीनां, सता, शैवर्णिमस्य, आर्यकुलस्य धर्मस्य, भारतवर्षस्य च आशासन्तान-वितानस्याश्रय । यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती यवन सन्यासिना ब्रह्मचारिणा तपस्विना च संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता'। अन्य ऐतिहासिक और काल्पनिक किंवा व्यक्तित्व प्रधान पात्र अथवा प्रतिनिधि पात्रों में भी सर्वत्र व्यास जी के विचारों की छाप दृष्टिगत होती है। राष्ट्रीय और जातीय गौरव सर्वत्र अनुस्यूत है। भारतरत्न डा० भगवानदास ने ठीक ही लिखा था –

"(यह ग्रन्थ) ....देशभक्ति, जन्मभूमि-भक्ति, प्रजा की राजभक्ति, राजा की प्रजाभक्ति, दोनों की धर्मभक्ति और राष्ट्रीय भाव से भरा है। इस ग्रन्थ में वीर रस की अवतारणा की गई है और स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने को न्योछावर कर देने वाले, देश और धर्म की रक्षा में सदा तत्पर रहने वाले अपने आदर्श शिवाजी को प्रस्तुत किया, ताकि वह युवकों के आदर्श बनें और वे स्वाधीनता प्राप्त कर सकें तथा रक्षा कर सकें।"

उपरिलिखित भारतीय दुर्दशा तथा पराधीनता का मूल कारण व्यास भावात्मक वैमनस्य या एकता के अभाव को मानते थे .... परन्तु

ऐश्वर्यमेव न भवदस्मदृशीयानाम् । यदि नाम सर्वेऽपि भारताभिजनवीरवराः सह युञ्जेरन्, तद्वयं क्षणेन पारावारमपि सन्तरेम।" तथा देश की प्रभुसत्ता की रक्षा के लिए इसकी आवश्यकता का अनुभव करते थे।

'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' के अनुसार काव्यशास्त्रकारों ने जिन प्रयोजनों (काव्यं यशसे०) की चर्चा की है, उनमें रचनाकारों का व्यक्तित्व भी झलकता है। व्यासजी ने भी अपने कतिपय उद्देश्य निर्दिष्ट किये हैं - यथा संस्कृत में उपन्यास लेखन, आनन्द-प्राप्ति, देशधर्मरक्षक शिवाजी का वर्णन, धार्मिक अत्याचारों का उद्घाटन एवं जातीय तथा राष्ट्रीय गौरव का उत्थान और सदुपदेश आदि। इन्हें शिवराजविजय के निर्माण-हेतु में देखा जा सकता है। यद्यपि व्यास जी का सारस्वत व्यक्तित्व भी सतत साहित्य साधना से ओतप्रोत है, पर उसे पूर्ण प्रतिष्ठा प्रौढ गद्य रचना 'शिवराजविजय' में मिली। यों भी गद्यलेखन पद्य की अपेक्षा अधिक गौरवास्पद माना गया है, जैसाकि वामन के काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में लिखा है,— 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। मानों इस कसौटी पर खरा उतरने के लिए ही इस प्रौढ कवि ने हृद्य गद्य में आहारविस्तारक और चमत्कारपूर्ण रचना लिखी।

व्यासजी यद्यपि वेशभूषा और विचार-व्यवहारादि में परम्परावादी थे, पर साथ ही वे आधुनिकता के भी पक्षपाती थे। उनकी प्रस्तुतियां परम्परा-भुक्त भी हैं और परम्परामुक्त भी। इन्होंने शिवराजविजय का ही प्रारम्भ मङ्गलाचरण, सज्जनप्रशंसा, दुर्जननिन्दापरक पद्यों में परम्परया किया, पर कथा का प्रारम्भ प्रकृति का आश्रय लेकर वातावरण की सृष्टि से किया—

'अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः..........' उपन्यास में प्रयुक्त प्रकृति परम्परागत और शास्त्रीय अवश्य है, पर अधिकांशतः अनुभूतिमय है और उसका प्रस्तुतीकरण सार्थक, सजीव,

कवित्वमय और यथावसर है। प्राचीन की भांति अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अतिरञ्जित नहीं। इस प्रकृति-प्रेम में उनकी भ्रमणप्रियता का भी अवश्य योगदान रहा है। योगिराज का कथानक प्रस्तावना रूप परम्परया है।

कथानक विस्तृत होते हुए भी उसमें बाण की तरह उलझाव नहीं प्रवाह है। 'अमूदेवं सलाप' 'वक्तुमारभत (आरेभे)' 'अथ स मुनिः' उवाच, अवदत् आदि से सवादों में स्वाभाविकता में व्याघात पहुचता है, पर उनमें नाटकीयता और प्रभावशालिता भी है।

विवेच्य गद्यकार सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति थे। यह सारल्य 'यथा जीवने तथा साहित्ये' था। यथा उनकी भाषा अक्लिष्ट और प्रवाहमयी है। उसमें दीर्घ समासों का अभाव और वैदर्भी रीति का स्वीकरण है। उसमें सुबन्धु की प्रत्यक्षरश्लेषमयता तो दूर, मात्र आवश्यक अलंकारों को सरलतया प्रयुक्त किया गया है। कल्पनाश्रयता और भावप्रवणता में भी सारल्य और सहज बोध्यत्व है।

वस्तुतः शैलीगत यह वैशिष्ट्य प्राचीन रीतितत्त्व से पृथक् है, जिसमें मात्र वस्तुतत्त्व का प्राधान्य था, व्यक्तितत्त्व का नहीं, जो आज शैली का प्राण माना जाता है। जब वस्तुतत्त्व व्यक्तितत्त्व पर हावी हो जाता है, तो मात्र रीति, भाषा, अलंकार, वक्रोक्ति, रस, गुण आदि अर्थात् कलापक्ष का प्रामुख्य हो जाता है और रचना में स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता आ जाती है, जो पंगुता को जन्म देती है। व्यासजी इसके अपवाद है, अर्थात् उनका अपना व्यक्तित्व सर्वत्र जीवित है।

लेखक जिस परिवेश में सास लेता है, जीता है, जिस भूमि मे जन्म लेता है, उसके प्रति उसकी आसक्ति स्वाभाविक होती है। जैसा-कि उल्लेख किया जा चुका है, व्यास जी का सम्बन्ध राजस्थान और

विशेषतः जयपुर से रहा था, अतः शिवराजविजय में राजपुत्र देश का वर्णन हुआ है। तानरङ्ग के रूप में गौरसिंह अफजलखां से कहता है—'श्रीमन्! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि'। यह काल्पनिक पात्र उदयपुर के जागीरदार खड्गसिंह का पुत्र था। उसका एक भाई श्यामसिंह और बहन सौवर्णी थी। स्वयं ब्रह्मचारिगुरु जयपुर के समीप जितवार ग्राम का निवासी और जयपुर राजघराने का था, नाम था वीरेन्द्रसिंह। आमेर के राजा जयसिंह, उनके पुत्र रामसिंह, जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह और उदयपुर के राजसिंह का उल्लेख आया है। शिवाजी ने जयसिंह के साथ युद्ध करना व्यर्थ समझकर उनसे सन्धि करने का निश्चय किया और उनसे मिलने स्वयं गये थे।

व्यासजी पर अल्पायु में धनोपार्जन का भार आ पड़ा था। अतः वे कथावाचक बन गए थे, जो उनकी धार्मिक आस्था के अनुकूल भी था। धीरे-धीरे वे कुशलवक्ता और सदुपदेष्टा हो गए। उनके भाषणों से सम्बद्ध रचना 'संस्कृत संजीवन' है, किन्तु साहित्य-सर्जना को वे मात्र उपदेशादि का माध्यम नहीं मानते थे। वे उसे आनन्द का स्रोत भी समझते थे, जो केवल 'स्व' तक ही सीमित नहीं होता, 'परार्थ' भी होता है, जहां पाठक की अन्य अनुभूतियां विगलित हो जाती हैं। तन्मयता उसे समाधिस्थ कर देती है, वह जागतिक व्यवहारों से परे हो जाता है। उसे तो 'आहारोऽपि न रोचते' अर्थात् भोजन भी अच्छा नहीं लगता है। यह सब लेखक के कौशल को भी प्रकट करता है। यहां लेखक के कथ्य या उपदेशादि के माध्यम होते है, पात्र या संवाद। उदाहरणार्थ शिवराजविजय में ही अनेकत्र इन्हें देखा जा सकता है—

(i) **कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्।**

(ii) **प्राणाः यान्तु न च धर्मः।**

(iii) **हनुमान् सर्वं साधयिष्यति, मास्मचिन्तासन्तानविताने रासमानं दुःखाकुरुतम्।**

(iv) संन्यासी तुरीयाश्रमसेवीति प्रणम्यते।

(v) परिपन्थिन अत्यन्तनिर्दयाः अतिकदर्याः अतिकूटनीतयश्च सन्ति। एतैः सह परमसावधानतया व्यवहरणीयम्।

(vi) शत्रुसन्ताना निर्दयं हन्तव्याः।

(vii) अलं बहुलचिन्ताभिः कश्चन पुरुषार्थः स्वीक्रियताम्।

(viii) धन्यो मन्त्राणां प्रभावः, धन्यमिष्टबलम्, विप्रा धर्मनिष्ठा विलक्षणा नैष्ठिकी वृत्तिः।

(ix) शठे शाठ्यं समाचरेदिति नीतिः अंगीकर्तव्या।

(x) पूज्यजनाः सत्करणीयाः।

ऐसे ही कतिपय अन्य वाक्यों का संकलन डा० कृष्णकुमार अग्रवाल ने साहित्य निकेतन कानपुर से प्रकाशित रचना की प्रस्तावना पृ० १०१ पर किया है।

व्यास जी रसिक हृदय और विनोद प्रिय थे। रचनाओं में इसकी झलक अवश्य मिलती है। 'द्रव्यस्तोत्रम्' 'पटे पटे पत्थर' में व्यङ्ग्य द्रष्टव्य है। शिवराजविजय में भी, कुसुम विक्रेत्री के रूप में रोशनआरा की सखी और शिवाजी मिलन-प्रसंग में, हकीम के वेश में आए मूरेश्वर के प्रसंग में तथा अफजल खां के शिविर-वर्णन-प्रसंग में, इसकी अभिव्यञ्जना प्रकट होती है।

आप संस्कृत भाषा के उन्नायक थे। सरस्वती आराधना और संस्कृत-सेवा जीवन का मूल उद्देश्य था। अतः जहां भी जिस पद पर रहे, संस्कृत-प्रचार में लीन रहे। सरलता से सीखे जाने के लिए प्रारम्भिक पुस्तकें भी लिखी। भाषा पर आपका असाधारण अधिकार था। शब्द भण्डार अक्षय था और उसके उचित प्रयोग की असामान्य क्षमता थी। नवशब्द प्रयोग, (उपनेत्र, वाचमञ्जूषा, निष्ठ्यूतादान, तानपूरिका, अरुणश्मश्रु आदि) संस्कृतीकरण (रसनारी, अवरंगजीवः,

अपजलखानः, शास्तिखानः, मायाजिह्वः, आदि) तथा लोकोक्ति-न्याय-मुहाविरा प्रयोग (धृतेन स्नातु भवद्रसना, घुणाक्षरन्यायेन, दुग्धमुखी, पादाङ्गुष्ठशिरोपाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति आदि) उनके व्यक्तित्व को उजागर करते हैं।

अभिरुचियाँ व्यक्तित्व को हस्तामलकवत् प्रकाशित करती हैं। व्यासजी की मूल अभिरुचि अध्ययन एवं मौलिक रचना करना थी। फलतः वे प्रोक्त रूप से भूयोविद्य तथा बहुश्रुत बने। विविध विधाओं पर लिखा, आशुकवि हुए, काव्य-शास्त्रीय विद्वत्ता, अर्जित की और गद्यकाव्यमीमांसा लिखी, दर्शनप्रियता वश ग्रन्थों में सांख्य, योग, न्याय, और वेदान्त आदि अनुस्यूत किया और सांख्यतरङ्गिणी, तर्कसंग्रहटीका आदि रचनाएँ लिखीं। व्याकरणाधिकारवश रचना में सर्वविध व्याकरण प्रयोग किये, पर सारल्य का ध्यान रखा तथा छात्रहित में बालव्याकरण, गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन, विभक्तिविलास और प्राकृत प्रवेशिका आदि पुस्तकें लिखीं। इस प्रौढ पाण्डित्य के लिए इन्हें 'सुकवि' 'घटिकाशतक' 'विद्याभूषण', 'शतावधानी', 'भारतभूषण' आदि अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया था।

इसके अतिरिक्त आपकी भ्रमण, चित्रकारिता, अश्वारोहण, संगीत, शतरञ्ज और जादू के खेल आदि अन्य अभिरुचियाँ थीं, जो व्यास जी के बहुआयामी व्यक्तित्व को सुस्पष्ट करती है।

भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारों का यह वैशिष्ट्य था कि वे स्वयं लिखते थे और नवीन लेखकों को प्रेरणा देते थे। व्यास जी भी इसी प्रेरक व्यक्तित्व के धनी थे। समस्त गुणों को पुञ्जीभूत करते हुए किसी ने ठीक ही लिखा है—

का द्राक्षारसमाधुरी ! मधु च किं ! क्षीरं च किं साम्प्रतम् !
किं वाद्यश्रवणं च किं पिकवचः किं चापि योषित्स्मितम् !
राष्ट्रप्रेममयी महोज्ज्वलगुणा वीरानुरागात्मिका
दत्तव्यासकवेर्गिरा यदि शिवा श्रोत्रद्वयं गाहते ॥

अन्ततः यह कहना समीचीन होगा कि प्राचीन समीक्षकों ने कवियों में जो स्थान कालिदास को प्रदान किया है, वही स्थान आधुनिक साहित्य के प्रणेताओं में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का है—

पुरा कवीनां गणना-प्रसंगे
कनिष्ठिकाधिष्ठित-कालिदासा ।
तथाद्य साहित्य-सुसर्जकेषु
साधिष्ठिता व्यासमहोदयेन ॥

सह-आचार्य, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,
ए-६५, जनता कालोनी, जयपुर

'पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का कृतित्व-परिचय'

डा० (श्रीमती) उषा देवपुरा

अपनी आन-बान और शान के लिए प्रसिद्ध राजपूताना की यह धरा मात्र वीर-प्रसविनी ही नहीं, अपितु माघ, अम्बिकादत्त व्यास एवं सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे महान् साहित्यकारों की जन्मदात्री भी है। महाकवियों का कृतित्व ही उनके व्यक्तित्व का परिचायक होता है। संस्कृत वाङ्मय में यथा कालिदास, भास, भारवि, श्रीहर्ष, दण्डी, भवभूति, बाण एवं सुबन्धु जैसे आज भी अपने यशःशरीर से अमर हैं, तथैव अभिनव-बाण के रूप में सुविख्यात पण्डित अम्बिकादत्त व्यास भी अपने बहुविध एवं मौलिक रचना नैपुण्य से समग्र संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य गगन के सतत प्रकाशमान ध्रुव नक्षत्र हैं। इनके कृतित्व का महत्त्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि ४१ वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने न केवल साहित्य की विविध-विधाओं में हिन्दी और संस्कृत भाषा में ८० के लगभग ग्रन्थ लिखे, अपितु ऐतिहासिक उपन्यास नामक साहित्य की आधुनिक विधा में नूतन प्रयोग का सूत्रपात करते हुए शिवराज-विजय नामक अपनी प्रौढ़ कृति को प्रस्तुत भी किया। वह भी तब जबकि मुगलों की एवं अंग्रेजों की दासता से भारतीय जनसाधारण संस्कृत के अध्ययन एवं अध्यापन से पराङ्मुख होता जा रहा था। अधिकांश विद्वान् पण्डित अम्बिकादत्त व्यास को उनकी प्रसिद्ध-कृति 'शिवराज-विजय' के रचयिता के रूप में जानते हैं, किन्तु निम्नलिखित विवेचन से यह बात हस्तामलकवत् स्पष्ट

हो जायेगी कि वे मात्र उपन्यासकार ही नहीं, कुशल नाटककार, सहृदय-कवि, प्रौढ दर्शन-वेत्ता, काव्यशास्त्रज्ञ, सम्पादक एवं अनुवादक भी थे। इनकी कुल ६१ रचनाओं का उल्लेख मिलता है, जिनमें से २७ कृतियां संस्कृत मे लिखी गई, किन्तु १४ ही उपलब्ध होती हैं। हिन्दी भाषा में ६४ रचनाएं लिखी, उनमे से ३८ ही उपलब्ध हो पाई हैं। यद्यपि स्थानाभाव एवं समयाभाव के कारण इनको समस्त रचनाओं का विशद विवेचन करना सम्भव नही, तथापि उपलब्ध प्रमुख साहित्य-तरंगिणी को हम १० धाराओं में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) भक्तिकाव्य एव धार्मिक साहित्य
(२) दर्शन-साहित्य
(३) सरस-साहित्य
(४) हास्य, व्यंग्य एवं कौतुक साहित्य
(५) बहु आयामी साहित्य
(६) अंग्रेजी शासन प्रशंसापरक साहित्य
(७) संस्कृत-शिक्षण साहित्य
(८) अलंकारशास्त्र-साहित्य
(९) रूपक-साहित्य
(१०) उपन्यास-साहित्य

(१) **भक्ति-काव्य एवं धार्मिक साहित्य**— पण्डित अम्बिकादत्त जी कथा कहने में कुशल होने के कारण 'व्यास' कहलाये। साधारण हिन्दू की भांति इनकी आस्था सामान्यरूपेण सभी देवों के प्रति थी। हिन्दी में इन्होंने 'शिव-विवाह,' 'घनश्याम-विनोद,' 'कंसवध' तथा 'सुकवि सतसई' नामक भक्ति साहित्य लिखा। संस्कृत-भाषा में 'गणेश-शतक,' 'रत्न-पुराण' एवं 'सहस्रनाम रामायणम्' नामक स्तोत्र साहित्य लिखा। अन्य रचनाएं अपूर्ण होने के कारण एवं

अनुपलब्ध होने के कारण 'मुकवि-सतसई' और 'सहस्रनाम-रामायणम्' ही उल्लेखनीय हैं। मुकवि-सतसई हिन्दी भाषा में रचित है। इसके ७०० पद्यों में श्रीकृष्ण की बालक्रीडाओं का वर्णन है। इसमें ७ विभाग है। प्रत्येक में १००-१०० पद्य है। मंगलाचरण के अनन्तर श्रीकृष्ण का जन्म, नन्द-महोत्सव, पूतना-वध, ऊखल-बन्धन लीला, कालिया-मर्दन एवं गोवर्धन-धारण की घटनाएं दोहा नामक छन्द मे वर्णित है। 'सहस्रनाम-रामायणम्' स्तोत्र परम्परा का अनुकरण है। १००० नामो द्वारा श्री रामचन्द्र जी के गुणों को प्रदर्शित करते हुए सम्पूर्ण रामायणी कथा को भी कह दिया है। तुलसी की विनय-पत्रिका का पूर्णत प्रभाव इस पर परिलक्षित होता है। काण्डों में विभाजन, आदि से अन्त तक किसी भी क्रिया का अभाव, इसकी महती विशेषताएं हैं। श्रीराम को साक्षात् परब्रह्म का अवतार मानकर उनके विशेषण लौकिक एवं अलौकिक गुणों के वाचक होने के साथ-साथ ही कथा को गतिप्रदान करने वाले हैं। संस्कृतभाषा के स्तोत्र-साहित्य में 'सहस्रनाम-रामायणम्' का स्थान सदैव आदरणीय रहेगा॥

व्यासजी सनातन मतावलम्बी कट्टर हिन्दू ब्राह्मण थे। 'स्वधर्मे निधन श्रेयः परधर्मो भयावह' गीता के इस उद्घोष में उनकी गहन निष्ठा थी। इन्होंने तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक सुधार-वादी आन्दोलनों का विरोध करते हुए खण्डनमण्डनात्मक साहित्य लिखा। पौराणिक धर्म के समर्थन में इन्होंने हिन्दी में 'अबोध निवारण,' 'पण्डित प्रपंच,' 'दयानन्दमत मूलोच्छेद' 'दोषग्राही' और 'गुणग्राही,' 'मानस-प्रशंसा,' 'वर्ण-व्यवस्था,' 'आश्रम धर्म-निरूपण,' 'मूर्तिपूजा' एवं 'अवतार मीमांसा' पुस्तकें लिखी। संस्कृत-भाषा में **'अवतारमीमांसा कारिका'** ग्रंथ लिखा। इसमें अव्यक्त एवं अनादि ब्रह्म के पृथ्वी पर अवतरण को शंका एवं समाधान की शैली में सप्रमाण विवेचित किया गया है। २६१ अनुष्टुप् छन्दों में ८ प्रश्न

और ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में उनके समीचीन उत्तर देते हुए व्यासजी ने अवतारवाद के प्रति अपनी गहन निष्ठा व्यक्त की है। हिन्दी भाषा में रचित 'अवतार-मीमांसा' की विषयवस्तु सर्वथा अवतार मीमांसा कारिका के तुल्य ही है। 'अबोध-निवारण' पुस्तक की रचना श्री व्यास जी ने स्वामी दयानन्द की पुस्तक 'संस्कृत वाक्य-प्रबोध' की अशुद्धियों को प्रदर्शित करते हुए की और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि इन अशुद्धियों को देखते हुए उनके द्वारा किये गये वैदिक मंत्रों के अर्थ कदापि प्रामाणिक नहीं माने जा सकते हैं। अपने सनातन धर्म की प्रतिष्ठा हेतु ही इस प्रकार का प्रयत्न व्यासजी ने किया होगा। 'मूर्ति पूजा' नामक ग्रंथ में इनके व्याख्यान संकलित हैं, जिनमें मूर्तिपूजा की उपयोगिता एवं वेदानुकूलता को प्रश्नोत्तरात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में व्यास जी की तर्क-शक्ति का नैपुण्य द्योतित होता है। हिन्दी भाषा के ही अन्य ग्रंथ पण्डित-प्रपञ्च, दयानन्द मत मूलोच्छेद, दोषग्राही और गुणग्राही, मानस-प्रशंसा, वर्ण व्यवस्था, आश्रम-धर्म निरूपण पुस्तकें अनुपलब्ध हैं। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भक्त हृदय व्यास जी आर्य-समाज, ब्रह्मसमाज जैसे तत्कालीन सुधारवादी विचारों के विरोधी थे। इनका समग्र धार्मिक साहित्य इनके पौराणिक सनातन हिन्दु-धर्म का डिण्डिम-घोष करता है।

(२) **दर्शन-साहित्य**—व्यासजी भारतीय दर्शनों के सम्यक् ज्ञाता थे। कुछ प्रसिद्ध दर्शन ग्रंथों के अनुवाद के साथ-साथ उन्होंने अपनी रचनाएं भी लिखी। हिन्दी भाषा में 'ईश्वरेच्छा' और संस्कृत भाषा में 'सांख्य सागर सुधा,' 'पातञ्जल प्रतिबिम्ब,' एवं 'दुग्ध-द्रुमकुठार ग्रंथ' इनके दार्शनिक चिन्तन की गहनता को अभिव्यक्त करते हैं। 'तर्कसंग्रह' एवं 'सांख्यतरंगिणी' पुस्तकें आपने अनुवादित की। 'ईश्वरेच्छा' नामक रचना कवि ने मिथिला नरेश लक्ष्मीश्वरसिंह की मृत्यु के दारुण समाचार से विह्वल होकर की।

संसार के उत्थान एवं पतन की स्वाभाविक स्थिति के वर्णन से आरम्भ हुई इस रचना में करुण एवं शान्तरस की प्रधानता है। काव्य के अन्त में 'ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या' के सिद्धान्त को मानते हुए कवि ने निष्कर्ष रूप में ईश्वर की इच्छा को ही प्रबल माना है एवं जीव को परब्रह्म के प्रति प्रवृत्त होने की शिक्षा दी है। सांख्य सागर-सुधा नामक संस्कृत भाषा की पुस्तक की रचना बालकों को सांख्य दर्शन का प्रारम्भिक ज्ञान करवाने हेतु की गई। इसमें सांख्य दर्शन के प्रतिपाद्य विषय जड़-चेतन दो तत्त्वों की कल्पना, २५ तत्त्वों का विवेचन, तीन प्रकार के शरीर, जीव द्वारा प्रकृति एवं पुरुष के भेद को समझ लेने से पर कैवल्य-ज्ञान, त्रिगुणात्मिका सृष्टि की उत्पत्ति आदि सभी विषय सरलतया वर्णित हैं। ईश्वरकृष्ण की 'सांख्य-कारिका' एवं 'सांख्य तत्त्व कौमुदी' नामक टीका को इसमें आधार बनाया गया है। निस्सन्देह यह पुस्तक सांख्य में प्रवेश करने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों के लिये उपादेय है। इसी पद्धति पर 'पातञ्जल प्रतिबिम्ब' ग्रन्थ में योग-दर्शन के सूत्रों की परिभाषाओं और सिद्धान्तों को कारिका रूप में निबद्ध करके प्रस्तुत किया गया है। इसमें ४ पाद हैं— समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य। विषय वस्तु के निबन्धन में प्रायः क्रमशः पातञ्जल सूत्रों एवं व्यास- भाष्य का प्रयोग किया गया है। योगदर्शन का यह ग्रंथ भी सरल भाषा-शैली में लिखा होने के कारण उपयोगी है। 'दुःखद्रुम-कुठार' पुस्तक की रचना संवत् १९४२ में की गई। एक तरफ युवा अनुज की मृत्यु का असह्य शोक तथा दूसरी ओर परम हितैषी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निधन का वज्राघात। यह पुस्तक विचारात्मक निबन्ध के रूप में है। भारतीय-परम्परा भी जीवन को दुःखपूर्ण मानती है। निराशा से भरे इस जीवन को दुःखों की छाया घेरे रहती है। इस पुस्तक की विषय वस्तु दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में जीव की लौकिक दुःखानुभूतियों का वर्णन, द्वितीय भाग में

इनको दूर करने के उपाय वर्णित है। इसकी भाषा प्रवाहपूर्ण एवं अलंकृत है। यथा—

"तदास्यचन्द्रोऽप्यग्निकुण्डीयति, चन्द्रिकापि विषधरीयति, चन्दनचर्चनमपि भ्राष्ट्रलेपीयति, आवासोऽपि काननीयति, हारोऽपि लौहानीयति, संगीतमपि कर्णशूलीयति किमतः परं यज्जीवनमपि मरणीयति।"

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से लिखी गई इस वैराग्य परक पुस्तक की रचना से व्यासजी ने भावात्मक एवं विचारात्मक निबन्ध की नई विधा का संस्कृत साहित्य में अभिनव प्रयोग किया।

(३) **सरस साहित्य**—व्यासजी स्वभाव से सहृदय रसिक थे। शक्ति, निपुणता एवं अभ्यास काव्यत्व के सभी आवश्यक गुणों के वे समवाय थे। हिन्दी भाषा में 'आनन्द मंजरी,' 'रसीली कजरी,' 'धर्म की धूम,' 'पावस पचासा,' 'हो हो होरी,' 'झूलन झमंक' एवं 'बिहारी विहार' रचनाएं गीतिप्रधान एवं माधुर्य-गुण से ओत-प्रोत हैं। **'धर्म की धूम'** धर्म के प्रचार के लिए लिखा गया कविता संग्रह है। इसमें २५ गीत जो होली नामक पर्व से सम्बद्ध हैं। संवत् १९४० में 'पावस-पचासा' नामक व्रज भाषा में लिखा गया कविता संग्रह वर्षा वस्तु विषयक है। कवि की आशु-बुद्धि इससे ही प्रगट हो जाती है कि आपने रेल-यात्रा में ही ३५ कवित्त बना डाले। बाद में मंझोली पहुंचकर १५ कवित्त और लिखकर वर्षा-ऋतु के साहित्यिक वर्णन से सम्बद्ध इस गीतिकाव्य को पूर्ण किया। 'हो-हो-होरी' नामक रचना होलिकोत्सव के उमंग भरे गीतों से विशेषकर श्रीकृष्ण की बाललीलाओं के सन्दर्भ में होरी पर्व की गीतियों से युक्त है। 'झूलन-झमंक' गीतिकाव्य में झूले से जुड़े २५ गीत हैं, जो काव्य सौन्दर्य से समन्वित तो है ही, अपितु इनका वैशिष्ट्य यह भी है कि ये गीत शास्त्रीय संगीत की

पद्धति से निबद्ध किए गए है। 'बिहारी-विहार' रचना में कविवर बिहारी के दोहों की पद्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। 'बिहारी-सतसई' के ७५० दोहों के पद्यात्मक व्याख्यान से बिहारी के दोहों का शृंगार हुआ है और रसास्वादन भी द्विगुणित। संवत् १९४८ में इसकी पांडुलिपि खो गई थी, किन्तु बड़े परिश्रम से व्यासजी ने इसे पुनः तैयार किया एवं अयोध्या-नरेश को भेंट कर सुवर्ण-पदक प्राप्त किया। दोहों की कुण्डलियों में भी वैसी सरसता व्यास जी जैसे महाकवि ही ला सकते थे।

(४) **हास्य, व्यंग व कौतुक सम्बन्धी साहित्य—** व्यासजी रूखे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति नहीं थे। वे साहित्य लेखन के अतिरिक्त संगीत, शतरंज एवं ताश के कौतुकों के प्रेमी थे। उनकी अधिकांश कृतियों में वर्णन ऊबाऊ न होकर या तो स्वस्थ हास्य की सृष्टि करने में सक्षम होते हैं या चुटीले, पैने व्यंग से परिपूर्ण। संस्कृत में 'द्रव्य-स्तोत्र' एवं हिन्दी में 'पढ़े-पढ़े पत्थर' अपूर्ण रचनाओं के शीर्षक ही हास्य एवं व्यंग्य से जुड़े हैं। यद्यपि ये रचनाएं अनुपलब्ध है, किन्तु कवि की हास्यप्रियता एवं व्यंग्य कथन की निपुणता को सूचित करती हैं।

यहीं पर यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि ये शतरंज के चतुर खिलाड़ी और ताश के कौतुकों में भी रुचि रखते थे। 'चतुरंग-चातुरी' पुस्तक हिन्दी-भाषा में लिखी गई है। इसमें शतरंज के प्राचीन इतिहास का वर्णन है और इसका प्राचीन भारतीय नाम चतुरंग है। शतरंज-फलक की बनावट, खेलने की विधियां, मात करने के तरीकों का वर्णन इनके शतरंज ज्ञान की निपुणता को बतलाता है। 'तास कौतुक पचीसी,' एवं 'महातास-कौतुक पचासा' ताश के विभिन्न जादुई करतबों से जुड़ी हिन्दी भाषा में लिखी गई रचनाएं हैं। पहले भाग में २५ खेलों का, द्वितीय में ५० खेलों का वर्णन है। व्यास जी की बचपन से ही ऐन्द्रजालिक

खेलों में रुचि रही होगी अत इनके रहस्य व चातुर्य को व्यास जी ने अच्छी तरह समझ लिया था।

(५) **बहुआयामी साहित्य**—व्यासजी उच्च कोटि के विद्वान् थे, अतः उनकी प्रतिभा किसी सकीर्ण दायरे में बँधी हुई नहीं थी। साहित्य में तो आपकी विद्वत्ता सुज्ञात है ही, किन्तु संस्कृत में लिखे गये 'कुण्डली दीपक', 'समस्यापूर्ति सर्वस्व' ग्रन्थ अन्य व्यक्तियों को भी समस्यापूर्ति का एव कविताओं की रचना का ज्ञान एव अभ्यास करवाने हेतु लिखे गये। ये दोनों ही अनुपलब्ध हैं। साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त आपने वैज्ञानिक विषयों का भी अध्ययन किया था। इतिहास, रेखागणित, चिकित्सा-ज्ञान से सम्बद्ध रचनाएं आपके व्यापक ज्ञान को सूचित करती हैं। संस्कृत में इतिहास-सक्षेप एव रेखागणित रचनाएं लिखी, किन्तु अनुपलब्ध हैं। हिन्दी भाषा में 'चिकित्सा चमत्कार', 'क्षेत्र कौशल,' 'रेखागणित भाषा', 'बिहारी-चरित्र' 'स्वामी-चरित्र' पुस्तकें लिखी। 'क्षेत्र-कौशल' में व्यास जी ने सरल-रेखा वाले क्षेत्रों से सम्बद्ध भिन्न-भिन्न प्रकार के योग और वियोग की स्थिति समझाई है। 'विभक्ति-विलास' नामक एक अन्य पुस्तक में आपने हिन्दी व्याकरण विषयक अपने इस मत को सम्यक् रूपेण रखा कि विभक्तियों को पृथक्तया ही लिखा जाना चाहिये। अपने जीवन से जुड़ी घटनाओं को आपने 'निजवृत्तान्त' पुस्तक में वर्णित किया।

बहुविज्ञता के धनी व्यासजी कुशल अनुवादक भी थे, जिन्होंने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'वेणीसंहार' 'तर्कसग्रह' एवं 'सांख्यकारिका' जैसे प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद अतिसुगम भाषा में किया। 'भाषा ऋजुपाठ', 'कथाकुसुम कलिका' भी व्यासजी द्वारा अनूदित साहित्य है। कुशल अनुवादक होने के साथ-साथ व्यासजी ने साहित्य नवनीत नामक पुस्तक के सम्पादन का गम्भीर दायित्व भी

निभाया। 'पीयूष-प्रवाह' पत्रिका का भी प्रकाशन कार्य व्यासजी की देख-रेख में होना था।

(6) **अंग्रेजीशासन प्रशंसक-साहित्य**— पण्डित अम्बिकादत्त व्यासजी मुगल शासकों की धर्म के प्रति बर्बरतापूर्ण नीति के विरोधी थे। मुसलमानों के धार्मिक विद्वेष एवं अत्याचारों का वर्णन अन्यान्य कृतियों में यथास्थान तीव्र आक्रोश के रूप में उभर कर फूट पड़ा है, जबकि अंग्रेजी हुकूमत के प्रति व्यासजी की अनुरक्ति व्यक्त हुई है। 'पुष्प-वर्षा' ब्रज भाषा में लिखा गया एक लघुकाव्य है जिसमें महारानी विक्टोरिया के संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त के साथ-साथ ब्रिटिश राज्य विस्तार का परिचय दिया गया है। इसकी रचना महारानी विक्टोरिया की जयन्ती के उपलक्ष्य में की गई थी। 'भारत सौभाग्य' इसी विषय को लेकर लिखा गया नाटक है, जिसकी चर्चा रूपक-साहित्य में की जायेगी। सम्भवत: व्यासजी को धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न करने की अंग्रेजी सरकार की प्रवृत्ति मुगलशासकों की नृशंसता से अपेक्षाकृत अच्छी प्रतीत हुई होगी। 'पुष्प वर्षा काव्य में प्रकृति वर्णन की छटा का मनोहारी वर्णन भी उपलब्ध होता है। 'पुष्पोपहार' नामक एक अन्य कृति का भी नामोल्लेख मात्र ही मिलता है।

(7) **संस्कृत-शिक्षण साहित्य**—अब तक के विवेचन से व्यास जी के संस्कृत भाषा के प्रति अगाध प्रेम की अभिव्यक्ति में कोई संशय नहीं रह जाता। वे सच्चे संस्कृतज्ञ थे, जिनका उद्देश्य इस भाषा की शिक्षा के लिए बालकों को अधिकाधिक प्रोत्साहन देना था। बिहार प्रदेश में व्यासजी ने संस्कृत विद्यालयों के प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया था। अत: इस पद पर कार्य करते हुए अंग्रेज सरकार के नुमाइन्दों को भी विश्वास में लेकर संस्कृत भाषा को विषय के रूप में पढ़ाये की सहमति प्राप्त की। आपने बिहार-संस्कृत समाज' की स्थापना भी की थी। बच्चों को संस्कृत भाषा

सरलता से कैसे सिखलाई जाये ? इसके लिए इन्होने 'रत्नाष्टक,' 'संस्कृत अभ्यास पुस्तक' (दो भाग), 'प्राकृत-प्रवेशिका,' 'बाल-व्याकरण' और 'कथा कुसुमम्' नामक कृतियां लिखी। 'बाल-व्याकरण' पुस्तक में सस्कृत व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान कराने का प्रयत्न है। 'सस्कृत अभ्यास-पुस्तकम्,' व्यासजी ने अग्रेजी भाषा में सस्कृत का अभ्यास कराने के लिए 'अंग्रेजी कम्पोजिशन बुक्स' के तरीकों पर लिखी है। पुस्तक का द्वितीय भाग अपेक्षाकृत उच्च स्तरीय है। 'कथा कुसुमम्' मे २५ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद कथाए सकलित है। यह एन्ट्रेन्स की परीक्षा के स्तर पर विद्यार्थियों को संस्कृत की शिक्षा देने के लिए लिखी गई थी। आरम्भ मे छोटी-छोटी कहानियां है, बाद मे चार-पांच पृष्ठ तक की लम्बी कथाएं भी है। कथा के सार को शिक्षा के रूप मे श्लोकबद्ध किया गया है। पुस्तक की भाषा सरल, ललित एव प्रवाह-पूर्ण है। 'संस्कृत-सजीवन' पुस्तक में संस्कृत भाषा की आवश्यकता और उपयोगिता के लिए दिये गये व्याख्यान संकलित है। व्यास जी सस्कृत भाषा के दुरूह व्याकरण ज्ञान में भी अतिनिपुण थे। 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' रचना उनके सस्कृत व्याकरण के ज्ञान की प्रौढ़ता का निदर्शन करवाती है। संस्कृत वाक्य रचना से बड़े-विद्वान् भी त्रुटिया कर जाते हैं। अतः भाषा की रचना में शुद्धता के महत्त्व को स्वीकार करते हुए सूक्ष्म अशुद्धियों का परिमार्जन कैसे हो सकता है ? यह इस पुस्तक में भली भांति समझाया गया है। पुस्तक के दो भाग हैं। प्रथम भाग में विभिन्न प्रकार की अशुद्धियों से युक्त अनुष्टुप् छन्द के १० श्लोक और १११ साधारण वाक्य हैं। इन वाक्यों की अशुद्धियों को विद्यार्थी खोजें और शुद्ध करें यथा 'न कोऽपिमित्रस्त्वदन्य' वाक्य में मित्रम् शब्द नपुंसक लिंग में प्रयुक्त क्यूं नही हुआ? इत्यादि। 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्' नामक द्वितीय भाग से कुछ कूट श्लोकों को उद्धृत कर संस्कृत भाषा की व्युत्पत्ति का प्रदर्शन किया है। इस प्रकरण में ८० पद्य है, जिनके १४ विभाग किये गये, है। कही कर्त्ता गुप्त है तो कही क्रिया, कहीं सन्धि, तो कही

समाम गुप्त है। संस्कृत भाषा का व्याकरण विद्वानों के लिए भी क्लिष्ट हो सकता है अतः उनके मार्ग-प्रदर्शन हेतु इस पुस्तक की रचना की गई है। उपर्युक्त सभी रचनाएं संस्कृत भाषा ज्ञान के प्रति अम्बिकादत्त जी के रुझान को स्पष्ट करती हैं।

(८) **अलंकार-शास्त्र-सम्बन्धी साहित्य** — व्यासजी काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों को सूक्ष्मताओं के ज्ञाता थे। इन्होंने संस्कृत भाषा में छन्द-प्रबन्ध, अनुष्टुप्लक्षणोद्धार, गद्यकाव्य मीमांसा-कारिका पुस्तकें लिखी, किन्तु ये अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। हिन्दी भाषा में रचित 'गद्यकाव्य-मीमांसा-भाषा' रचना साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। व्यासजी ने अपने दृष्टिकोण से गद्य के भेदों का निरूपण, गद्य काव्य का स्वरूप उसके भेदोपभेदों का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। उपन्यास नामक विधा का विस्तृत विवेचन और कई आधारों पर वर्गीकरण समझाया गया है। भले ही विद्वद्-वृन्द को व्यास जी का यह विश्लेषण मस्तिष्क का व्यायाम अथवा अतिरंजित कल्पना ही प्रतीत होता होगा, किन्तु उपन्यासों के आरम्भिक युग में उपन्यास पर की गई गद्य काव्य की यह शास्त्रीय मीमांसा उनकी मौलिक पर्यवेक्षण शक्ति की परिचायक है।

(९) **रूपक-साहित्य** — यह एक विस्मय जनक तथ्य है कि व्यास जी ने भले ही ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त की हो, किन्तु सहृदयता के अनुरूप 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' में उनकी वृत्ति रमी। इन्होंने हिन्दी एवं संस्कृत में विपुल नाट्य-साहित्य की रचना की। सर्वप्रथम हिन्दी भाषा में लिखित 'ललिता-नाटिका' ब्रजभाषा के माधुर्य से, शृंगार एवं हास्यरसमय रसपेशल गीतों से बहुत रमणीय कृति बन पड़ी है। इसमें बालगोपाल श्री कृष्ण और ललिता गोपिका का शृंगार ललित गीतों और सरस संवादों में वर्णित हुआ है। ललिता गोपिका की विरह-वेदना, विशाखा नाम की सखी एवं मनसुखा गोप की योजनानुसार उसके पति को मथुरा

भेज देना, अर्धरात्रि मे गोवर्धन वेश मे कन्हैया से भेंट, पति गोवर्धन का क्रुद्ध होना, तदनन्तर नारदजी का आगमन एवं सबको यह बतलाना कि कृष्ण सनातन ब्रह्म के अवतार हैं और गोपियां देवियो की अवतार हैं घटनाएं वर्णित हैं। नाटिका की समाप्ति शान्तरस मे होती है। नाटिका के संवाद वक्रोक्ति और व्यंग्यात्मक हैं किन्तु गीत भी ललित, मधुर गेय एवं चित्ताह्लादक हैं— विदा लेते कन्हैया से ललिता गोपी कहती है—

"सब रोज की बात कहे न कछू
कबहूं तो हमें हरसाया करो।
प्रति प्यारी तिहारी अनेक यहैं
पै लख तऊ चित लाया करो।
मनमोहिनी मूरति की दरसाई
के नैनन को सरसाया करो।
पिय प्यारे छली हमरी हू गलिन में
भूलि कै तो भला आया करो।।

गो-संकट-नाटक में व्यास जी ने गायों की रक्षा का प्रश्न उठाया है। गौ-रक्षा प्रत्येक हिन्दू का पुनीत कर्त्तव्य है। नाटक के कथानक का समय अकबर का है। मुसलमान हिन्दुओं को चिढ़ाने मात्र के लिये गौ-वध का जघन्य कर्म करने के लिये आग्रह करते हैं। हिन्दु-मुस्लिम द्वेष बढ़ जाने पर अकबर के दरबार में दोनों पक्ष उपस्थित होते हैं। सम्राट् गौ-वध के निषेध की आज्ञा देते हैं। भरत वाक्य से नाटक की समाप्ति होती है। इस नाटक में जहां कवि की मुस्लिमों के अत्याचारों के प्रति तीव्र आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं प्रसंगवश गायों की उपयोगिता का भी विशद वर्णन उपलब्ध होता है। नाटक की भाषा सशक्त एवं प्रभावपूर्ण है एवं संवाद ओजस्वी हैं। नाटक के गीत अवसरानुकूल मार्मिक बन पड़े हैं। यथा—

घनि घनि भारत की निधि गैया।
दूध पिवाई सबनि प्रतिपालति
ज्यों बालक को मैया।
दही मलाई माखन खोवा
दूध घीव उपजैया।
सब पकवान साज कों सजि सजि
आपु घास चरैया ॥ धनि ॥

"भारत-सौभाग्य" भी हिन्दी भाषा में रचित व्यास जी का अनुपम नाटक है। यह एक भावात्मक रूपक है, जिसमें श्री कृष्ण मिश्र रचित प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक की भांति अमूर्त पात्र मूर्त रूप में चित्रित किये गये हैं। पुरुष पात्रों में भारत-सौभाग्य, विश्व भोग, भारत दुर्भाग्य, प्रताप व उत्साह जैसे भाव हैं तो स्त्री पात्रों में मूर्खता, फूट, शिक्षा, एकता, दया, उदारता आदि भावनाएं हैं। यह नाटक विक्टोरिया जयन्ती के उपलक्ष्य में सन् १८८६ में लिखा गया था। इसमें अंग्रेजी सरकार के शासन की अच्छाइयों की प्रशंसा की गई है और पूर्व मुगल शासकों की बुराइयों की निन्दापरक व्यंजना प्रस्तुत की गई है। भरत वाक्य से नाटक समाप्त होता है।

'कलियुग और घी' नामक लघु रूपक एक प्रचारात्मक रचना है, जिसमें कवि ने हिन्दुओं की सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराओं में सुधारों का विरोध किया है। बाल-विवाह एवं मूर्तिपूजा के खण्डन का विरोध यथा स्थान किया गया है। कलियुग से त्रस्त घृत अन्त में श्री कृष्ण की शरण में चला जाता है जहां एकता और उत्साह उनकी रक्षा करके सनातनधर्म को बचाते हैं।

'मन की उमंग' में व्यासजी द्वारा लिखित ७ छोटे-छोटे एकांकी रूपक संकलित हैं। प्रथम ५ रूपक हिन्दी भाषा में हैं और दो

संस्कृत भाषा में है। ये सभी रूपक व्यास जी के भक्त हृदय की धार्मिक उमगों को प्रतिबिम्बित करते हैं। इन सभी धर्म सम्बन्धित रूपकों की रचना धार्मिक उत्सवों पर अभिनय के लिये की गई थी और प्रायः सभी का मंचन मुजफ्फरपुर की धर्म-सभा में हुआ था। भारत-धर्म, धर्म-पर्व, संस्कृत-सताप, देवपुरुष दृश्य एवं जटिल वणिक्, हिन्दी एकांकियो में भारतीय संस्कृति, भारतीय-धर्म, संस्कृत भाषा की अवनति, ब्राह्मण जाति की गिरती प्रतिष्ठा एवं मुस्लिम शासन के प्रति खिन्नता विषय क्रमशः वर्णित किये गये हैं। इन रूपकों के संवाद व्यास जी के मन की पीड़ा को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

संस्कृत भाषा में व्यास जी ने तीन रूपक लिखे— धर्माधर्म कलकलम्, मिथ्यालापः एवं सामवतम्। प्रथम दो रूपक तो मन की उमंग मात्र लगते हैं ही प्राप्त होते हैं। एक-एक संवाद के इन छोटे-छोटे रूपकों को एक नई रचना शैली माना जा सकता है। संस्कृत नाट्यशास्त्र की दृष्टि से भले ही इनका समावेश रूपक की किसी भी विधा के अन्तर्गत नहीं हो सकता है, किन्तु इनकी रचना अभिनय के लिये हुई थी। अतः इन्हें अभिनेय संवाद तो स्वीकार करना ही होगा। 'सामवतम्' संस्कृत नाट्यशास्त्र परम्परा की दृष्टि से सफल नाटक कहा जा सकता है। स्कन्द पुराण के एक पौराणिक आख्यान को नाटक की कथा का आधार बनाया गया है। सामवान् नामक एक ऋषिपुत्र का स्त्री रूप में परिवर्तित होकर सुमेधा, जो पूर्व में उसका मित्र था, से विवाह की कथा वर्णित है। इस नाटक में ६ अंक हैं। नाटक का नायक सुमेधा धीर-प्रशांत कोटि का है। शृंगार प्रमुख रस है। एक पौराणिक शुष्क आख्यान को कवि ने अपनी मौलिकता के आधान से सरस रूप में रोचक एवं हृदयग्राही बनाकर प्रस्तुत किया है। घटना-संयोजन का सौष्ठव देखते ही बनता है। भारतीय समीक्षा के मानदण्डों पर यह नाटक पूर्णतः खरा उतरता ही है। पाश्चात्य

आलोचना के सिद्धान्तों से भी इसे उत्तम नाटक माने जाने में कोई आपत्ति नहीं। कवि पर कालिदास एवं हर्ष जैसे नाटककारों का प्रभाव होते हुए भी उनकी मौलिकता को अक्षुण्ण माना जा सकता है। अभिनेयता के गुण के कारण यह पाठोन्मख दोष से मुक्त हो पाया है। इसके संवाद अधिकांशरूप में सर्वश्राव्य, हैं जैसे बन्धुजीव और कलि के वार्तालाप की एक झलक—

नेपथ्य :— अरे ! कस्त्व मुनीनामाश्रमसमीपे क्रूर गर्जसि ?

कलि :— अरे ! रे ! भ्रातर भ्रूणहत्याया, मद्यपानस्य मातु. गौ-हिंसाया गुरुवर कलि वेत्सि न मूर्ख ।

नेपथ्य :— तद् गच्छ शौण्डिकालयम् । मुनिमण्डले ते नत्र स्थानम् ।

कलि :— अस्ति, अस्मिन्नेव दुर्वाससः उटजे मम प्रियमन्त्री क्रोधो निवसति । तत्रैव गच्छामि ।

'सामवतम्' नाटक सुखान्त है। इसकी एक विशेषता का उल्लेख करना उपयोगी होगा कि अन्य संस्कृत नाटकों की तुलना में इसी नाटक में शास्त्रीय पद्धति के गीत एवं नृत्यों के प्रचुर सन्निवेश से नाट्य सौन्दर्य की श्री वृद्धि हुई है (स्थानाभाव से परिचय मात्र ही दिया गया है, वरना यह नाटक संस्कृत साहित्य में अद्वितीय स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है।)

(१०) उपन्यास साहित्य— संस्कृत साहित्य में व्यास जी गद्य काव्यकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। उपन्यास मानव-जीवन की सहज अभिव्यक्ति है। इस नई विधा में उन्होंने हिन्दी भाषा में आश्चर्य-वृत्तान्त एवं स्वर्ग-सभा तथा संस्कृत भाषा में शिवराज-विजय नामक प्रसिद्ध कृतियां लिखीं।

आश्चर्य-वृत्तान्त अद्भुत घटनाओं से परिपूर्ण रोचक उपन्यास है। इसका कथानक स्वप्न रूप में है। एक बंगाली-बाबू के साथ जयपुर निवासी सज्जन का भ्रमण वृत्तान्त गया तीर्थ के समीप गड्ढे में गिरने से आरम्भ होता है। वहीं पर उसे भूगर्भ वेत्ता अंग्रेज मिलता है। ये अनेक अद्भुत वस्तुएं देखते हैं। यथा जरासन्ध का बन्दीगृह, चाणक्य का मन्त्रागार, गंगा का प्रवाह, व्यासाश्रम विद्याधरिया, नरक, इत्यादि। इन अद्भुत स्थानों के दर्शन कराते हुए व्यास जी ने प्राचीन आर्य-सभ्यता संस्कृति व धर्म के प्रति अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त की है। इसमें अद्भुत-रस अंगी रस है। हास्य, करुण, भयानक आदि रसों की सृष्टि भी अंग रूप में हुई है। उपन्यास में प्रकृति-चित्रण सूक्ष्म व सजीव रूप में हुआ है। प्रातः काल का वर्णन संस्कृत गद्य की समास-बहुल व विशेषणों के प्राचुर्य से युक्त शैली की याद दिलाता है। उदित होते हुए चन्द्रमा की शोभा पाठकों को मुग्ध करने की क्षमता रखती है। "इतने में नील-गम्भीर तालाब पर तैरते हंस की सी, पन्ने की थाली में धरे मक्खन सी, सघन तमाल में लगे चन्दन बिन्दु की सी, यमुना में पैरते बलभद्र की सी, नीलाम्बर में काढ़े जरी के बूटे की सी, हबशियों की फौज में घुसे अंग्रेज की सी, काले कोट पर लगे चांदी के तमगे सी और आकाश में उड़ते आर्यों के यश की सी शोभा देता हुआ चन्द्रमा आकाश में दिख पड़ा।" उपन्यास की भाषा रोचक, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। कवि की भाषा उनके सफल वक्ता होने का भी निदर्शन कराती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी गद्य को नवीन प्रोत्साहन देने के लिये व्यास जी का नाम सुवर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।'

'स्वर्ग-सभा' उपन्यास एक पौराणिक आख्यान के रूप में है। ब्रह्मा जी के सभापतित्व में स्वर्ग में एक सभा का आयोजन होता है, जिसमें सभी देवी देवता व्यंग्यात्मक भाषा में अपना दुःख प्रगट

करते हैं। सरस्वती संस्कृत के ह्रास से, कालीमाता मन्दिरों में पशुबलि से, अग्नि-देव यज्ञों में हव्य के अभाव से, वेद अपने प्रति आस्था के अभाव से, यम वकीलों की वहस से दुःखी है। उपन्यास के अन्त में नारद जी हरिनाम स्मरण के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। पुस्तक में सर्वत्र चुभती व्यंगात्मक शैली में भारतीय धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधःपतन के मर्म स्पर्शी भावों को अभिव्यक्त किया गया है।

'शिवराज-विजय' नामक रचना किसी प्रकार के परिचय की मोहताज नहीं। व्यास जी की प्रतिभा का यह चूडान्त निदर्शन है। इसी रचना ने उन्हें दण्डी, बाण एवं सुबन्धु जैसे गद्य काव्यकारों की पंक्ति में सुप्रतिष्ठित कर दिया है। अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से पहले बंगला भाषा में तदनन्तर हिन्दी भाषा में उपन्यास लेखन आरम्भ हुआ। सतत पराधीनता एवं दासता के उस युग में व्यास जी ने संस्कृत साहित्य में उपन्यास नामक नई विधा में लिखकर भावी पीढ़ी के लेखकों के सामने उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में अपनी कृति प्रस्तुत की। नूतन प्रयोग के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यास जैसी जटिल और लोक-प्रिय विधा के रूप में शिवाजी का चरित्र प्रस्तुत कर व्यास जी ने गद्यसाहित्यकारों में उच्च स्थान प्राप्त किया। प्राचीन ऐतिहासिक काव्य राजाओं के आश्रय में लिखे जाते थे। अतः इनमें प्रशंसापरक विशेषण और वर्णनों का बाहुल्य होता था, जबकि इतिहास व कल्पना का समुचित सन्निवेश ही ऐतिहासिक उपन्यास की आधार-भित्ति होती है। महाराष्ट्र के परमवीर शिवाजी महान् देशभक्त एवं धर्म प्रेमी थे। शिवराज-विजय में उनकी मुगल शासकों पर सतत विजय का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसका कथानक तीन विरामों में विभक्त है, जिसमें प्रत्येक विराम में चार निश्वास हैं। प्राचीन परिपाटी से हटकर कथानक का आरम्भ सूर्योदय होने पर पुष्प-चयन के लिये वटु के कुटिया से बाहर निकलने से होता है। इसमें देशभक्ति रस

मंगलाचरण के निर्वाह की परम्परा का पालन भी हो जाता है। तदनन्तर कवि ने क्रमशः मुगलों के आधिपत्य से खिन्न शिवाजी के स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये संघर्ष का वर्णन घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

बीजापुर दरबार से भेजे गये अफजल खां का वध, प्रच्छन्न वेष में भूषण कवि से भेंट, पूना में शाइस्ताखां के दरबार में जाना, चाँद खां का वध, यशवन्तसिंह से भेंट, रोशनआरा से प्रणय, शाइस्ताखां पर आक्रमण, जयसिंह से भेंट व सन्धि, दिल्ली दरबार में उपस्थित होना, औरंगजेब द्वारा बन्दी बना लिया जाना, रोगी होने के बहाने वहां से पलायन करना और सतत परिश्रम के बाद सतारा नगरी को राजधानी बनाना एवं सुखपूर्वक महाराष्ट्र में शासन करना प्रधान कथावस्तु है। शिवाजी के कथानक के साथ-साथ रघुवीरसिंह और सौवर्णी की कथा-पताका एवं गौरसिंह, वीरेन्द्रसिंह की कथाएं प्रकरी रूप में प्रासंगिक कथावस्तु कही जा सकती हैं। ये नायक के कार्य में सहायक हैं। शिवराज विजय के पात्र प्रतिनिधि पात्र कहे जा सकते हैं। शिवाजी तथा उनके सभी साथी वीर, सच्चरित्र, देश प्रेमी एवं धर्म प्रेमी हैं। इस गद्यकाव्य का अंगीरस वीर-रस है, जैसे शिवाजी के चित्रण में "कठिनामपि कोमलाम् उग्रामपि शान्ताम्, शोभितविग्रहामपि दृढसन्धिबन्धनाम् कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्, विशालललाटाम् प्रचण्डबाहु-दण्डाम्, शोणापांगाम्, सुनद्ध स्नायुम्........ मूर्ति ददर्श दर्शम्।" श्रृंगार रस अंग रूप में है। रघुवीर और सौवर्णी की प्रणय-कथा तथा शिवाजी और रोशन आरा के प्रसंग में इस रस की चामत्कारिक अभिव्यक्ति हुई है। हास्य, करुण, रौद्र, भयानक, एवं अद्भुत रसों की सृष्टि भी यथा स्थान हुई है। आलोचना के पाश्चात्य मानदण्डों पर भी समीक्षा किये जाने पर शिवराज-विजय नामक कृति कथानक के वैशिष्ट्य, चरित्र-चित्रण के औदार्य, प्रभावशाली संवादों, देशकाल का समुचित उपस्थापन, प्रवाहपूर्ण रचना-शैली एवं धर्म एवं जातीय गौरव की प्रतिष्ठा

करना रूप उद्देश्य प्राप्ति की दृष्टि से महनीय कृति है। इसमें कल्पना द्वारा न तो इतिहास को विकृत किया गया है और न इतिहास के नग्न सत्यों से काव्य को नीरस अथवा बोझिल बनाया गया है। शिवराज विजय प्राचीन गद्यकाव्यों की न्यूनताओं को दूर करते हुए आधुनिकता के साथ समन्वय स्थापित करने का महान् प्रशंसनीय प्रयास है।

उपर्युक्त विवेचन में उनके कृतित्व का परिचय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। जैसे सूर्य को रोशनी दिखाने के लिये दीपक की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार अपनी कृतियों से महान् बने हुए साहित्यगगन के भास्कर प० अम्बिकादत्त जी एवं इनका कृतित्व सदैव अमर रहेंगे।

व्याख्याता, संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय
अजमेर (राज०)

संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा में एक अभिनव प्रयोग

डा० सुधीरकुमार गुप्त

मेरे पत्र या लेख का विषय है—"संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा में एक अभिनव प्रयोग"। इसका लक्ष्य पं० अम्बिकादत्त व्यास की रचना 'शिवराजविजय' है।

पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म संवत् १८७२ विक्रमी अर्थात् १८५८ ई. में हुआ था। आपका प्रारम्भिक जीवन बहुत सुखमय नहीं रहा। आपके युग में सन् १८५७ ई. की क्रान्ति के विफल हो जाने पर न में धार्मिक और सामाजिक उत्थानोन्मुख आन्दोलन प्रखरता से हो रहे थे। इनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके आर्यसमाज का विशेष जोर था। अपने संस्कारों और शिक्षा आदि के कारण व्यास जी इनके कार्य से सहमत न हो सके। अतः उत्तर भारत में घूम-घूम कर आपने इनका विरोध किया। इस भ्रमण में आपने अनेक स्थितियों का साक्षात् अनुभव किया। उस काल की राजनीतिक स्थितियों, *ईसाइयों और मुसलमानों के हिन्दुओं के प्रति अत्याचारों आदि से भी आप* क्षुब्ध थे। अतः दयानन्द से आपने समाज के उत्थान की अपरिहार्य अनुभूति ली और शिवराज विजय में उसको क्रियात्मक रूप दिया। शिवराजविजय के 'निर्माणहेतुः' शीर्षक प्राक्कथन में 'मया तु सनातनधर्म-धुर्यंद्शिवराजवर्णनेन रसना पावितैव, प्रसङ्गतः सदुपदेशनिर्देशैः

स्वग्राह्यर्थं सफलितमेव'[1] शब्दों में यह अनुभूति स्फुट रूप में अभिव्यक्त हो रही है।

आपकी अनेक रचनाओं में शिवराजविजय ही विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। संस्कृत गद्यकाव्यों में इसका एक विशेष स्थान है। यह उनमें अनेक धाराओं में विलक्षण है और इस प्रकार यह एक नई धारा का प्रवर्तक अभिनव प्रयोग है। यहां इस तथ्य का ही प्रतिपादन अभीष्ट है।

प्राचीन कहावत है कि 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। यद्यपि पद्यरचना में कवि को पदावलि के चयन और प्रयोग में अनेक बाधाओं को पार करना पड़ता है और गद्यरचनाओं में वह उन्मुक्त और स्वच्छन्द होता है, तथापि प्राचीनतम रचनाकाल से अद्यावधि पद्यरचना का ही बाहुल्य रहा है, काव्य-श्रेणी की गद्यरचना उसकी अपेक्षा बहुत अल्प रही है। गद्य मुक्तक, वृत्तगन्धि, चूर्णक और उत्कलिकाप्राय इन चार रूपों में विकसित हुआ है। पृथक्-पृथक् इन गद्यों में रचित काव्यकृतियां अब उपलब्ध नहीं हैं। हो सकता है, पहले कभी रही हों, परन्तु साहित्य में इस स्थिति का कोई साक्षी नहीं मिलता है। काव्यशास्त्र की कृतियां भी इस विषय में मौन हैं। उपलब्ध गद्यकाव्य मिले-जुले गद्य में रचे हुए हैं। पं० अम्बिकादत्त व्यास के शिवराजविजय में भी इन गद्यों का मिला-जुला रूप मिलता है।

पं० अम्बिकादत्त व्यास से पहले सुबन्धु की वासवदत्ता, बाण की कादम्बरी और हर्षचरित, दण्डी का दशकुमारचरित, धनपाल की तिलकमञ्जरी, सोड्ढल की उदयसुन्दरीकथा, ओडयदेव वादीभसिंह की गद्य-चिन्तामणि और वामनभट्ट का वेमभूपालचरित, ये आठ गद्यकाव्य-रचनाएं ही उपलब्ध होती हैं। व्यासजी ने शिवराजविजय के निर्माणहेतु

---

१. शिवराजविजयः, व्यासपुस्तकालयः, मानमन्दिरम्, काशी, १९५७, निर्माणहेतुः, पृ. २

भूमिका में इस विरलता पर एवं विद्वानों की संस्कृत में गद्य-लेखन की उपेक्षा पर खेद प्रकट किया है। बंगला, गुजराती और हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में उपन्यासों की भरमार से भी संस्कृतज्ञों द्वारा अनुभूति न होने पर व्यास जी ने स्वयं इस क्षति को पूर्ण करने और दूसरों को इस प्रकार की गद्यरचना के लिए प्रेरणा देने के लिए शिवराजविजय की रचना की।

संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने गद्यकाव्य के दो भेद-कथा और आख्यायिका किये। दण्डी ने इन दोनों को एक माना[2]। प्राचीनों के मत में कथा में कवि के वंश का वर्णन पद्यों में होता है। वृत्तकथन नायकभिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। सामान्यतः कथा में आन्तरिक विभाग नहीं होते। यदि हों तो उन्हें 'लम्बक' कहते हैं। आख्यायिका में कवि के वंश का वर्णन गद्य में होता है। वृत्तकथन नायक स्वयं करता है। आन्तरिक विभाग 'उच्छ्वास' कहे जाते हैं। आख्यायिका में लड़कियों का अपहरण, युद्ध, नायक और नायिका का एक दूसरे से वियोग तथा नायक के अन्य कष्टों का वर्णन होता है। कथा में ये विषय नहीं होते हैं। आख्यायिका में आगे आने वाली घटनाओं के सूचक पद्य वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों में बीच-बीच में आते हैं। कथा में ऐसे संकेत नहीं मिलते हैं।[3] अलंकार-संग्रहकार के मत में कथा की वस्तु कल्पित और आख्यायिका की सत्य होती है—'कथा कल्पितवृत्तान्ता सत्याख्यायिका-मता।' आनन्दवर्धन[4] ने समासों के प्रयोगों पर दोनों में भेद किया है।

विश्वनाथ के मत में कथा के आदि में पद्यों में नमस्कार, खलादि के वृत्त का कथन, कहीं आर्या और कहीं वक्त्रापवक्त्र छन्द होते हैं तथा

---

२. दण्डी, काव्यादर्श, १/२३-३०

३. अग्निपुराण, १/२५-२६

४. ध्वन्यालोक (बम्बई), पृ. १४३-१४४

कथा सरस होती है और शैली गद्यात्मक। आख्यायिका भी ऐसी ही होती है। वहां कवि के वंश का वर्णन कहीं-कहीं अन्य कवियों के वृत्त और पद्य भी होते हैं। कथा के अंशो का नाम आश्वास होता है। आश्वास के प्रारम्भ में आर्या, वक्त्र और अपवक्त्र छन्दो से अथवा अन्य निमित्त या उपाय से भावी अर्थ (अर्थात् वृत्त) की सूचना दी जाती है—

"कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके ॥
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ।
आख्यायिका कथावत्स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम् ॥
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित् ।
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते ॥
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् ।
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम् ॥[५]"

कथा और आख्यायिका के ये लक्षण पूरे के पूरे शिवराजविजय पर लागू नहीं होते हैं। यह ग्रन्थ तीन विरामों में विभक्त है, जिनमें प्रत्येक में चार-चार 'निश्वास' है। इस प्रकार यह १२ निश्वासों में पूर्ण हुआ है। इसमें कवि ने कहीं भी गद्य में या पद्य में अपना या अन्य किसी कवि का न वृत्त दिया है, न उल्लेख किया है। भूषण कवि इस श्रेणी में नहीं आता है। वह यहां एक पात्र के रूप में ही आता है। वैसे भी वह हिन्दी का कवि है, संस्कृत का नहीं है। अग्निपुराण ने आख्यायिका के जो विषय गिनाए हैं, वे लगभग सभी यहां शिवराजविजय में मिलते हैं। निश्वासों के प्रारम्भ में कवि ने स्फुट पद्यांशों, जगन्नाथ, कुवलयानन्द,

---

५. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६। इस विषय के विवेचन के लिए डा. सुधीर कुमार गुप्त, शुकनासोपदेशः (जयपुर, १९६७), भूमिका, पृ. १४-१८ भी देखें।

हितोपदेश और भागवत पुराण आदि के पद्यों के द्वारा शिवराज में वर्णित मुख्य वृत्त का संकेत दिया है। यहां न पद्यों में नमस्कार है और न खल आदि का कीर्तन है। इस प्रकार यह न कथा है, न आख्यायिका और न दण्डी की वर्णना का गद्यकाव्य, क्योंकि गद्य काव्यों में कथा-आख्यायिका के लक्षणों का सबर मानते हैं जो शिवराजविजय में नहीं है। अतः यह काव्यशास्त्रियों की वर्णना से भिन्न अभिनव गद्यकाव्य मात्र है।

जैसा ऊपर कहा गया है, पं० अम्बिकादत्त व्यास के युग में विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपन्यासों की भरमार हो रही थी। उपन्यास गद्य में ही लिखे जाते रहे हैं, अतः उन्हें गद्यकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। उपन्यासकार अपने मन की कोई विशेष बात एवं कोई अभिनव मत प्रस्तुत करता है। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए लेखक एक कथा और उसके पात्रों का आश्रय लेकर विविध शैलियों का अवलम्बन करता है। यह संवादों या कथोपकथन और अपने वर्णन से विषय को गति देता है। यहां पात्र मानव होते हैं और कथोपकथन आदि मानवों के से प्रसंगों के अनुकूल, सार्थक, स्वाभाविक तथा पात्रों के व्यक्तित्व के प्रज्ञापक अपेक्षित हैं। कवि अपना अभिमत, अपने कथनों या वर्णनों में प्रस्तुत करता है। उसका यह अभिमत पात्रों के कथोपकथन में पात्रों की प्रकृति के अनुरूप ही स्थान पाता है। उपन्यासों में देश और काल की स्थिति, प्रकृति और समाज आदि के चित्रण अनिवार्य हैं। उपन्यास का लक्ष्य पाठक के मन में सन्तोषप्रद एवं कार्यपूरक विक्षोभ या चेतना उत्पन्न करना और उसे कर्तव्याकर्तव्य का बोध कराना है। इसकी सिद्धि जीवन में दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं के निरीक्षणजन्य, सुसंगत और तर्कबद्ध वर्णन से होती है। उपन्यास पाठक का मनोरञ्जन करता है और अपनी कलात्मक सृष्टि से उसे एक नए जगत् में विचरण कराता है। यहां मानव-जीवन को प्रभावित करने वाले उपकरणों, उपादानों और मनोवेगों आदि का चित्रण होता है। इसमें यथार्थ और आदर्श का समन्वय अभीष्ट है। ऐसे चरित्रों की सृष्टि भी कमनीय है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचारों से पाठकों को मुग्ध कर सकें।

कथात्मक उपन्यास चरित्रप्रधान भी होसकते हैं और घटनाप्रधान भी। वस्तुतः ये दोनों तत्त्व एक दूसरे में ओत-प्रोत हैं। समाज, इतिहास, यथार्थ, आदर्श और मनोविज्ञान के रूपों को पृथक्-पृथक् प्रमुखता से प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों को क्रमशः सामाजिक, ऐतिहासिक, यथार्थवादी, आदर्शवादी और मनोवैज्ञानिक माना जाता है। उत्तम उपन्यासों में इन सब तत्त्वों का यथावश्यक अंश विद्यमान रहता है।[६] डा० प्रीतिप्रभा गोयल के लेखानुसार व्यासजी ने भी अपनी 'गद्यमीमांसा' नामक रचना में "उपन्यास के स्वरूप, निबन्ध एवं भेदोपभेदों को विलक्षणतया प्रस्तुत किया है।" उन्होंने यह ग्रन्थ अपने 'शिवराजविजय' की उपस्थापना के लिए लिखा था।[७] अतः पं. अम्बिकादत्त व्यास की यह इच्छा होनी स्वाभाविक थी कि उनका शिवराजविजय संस्कृत के कवियों और रचनाकारों के लिए एक प्रेरणास्रोत सिद्ध हो। यह भिन्न बात है कि संस्कृत के कवियों और लेखकों ने इससे जितनी अनुभूति लेनी चाहिए थी, उतनी नहीं ली और इस प्रकार के अधिक उपन्यासों की सृष्टि नहीं हुई। व्यासजी ने हिन्दी में भी 'आश्चर्यवृत्तान्त' नाम का उपन्यास लिखा था, जो हिन्दी साहित्य में तिथिक्रम से तीसरा उपन्यास माना जाता है।[८]

प्राचीन और नवीन गद्यकाव्यों के लक्षणों आदि के उपर्युक्त विश्लेषण से दोनों कालों के गद्यकाव्यों का भेद स्पष्ट उभर कर सम्मुख

६. डा. सोमनाथ गुप्त, "आलोचना : उसके सिद्धान्त," (दिल्ली, १९४९ ई.) पृ. १५८–१७४

७. डा. प्रीतिप्रभा गोयल, "शिवराजविजय : एक मूल्यांकन," (अखिल भारतीय संस्कृत लेखक सम्मेलन, जोधपुर, १९८७ में वाचित लेख), पृ. ३

८. श्री गोपाल प्रसाद व्यास, "साहित्य-मीमांसा-प्रकाश," (दिल्ली) पृ. ४७

उपस्थित हो जाता है। आधुनिक उपन्यास में सुसंगत कथावस्तु में जनसामान्य की अनुभूतियों और जीवन का चित्रण एक अनिवार्य तत्त्व है। प्राचीन संस्कृत गद्यकाव्यों के लक्षणों में और गद्यकाव्यों में यह तत्त्व अनुपस्थित है। उस काल के गद्यकाव्य व्यक्ति-प्रधान और राजघरानों में केन्द्रित हैं। जनसामान्य की समस्याएं और चिन्तन आदि वहां चित्रित नहीं हुए हैं। प. अम्बिकादत्त व्यास ने इस न्यूनता का अनुभव कर देश व काल की परिस्थितियों के आलोक में अपने काल में आधुनिक भाषाओं के साहित्य में विकसित हुई इस उपन्यास-विधा को अपनाकर प्राचीनों से कुछ भिन्न नया मार्ग ग्रहण किया। व्यासजी राज्याश्रित न होकर आत्मनिर्भर सामान्यजन थे। उस युग में प्राचीन काल के से राजा भी नहीं थे। व्यासजी ने युग के यथार्थ स्वरूप को समझकर लोक कल्याण के निमित्त अपने काव्य में जनसामान्य की स्थिति, पीड़ा, आशा, निराशा, उत्साह, आकांक्षा, विधर्मियों के उन्माद के प्रति आक्रोश, विदेशी राज्य के प्रति विद्रोह का स्थित्यनुसार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में चित्रण किया है। ये तत्त्व इस काव्य में प्रारम्भ से ही अभिव्यक्त हुए हैं। कवि ने शिवाजी को अपने काव्य का प्रमुख नायक मानकर देशी राजाओं को विदेशी राज्य के प्रति विद्रोह कर आत्मोद्धार की व्यञ्जना की है। शिवाजी उस काल से बहुत दूर के नहीं थे, अतः जन-सामान्य को उसका बहुत कुछ यथार्थ ज्ञान था। वे धर्म, समाज और राष्ट्र के उद्धारक के रूप में सुज्ञात थे। कथानक के ऐतिहासिक होने के कारण यहां अनेकत्र कल्पना को बहुत छूट प्राप्त नहीं है। रघुवीरसिंह सौवर्णी का आख्यान कल्पित माना गया है। यह भी शिवराज-कथानक के साथ घुलमिल कर सम्पृक्त रूप में चलता है। जैसे भवभूति ने रामकथा में कुछ परिवर्तन किए हैं, वैसे ही रसनारी की शिवाजी में अनुरक्ति आदि की कल्पना भी कवि की है। इसमें वर्णित घटनाएं सब इस धरातल की हैं और सामान्य जनों से सम्बन्ध रखती है। केवल एक प्रारम्भिक कथा—योगिराज मुनि के उत्थान और अवतरण की असाधारण और लोक में सामान्यतः अदृष्ट वर्णन की है।

प्राचीन संस्कृत गद्यकाव्यों की तुलना में शिवराजविजय में पं० अम्बिकादत्त व्यास ने कथोपकथनों या संवादों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। ये इस काव्य के प्राण कहे जा सकते हैं। ये आदि से अन्त तक व्याप्त हैं। इनसे पात्रों के भावों और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी हो रही है और कथा में प्रवाह के साथ सम्बद्धता, राग और भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा उसमें नाटकीयता की योजना भी सम्पन्न हो रही है। उदाहरणार्थ ये संवाद देखे जा सकते हैं–

प्रथम निःश्वास

१. योगिराज और ब्रह्मचारिगुरु का संवाद

द्वितीय निःश्वास

२. दौवारिक और संन्यासी का संवाद

३. तानरंग और अफजलखान का संवाद

पञ्चम निःश्वास

४. शास्तिखान, बदरदीन, चान्दखान, मह[illegible] आदि का संवाद

षष्ठ निःश्वास

५. यशस्विसिंह और महादेव पण्डित का संवाद

सप्तम निःश्वास

६. रसनारी और शिवराज का संवाद

७. शिवराज और विविध व्यक्तियों का संवाद

नवम निःश्वास

८. जयपुर और महाराष्ट्र के राजाओं का संवाद

दशम निःश्वास

९. तीन बालाओं का परस्पर में संवाद

एकादश निःश्वास

१०. महाराष्ट्रराज और राघवाचार्य का संवाद

जैसा उपर्युक्त और अन्यगत अन्य सवादो और वर्णनो मे अभिव्यक्त होता है, व्यासजी ने पात्रो के चरित्र-चित्रण मे अप्रत्यक्ष एव आधुनिक अभिनयात्मक या क्रियात्मक प्रणाली अपनाई है। प्राचीनों के समान सीधा स्वय वर्णन प्रस्तुत नही किया है। शिवाजी, अफजलखान, रमनारी, शाम्तिखान आदि अधिकाश पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इस रचना मे पात्र दो प्रकार के है एक यशीय या सज्जन, दूसरे तद्विरोधी या दुर्जन। शिवराज और उनके सहायक जनदेश और धर्म के प्रेमी, सच्चरित्र और वीर हैं एवं गौरसिंह और श्यामसिंह आदि राजपूतो की विशेषताओ से युक्त है, तो अफजलखान आदि मुसलमान पात्र अहकारी, विलासी, विश्वासघाती और उत्पीडक हैं। व्यासजी ने अपने सब पात्रो को उनके व्यक्तित्व मे ही सीमित न रखकर अपने गुणों वाले व्यक्तियो का प्रतिनिधि बनाया है। इस दिशा मे भी इन्होने बाण आदि से भिन्न मार्ग अपनाया है जिनके पात्र अपने व्यक्तित्व मे केन्द्रित हैं और लोक से असम्पृक्त कहे जा सकते हैं। उनमे धर्म, समाज, राष्ट्र अथवा लोक के उपकार करने की भावना स्फुट रूप से अभिव्यक्त नही हुई है। शबरसेनापति आदि की हिंसकता को कुछ सीमा तक मुसलमान पात्रों की हिंसा के समकक्ष रखा जा सकता है। शबर पशुपक्षियो के हिंसक हैं, तो मुसलमान पात्र मानवों हिन्दुओ के नाशक हैं।

व्यासजी ने अपना कथानक ऐतिहासिक लिया और लक्ष्य पाठक को अपने समाज आदि की यथार्थ स्थिति का परिचय देकर अपने समाज, धर्म और देश के उद्धार करने की प्रेरणा देना रखा। अतः यहां यथार्थ स्थितियों का चित्रण अनिवार्य रहा। सर्वत्र कल्पना की उड़ान इस लक्ष्य की सिद्धि में घातक थी। इसलिए व्यासजी ने उसका परिहार किया और यथासम्भव यथार्थ का चित्रण किया। शिवराजविजय मे आरम्भ से ही हिन्दुओं और उनके धर्म और समाज की हीन अवस्था का चित्रण किया गया है। उदाहरण के लिए ब्रह्मचारिगुरु का योगिराज के समक्ष यह कथन लिया जा सकता है—

"क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जय-जयध्वनि: ? क्व साम्प्रतं तीर्थे तीर्थे घण्टानादः ? क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः ? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथिषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा, भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते। क्वचिन् मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद् रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।"६

इस प्रकार तत्कालीन दशा के चित्रक वाक्य इस रचना में बहुशः मिलते हैं। ऐसे चित्रण यथार्थ पर ही आश्रित है। यह भिन्न बात है कि उनमें भावोद्बोधन के निमित्त अतिरञ्जना का समावेश भी यथास्थान लक्षित होता है।

यह सब होते हुए भी प० अम्बिकादत्त व्यास प्राचीन संस्कृत गद्यकाव्यों की रूढ़ियों से पूर्णतः पृथक् नहीं हो पाए हैं। इनकी भाषा-शैली बाण से प्रभावित है। यहां समासप्रधान पदावली भी है और अलंकारों की छटा भी बहुत कुछ प्राचीन धारा में है। वाक्यविन्यास और वर्णनशैली भी बाण के समान है, तथापि बाण जैसी क्लिष्टता यहां सामान्यतः नहीं है। दुरूह रचनाओं का अभाव है। सरल गद्यों की प्रचुरता है। अलंकार सुबोध हैं। सरल और अल्प समासों वाले स्थल बहुत हैं। भाषा को पात्रों के अनुरूप बनाने का भी प्रयास किया गया है। यथावश्यक पात्रों के अनुरूप एवं कुछ नए संस्कृतीकृत उर्दू आदि के शब्दों की योजना भी की गई है। यथा पीकदान मुसलमानों में बहुत प्रचलित है। इसको यहां निष्ठ्यूतादान भाजन कहा गया है। लोकभाषा के ऐसे संस्कृतीकृत बहुत से शब्दों का प्रयोग किया गया है। यथा मुसलमान को अश्मश्रु, चश्मा को उपनेत्र और लालटेन को काचमञ्जूषा

६. शिवराजविजयः, (काशी, १९५३,) पृ. ८९-९०

अफजलखां को अपजलखान, रमजान को रामयान, रोशनआरा को रसनारी और मुअज्जम को मायाजिह्म कहा है। ऐसे प्रयोगों में स्थान, व्यक्ति और पदार्थ सभी नाम आते हैं।[१०]

जैसा ऊपर कहा जा चुका है-व्यासजी का अपनी इस रचना का उद्देश्य लोक को धर्म, आत्मोद्धार और लोकोपकार की प्रेरणा देना था। इसमें वे पर्याप्त सफल हुए हैं। प्राचीनों ने चतुर्वर्ग को काव्य का लक्ष्य बनाया। चतुर्वर्ग में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आते हैं। इस काव्य में प्रकारान्तर से इसकी सिद्धि मानी जा सकती है क्योंकि यहां हिन्दुओं और उनके धर्म एवं आर्थिक और सामाजिक जीवन की दयनीय स्थितियों में मुक्ति पाने की कामना प्रधानतया अभिव्यक्त हो रही है। शिवराज का इस मोक्षप्राप्ति के लिए महान् प्रयास यहां वर्णित हुआ है।

शिवराजविजय में प्राचीन और आधुनिक गद्यकाव्यों के समान अनेक प्रकार के वर्णन निबद्ध हैं। वहां सूर्यास्त, अरण्य, पर्वत, नगर, किले, उनके निवासियों, तपस्वी, राजा, दूत, कु-शासन, दरबार, युद्ध, ऋतुओं, कृषकजीवन, हलवाइयों (कन्दोइयों) और विवाहोत्सव आदि के प्रभावशाली, समस्त और असमस्त पदावली में वर्णनानुसार वर्णध्वनियुक्त वर्णन मिलते हैं। यहां विक्रमादित्य के काल से उन्नीसवीं शती तक का राजनीतिक इतिहास भी संक्षेप में दिया गया है। बाण का हर्षचरित भी ऐतिहासिक गद्यकाव्य है। यह भी वर्णनों से ओतप्रोत है; परन्तु उन वर्णनों के क्षेत्र, परिवेश और कल्पना व्यासजी के वर्णनों के क्षेत्र आदि से भिन्न हैं। इसमें कालजन्य स्थितियों और लक्ष्य का भेद विशेष कारण हैं। शिवाजी के काल में देश में मुसलमानों का राज्य था। इन शासकों की हिन्दुधर्म के प्रति घोर असहिष्णुता थी। वे सदा ही

---

१०. डॉ० पुष्करदत्तशर्मा, आधुनिक संस्कृत कथासाहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (टंकित), (१९६३), पृ. ३६६-३६७ में संकलित पद देखें।

हिन्दुधर्म की जडे काटने में व्याप्त रहते थे। यहा हिन्दुग्रो ग्रौर मुसलमानो की सस्कृतियो का चित्रण भी यथास्थान मिलता है। सौवर्णी ग्रौर रघुवीर के विवाहोत्सव का वर्णन यथार्थ ग्रौर प्रत्यक्ष दृश्यवत् प्रतीत होता है।

इस संक्षिप्त विवेचन से यह ग्रनायास ही समझा जा सकता है कि श्री ग्रम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित शिवराजविजय प्राचीन गद्य काव्यों से ग्रनेक धाराग्रो, प्रकृति, लक्ष्य, प्रतिपादित विषयो, शैली ग्रौर रचना ग्रादि में भिन्न है। सस्कृत मे इस प्रकार का इससे पहले का कोई ग्रौर ऐतिहासिक उपन्यास उपलब्ध नही है। बाण का हर्षचरित भी ऐतिहासिक गद्यकाव्य है जो ग्राख्यायिका है। शिवराज विजय उससे भी उपर्युक्त ग्रनेक धाराग्रों मे भिन्न है ग्रौर नूतन परिवेशो से ग्रोतप्रोत है। ग्रत: यह कहना सर्वथा उपयुक्त ग्रौर यथार्थ है कि श्री ग्रम्बिकादत्त व्यास ने सर्वप्रथम संस्कृत गद्य काव्यो के क्षेत्र में एक ग्रभिनव प्रयोग किया ग्रौर भावी पीढी को प्रशंसनीय मार्ग प्रदर्शितकर यशीयकार्य किया, जिसके लिए वे सबकी कृतज्ञता ग्रौर प्रशसा के पात्र हैं। नूतन गद्यकवियो को उनसे ग्रनुभूति लेकर व्यक्ति, समाज, देश, लोक ग्रौर धर्म एवं सस्कृति के उत्थान की परिवाहक रचनाएं प्रस्तुत करने का सकल्प कर लेना चाहिए। देश को इसकी परम ग्रावश्यकता है।

निदेशक, भारती मन्दिर ग्रनुसधानशाला
ए-१, वेद सदन, विश्वविद्यालयपुरी,
गोपालपुरा मार्ग, जयपुर–३०२०१८ (राज.)

—०—

शिवराजविजय की शास्त्रीय समीक्षा

● डॉ० चन्द्रकिशोर गोस्वामी

17वीं शती तक संस्कृत साहित्य अपने परम प्रकर्ष को प्राप्त कर 18वीं व 19वीं शताब्दियों में तो विषय तथा रूप की दृष्टि से नई करवटें बदलने लगा था। हिन्दी-साहित्य में तो उस समय गद्य की कुनमुनाहट ही आरम्भ हुई थी। मुगलशासन का प्रभाव कम हुआ था, किन्तु कम्पनी सरकार के शासन का पंजा भारतीयों को पराधीनता के पाश में दृढ़ता से जकड़ता जा रहा था। सहिष्णु भारतीयों की धीरता 19वीं शती के मध्य तक चुक गई थी। परिणामस्वरूप 1857 की स्वतंत्रता-क्रान्ति हुई, जिसकी ऊष्मा ने संस्कृत और संस्कृत की निकटवर्तिनी भाषाओं के साहित्यकारों को अत्यधिक आन्दोलित कर दिया। इसी क्रान्ति की अग्निशिखाओं ने सन् 1858 में राजस्थान के गौरव, संस्कृत-साहित्य के आग्नेय पुरुष पं० अम्बिकादत्त व्यास को जयपुर राज्य में जन्म दिया।[1] जीवन में इनकी गति पूर्व दिशा की ओर बढ़ती हुई विकास का प्रतीक ही बनती गई। शौर्यभू राजस्थान उनकी जन्मस्थली, विद्याकेन्द्र वाराणसी उनकी विद्यास्थली एवं बिहार की भूमि उनकी कर्मस्थली

---

1. जयसिंह-मानसिंह-प्रतापसिंहादिभिर्नृपैः
   शासितचरे जयपुरे जनिर्मदीया बभूव विजयपुरे॥ उपोद्घात-सामवतम् पृ. 11, श्लोक-6

रही ।[2] 42 वर्ष की अल्पायु में ही अपने अपार वैदुष्य से यशस्वी इस तेजस्वी साहित्यकार ने संस्कृत व हिन्दी भाषा में अमर साहित्य की रचना द्वारा माता सरस्वती की सेवा कर "मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्" का पालन करते हुए श्री शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि भारत भूपुत्रों की पंक्ति में अपना स्थान बना लिया। उनके द्वारा विरचित ग्रन्थ संख्या की विशालता को यदि उनके जीवन के वर्षों में फैलाया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होंने अपने जीवन में प्रतिवर्ष माता भारती के चरण-युगलों में दो-दो ग्रन्थ सुमन समर्पित करते हुए समाराधना की थी।[3]

शिवराजविजय, उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का अद्भुत चमत्कार है। संस्कृत ही नहीं, हिन्दी के उपन्यासों में भी इसका विषय और शिल्प की दृष्टि से अग्रिम स्थान है। विषय की दृष्टि से तात्कालिक साहित्यकार या तो बद्धकरसम्पुट होकर विदेशी शासकों के अविद्यमान गुणों का यशोगान करने में लगे थे अथवा ऐयारी, तिलस्मी, जासूसी व ऐयारी विषयों के काल्पनिक उपन्यास लिख रहे थे। हिन्दी में इंशा-अल्ला खां की रानी केतकी की कहानी, राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का राजाभोज का सपना, देवकीनन्दन खत्री का चन्द्रकान्ता एवं गोपाल राम गहमरी के गुप्तचर, जासूस की भूल आदि इसी प्रकार के विषयों पर रचे गये उपन्यास थे। देश-प्रेम, धर्मनिष्ठा, स्वतन्त्रता की उत्कट इच्छा विदेशी शासन से घृणा का भाव व्यक्त करने का साहस ही सामान्य

---

2. (i) जातो जयपुरनगरे वाराणस्यां तथा कलितविद्यः।
सत्वरकवितासविता गौडः कोऽप्याम्बिकादत्तः॥
—सामवतम्, 1/32

(ii) द्रष्टव्य-सामवतम्, 1 पृ. 13

3. द्रष्टव्य-गुप्ताशुद्धि-प्रदर्शनम् के आरम्भ में पं० अम्बिकादत्त व्यास (संक्षिप्त परिचय)

साहित्यकार में न था। उपन्यास रचना में इस कार्य के अग्रगामी रहे हैं प० अम्बिकादत्त व्यास। राजस्थान के स्वतन्त्रता प्रेमी महाराणा प्रताप जैसे शूरवीरों के जीवन को छोड़कर महाराष्ट्रराज शिवाजी के जीवन-चरित्र का वर्णन कर प्रान्तभेद एवं उत्तर व दक्षिण के भेद को मिटाने तथा भारत की एकता व अखण्डता को प्रतिष्ठित करने में भी प० अम्बिकादत्त व्यास की अग्रगामिता रही है। विधा की दृष्टि से शिवराज-विजय को यद्यपि चिरन्तन समीक्षकों ने[4] गद्यकाव्य ही कहा है, किन्तु वर्तमान समालोचकों ने उपन्यास माना है और इस प्रकार संस्कृत में उपन्यास-लेखन के प्रारम्भकर्त्ता भी विद्यावाचस्पति प० व्यास ही हैं। ऐतिहासिक उपन्यास लेखन परम्परा के तो वे जनक कहे जा सकते हैं।

उपन्यास आदि नामों के प्रचलन से पूर्व गद्य की किसी भी रचना को इस देश में 'गद्यकाव्य' की ही संज्ञा दी जाती थी। भारतभूषण पं० अम्बिकादत्त व्यास ने भी शिवराजविजय को अपने ग्रन्थ के 'निर्माणहेतुः' में गद्यकाव्य ही कहा है।[5] उपन्यास शब्द अंग्रेजी के नॉवेल के अनुवाद के रूप में हिन्दी में गृहीत हुआ, जिसका आशय है विस्तृत कथावृत्त जो यथार्थ जीवन के अतिनिकट हो या जिसे लेखक जीवन के निकट बनाकर प्रस्तुत करे, चाहे इस हेतु उसे अपनी कल्पना का प्रचुर प्रयोग ही क्यों न

4. ......श्री शिवराजमहोदयं नायकीकृत्य तदीयविजयचरित्रगुम्फितं गद्यकाव्यं शिवराजविजयनामकमन्वर्थं रचयितुं निरचैषीत्।

—शिवराजविजय के आरम्भ में सत्सवनीयं किंचिद्-श्री दामोदर-लाल गोस्वामी, पृ. 2

5. महदिदमुपहासास्पदं विडम्बनं यद्-मण्डूक इव महापारावारपारमा-सादयितुं मनसानन्ताद्दृशं कविकौशलनिकषायितं गद्यकाव्यं मादृशः क्षोदीयान् जनो रिरचयिषुः संवृत्त इति। -निर्माणहेतुः (शिवराजविजयः), पृ. 2

करना पड़े।[6] वस्तुतः प्राचीन गद्य-काव्य की भी यही आधार-भित्ति रही है। गद्य की कथाएं वृत्तवर्णन मात्र नहीं थीं, उनमें काव्यत्व सरसता कल्पना, चमत्कार व रुचिरता आदि के आख्यान से ही उत्पन्न होता है। इसीलिए प्राचीन आभाणक "गद्य कवीना निकषं वदन्ति" द्वारा पद्य रचना में भी कठिन गद्यकाव्य की सर्जना को स्वीकार किया गया था।[7] शिवराजविजय की रचना के लिए पं० व्यास को एक ओर दण्डीकृत दशकुमारचरित, बाणभट्टरचित कादम्बरी, धनपालप्रणीत तिलकमजरी आदि का दाय मिला तो दूसरी ओर हिन्दी की नवीन रचनाएं रानी केतकी की कहानी, राजाभोज का सपना, चन्द्रकान्ता सन्तति आदि का प्रभाव भी प्राप्त हुआ। वस्तुतः शिवराजविजय प्राचीनता व नवीनता का अपूर्व समन्वय प्रस्तुत करने वाला संस्कृत का प्रथम उपन्यास है। घटनाओं की बहुलता एवं चरित्र की प्रमुखता से समन्वित रूप में घटना व चरित्र प्रधान विशिष्ट उपन्यास कहा जा सकता है।

शिवराजविजय की शास्त्रीय समीक्षा के मानदण्ड तीन प्रकार से निर्धारित किए जा सकते है–प्राचीन, नवीन और समन्वित। प्राचीन मानदण्डों के अनुसार कथावस्तु, नेता तथा रस आदि की दृष्टि से एवं नवीन समीक्षा के मानदण्डों, कथावस्तु, चरित्र, कथोपकथन, देशकाल, भाषा-शैली व उद्देश्य की दृष्टि से शिवराजविजय की शास्त्रीय विवेचना की जा सकती है। आजकल काव्य को भावपक्ष व कलापक्ष की दृष्टि से भी समीक्षित करने की परम्परा है। समन्वित दृष्टि से उद्देश्य, देशकाल व वस्तु का समाहार कथावस्तु में चरित्र का समाहार पात्र-योजना में

6. द्रष्टव्य—हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृ. 122

7. श्लोके एवस्याभ्यंगत्य चमत्कार-विशेषाधायकत्वे सर्वोऽपि श्लोकः प्रशस्यते, न च गद्ये तथा सुतरं सौष्ठवम्। गद्ये तु सर्वांगीण-सौन्दर्यमुपलभ्येत चेत्। तदैव तत् प्रशंसाभाजनं भवेद् भव्यानाम्। – निर्माणहेतुः (शिवराजविजय), पृ. 1

एव शैली, भाषा, अलंकार, ध्वनि, रस, रीति आदि को शिल्पसौन्दर्य में समाविष्ट कर प्राचीन पद्धति में ही यत्किंचित् परिवर्तन के साथ संस्कृत ग्रन्थों की (उपन्यासों की) समालोचना की जा सकती है। आगे पं० अम्बिकादत्त व्यास के शिवराजविजय की शास्त्रीय समीक्षा इन्हीं आधारों पर की जा रही है।

कथावस्तु—साहित्यकार किसी सन्देश विशेष के सम्प्रेषण के लिए ही किसी कथावस्तु को अपना माध्यम बनाता है। यह सन्देश ही उसकी सर्जना का उद्देश्य है। अतः उद्देश्य रचना का प्राण है तो कथावस्तु उसका शरीर। देश-काल का वर्णन कथावस्तु को विश्वसनीय व आकर्षक पृष्ठभूमि में स्थापित करता है। शिवराजविजय की रचना के तीन उद्देश्य हैं—1. परतन्त्रता के प्रति घृणा एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रबल कामना से राष्ट्रीय एकता की भावना को उद्बुद्ध करना 2. सनातन धर्म (मानव धर्म) की रक्षा करना तथा 3. देश-प्रेम का जागरण। प्रारम्भ में योगिराज से ब्रह्मचारिगुरु द्वारा किए गए भारत-वर्णन में[8] तथा शिवाजी के इन शब्दों में उपन्यास का उद्देश्य व्यक्त हुआ है—

(i) शिवो भारतीयानां पारतन्त्र्यं नावलुलोकयिष्यति। राज्य-लोभस्तु तस्य नास्ति इति विजये राज्यमिदमप्यत्र भवतामेव भवेत् किन्तु यथा भारतद्रुहा यवनानां प्राबल्येन प्रत्यहं धर्मलोपो न स्यात् तथैव शिवस्याभिप्रायः।[9]

(ii) .... अस्ति चेदं भारतं वर्षम्, भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च योष्माकीणः सनातनधर्मः तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति।[10]

---

8. शिवराजविजय, 1/पृ. 119-20, 28-29

9. वही, 6/पृ. 240

10. वही, 2/पृ. 69-70

उपन्यास के अन्त में इसी उद्देश्य की फल के रूप में प्राप्ति शिवाजी के इन शब्दों में ध्वनित होती है—

> 'एवमस्माकं महामण्डले परस्परमैत्र्ये संजाते के नाम वराका मोद्गलाः ? ....पुनर्भारतानिजनप्रतापपताका दोधूयन्तां हिमसानुषु, अकूपारकूलेषु च। स्पृशन्तु च भारतीयभेरीनादः पारसीकानाम्, आरब्याणाम, कम्बोजीयानाम्, त्रिवृत्तानाम्,चीनानाम्, बर्मणाम् सिंहलानाञ्च कर्णम् ।'[11]

उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने स्वतन्त्रता प्रेमी महाराष्ट्रराज शिवाजी की शौर्यगाथा को आधार बनाया। वही गाथा निकटतम अतीत की ऐतिहासिक घटना थी। इस कथा द्वारा ही वस्तुतः पं. व्यास उत्तर और दक्षिण भारत को एकता के अटूट सूत्र में गूंथ सकते थे, अखण्ड व एक भारत की स्थापना कर सकते थे। कथा का विभाजन तीन विरामों में किया गया है तथा प्रत्येक विराम को चार-चार निःश्वासों में उपविभक्त कर कुल बारह निःश्वास रखे गये हैं। आधिकारिक कथा शिवाजी द्वारा अवरंगजीब को उसके सम्पूर्ण भारत को शासित करने के प्रयत्नों में विफल करने, विजयपुर, पुष्पनगर, रुद्रमण्डल, सूरत आदि को जीतकर दिल्ली में अवरंगजीब के नियन्त्रण से मुक्त होने तथा मथुरा पर्यन्त राज्य विस्तार करने से सम्बद्ध है। यह प्रख्यात कोटि की कथावस्तु है, किन्तु उपन्यास में कौतूहल एवं रोचकता के समावेश के लिए लेखक ने गौरसिंह-श्यामसिंह व सौवर्णी की तथा वीरेन्द्रसिंह व रामसिंह की प्रासंगिक सानुबन्ध कथाएं भी जोड़ दी हैं, जो उत्पाद्य अर्थात् कल्पित हैं। इन कथाओं ने राजस्थान और महाराष्ट्र में एकता व निकटता उत्पन्न की है। जोधपुर नरेश यशस्वी सिंह और जयपुराधीश जयसिंह के साथ शिवराज के सम्मिलन एवं वार्तालाप की घटनाएं आदि ऐसी प्रकरी कथाएं हैं, जो उक्त उद्देश्य को ही परिपुष्ट करती हैं। विशेषता यह है कि उपन्यास में राजस्थानी वीरों

---

11. शिवराजविजय 12/पृ. 593

की कथाएं ही मूलकथा को गति देने वाली एवं उसे सिद्धि प्रकर्ष तक पहुंचाने वाली हैं। राजस्थानजन्मा लेखक का इन कथाओं के गुम्फन से राजस्थान के प्रति विशेष प्रेम भी प्रकट हुआ है। जयपुर के पश्चिम में चित्तौड़ के भूस्वामी खड्गसिंह की सुपुत्री सौवर्णी का जयपुर के पूर्व में जितवार के भूस्वामी वीरेन्द्रसिंह के पुत्र रामसिंह (रघुवीरसिंह) के साथ प्रणय एवं परिणय दिखाकर राजस्थान के राजपुत्रों में भी ऐक्य-भावना का सञ्चार करने की चेष्टा की गई है। समस्त कथावस्तु की योजना सुबद्ध है। प्रथम निःश्वास का आरम्भ सूर्योदय के वर्णन से हुआ है और द्वादश निःश्वास का अन्त शिवाजी की स्वप्न समाप्ति एवं नवीन अरुणोदय से ही हुआ है। आरम्भिक सूर्योदय भारतीयों में देश प्रेम की भावना के अविर्भाव का सूचक है तो अन्तिम सूर्योदय पराधीनता की निवृत्ति एवं ऐक्य, संगठन और स्वतन्त्रता से युक्त भारतीय नवजीवन के प्रारंभ का सकेत करता है। इसी प्रकार योगिराज की समाधि से उठने की कथा भी प्रतीकात्मक है। विक्रमार्क के सुखमय समय में लगाई गई समाधि अवरंगजेब के दुःखमय शासन में टूटी और पुनः वह कथान्त में समाधि से उठे। कालकी इस गति व परिवर्तन का आशय यह है कि यदि सुख का समय क्षणिक है तो दुःख और पराधीनता का भी अवसान निश्चित है। अपेक्षा है—धैर्य, उत्साह, संघर्ष और उत्सर्ग की। इसी प्रकार उपन्यास में वृत्त के साथ अग्रसर ऋतुचक्र भी गूढार्थ की अभिव्यंजना करने वाला है। प्रथम तीन निःश्वासों में ग्रीष्म ऋतु मुगलों के अत्याचारों से प्रतप्त, संतप्त भारत भूमि एवं भारतवासियों की दुःरवस्था को व्यक्त करता है। पुनः चार निःश्वासों तक वर्षा ऋतु स्वतन्त्रतार्थियों के अनुकूल प्रयत्नों और सफलता के बीजांकुरण की सूचक है। अष्टम व नवम निःश्वासों में शरद्ऋतु रसनारी का शिवाजी के प्रति पूर्ण आकर्षण, मायाजिह्म एवं पद्मिनी का प्रसंग, रघुवीर व सौवर्णी के अनुराग की वृद्धि एवं शिवाजी व राजा जयसिंह के वार्तालाप से उत्पन्न शान्ति व स्थिरता के वातावरण की उचित पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। दशम निःश्वास में राजा जयसिंह के साथ की गई सन्धि के अनुसार शिवाजी का अवरंगजेब

मे मिलने जाना शिशिर व हेमन्त ऋतुओं मे वर्णित किया गया है। अन्त मे महाराष्ट्र-राज शिवाजी का अवरगजीव के नियन्त्रण से मुक्त होने के लिए वसन्त ऋतु की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है।

इसके अतिरिक्त प्रसंगानुरूप वातावरण की सृष्टि करने मे भी प. अम्बिकादत्त व्यास का प्रतिभा-वैभव परिलक्षित होता है। अफजल खान का शिविर प्रदेश हो[12] या शास्तिखान का पुण्यनगरवर्ती दुर्ग[13] उनमे मुगलोचित रहन-सहन का सजीव वर्णन है। मन्दिर[14], उद्यान[15], महाराष्ट्रराज की सभा[16] आदि के वर्णन मे भारतीय संस्कृति एव मूल्यो को प्रदर्शित किया गया है। उपकथापात्रो के जीवन को रहस्यमय बनाकर परिज्ञात ऐतिहासिक मूलकथा मे भी सर्वत्र कौतूहल व रोचकता की सृष्टि की गई है। अन्तिम नि श्वास मे कथा-उपकथाओ के सभी बिखरे हुए सूत्रो को एकार्थता की ओर ले जाया गया है। कथावस्तु की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि कोमलमना देशभक्त प. व्यास ने कथा-नायक शिवराज के पक्ष के किसी व्यक्ति की शत्रु द्वारा हत्या नही दिखाई है। सम्भवतः इसीलिए शिवाजी के जीवन से सम्बद्ध विशिष्ट कथा – सिंहगढ की विजय एव मित्र तानाजी की मृत्यु से पूर्व ही उपन्यास को पूर्ण कर दिया गया है। पिशुन व अमदाचारी होने के कारण अन्वर्थनामा क्रूरसिंह का वध स्वपक्ष के ही स्वामिवेषधारी रघुवीरसिंह से अवश्य कराया गया है।

कथा के कुछ विषय अवश्य आधुनिक पाठक को मनोनकूल नही लगते, किन्तु आज से 100 वर्ष पूर्व के भारत के समाज, भारतीयो की मन:स्थिति एवं विश्वास तथा साहित्य रचना के रूप को ध्यान मे रखने पर इनका अनौचित्य भासित नहीं होता। यथा–ग्यारह वर्ष की बालिका

12. शिवराजविजय, 2/पृ. 78-82
13. वही, 7/पृ. 292-295
14. वही, 3/पृ. 142-145
15. वही, 4/पृ. 162-163
16. वही, 2/पृ. 63-68, 9/पृ. 408-410

सौवर्णी में रघुवीर सिंह में प्रणय का अंकुर[17], हनुमन्मन्दिर के पूजक द्वारा रेखाओं में कोष्ठों की रचनाकर उनमें गौरसिंह से सुपारी रखवाकर भविष्य बताना[18], देवशर्मा द्वारा रघुवीरसिंह को प्रसाद खिलाकर सोने पर दिखाई देने वाले स्वप्न में फल कहना[19], यहां तक कि शिवाजी द्वारा भी देवशर्मा के फलादेश में ही राजा जयसिंह से युद्ध न करना[20], अग्निकाण्ड से भयभीत होकर उसका फल पूछना एवं शान्ति के उपाय करना[21], दिल्ली जाते हुए मार्ग में स्वामिनिषधारी रघुवीरसिंह (राघवाचार्य) से भविष्यवाणियां कराना[22], आदि। ये स्वप्न, फलादेश, तन्त्र-मन्त्र उपन्यास में अन्धविश्वास व भाग्यवादिता का वातावरण उत्पन्न करते हैं। रमनारी के अवरंगजीव से मिलने के लिए गोलखण्ड जाते समय न केवल जलकुण्ड में गरल मिलाना समीपवर्ती पादपों के पल्लव-पल्लव, पुष्प-पुष्प में मूर्च्छाकारी औषध छिड़कना[23] आदि प्रयोग कुछ अटपटे लगते हैं, जो तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का प्रभाव हो सकते हैं। अन्तिम निःश्वास में स्वप्नवर्णन से कथा को द्रुतगति से परिणाम तक पहुंचाना भी कथा में स्वाभाविकता को नष्टकर नाटकीयता एवं स्वप्नलोक की सृष्टि करता है।[24]

पात्र-योजना—शिवराजविजय में पात्र संख्या सीमित ही है। जितने ऐतिहासिक पात्र हैं, लगभग उतने ही कल्पित पात्र भी। प्रमुख ऐतिहासिक पात्र हैं—शिवराज, माल्यश्रीक, मुरेश्वर, यशस्विसिंह, राजा जयसिंह, भविभूषण, अवरंगजीव, अफजलखान, शास्तिखान, मायाजिह्म एवं रमनारी। कल्पित पात्र हैं—देवशर्मा, गौरसिंह, श्यामसिंह, सौवर्णी, चारुहासिनी, विलासिनी, ब्रह्मचारिगुरु, गणेशशास्त्री, रघुवीर

17. शिवराजविजय, 4 पृ. 164, 4/पृ. 172
18. वही, 3/पृ. 137
19. वही, 4, पृ. 172
20. वही, 9/पृ. 375
21. वही, 9, पृ. 374
22. वही, 11/पृ. 475-479
23. वही, 7/पृ. 281
24. वही, 12/पृ. 586-596

सिंह, कूर्मसिंह, चान्दखान आदि। उपन्यास के प्रधान-पात्र शिवाजी सत्त्वशाली, गम्भीर, क्षमाशील, तेजस्वी, विदग्ध, धर्मनिष्ठ, सदाचारी, स्वाभिमानी, स्पष्टवक्ता, देशप्रेमी व उदार होने से धीरोदात्त हैं, तो अवरंगजीव क्रूर, अभिमानी, पापकर्मा और लुब्धवृत्ति प्रतिनायक है। गौरसिंह, रघुवीरसिंह पताका नायक होने से शिवाजी के अनुचर तथा तद्वत् गुणशाली हैं। रसनारी का शिवाजी के प्रति प्रणयानुरोध दिखाकर एवं शिवाजी में निगूढ़ प्रेम प्रदर्शित कर शिवाजी के चरित्र को अवदात, पवित्र और प्रभावशाली बनाया गया है। शिवाजी का चरित्र महापुरुष (Superman) के रूप में, यद्यपि प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उनकी निरक्षरता, क्षिप्रकारिता तथा दैववादिता की कमियों को छिपाया नहीं गया है। अवरंगजीव, अपजलखान, शास्तिखान, रहीमतखान, देवशर्मा, गणेश शास्त्री आदि वर्ग प्रकार (Type Characters) के एवं स्थिर प्रकृति (State Characters) के पात्र हैं, तो माल्यश्रीक, मुरेश्वर, गौरसिंह, रघुवीरसिंह, जयसिंह, भूषण, सौवर्णी और रसनारी गतिशील पात्र (Dynamic Characters) हैं। इनका चरित्र क्रमशः विकसित होता हुआ पाठक के हृदय को आवर्जित आन्दोलित करता चलता है। उनके कल्पित पात्र वीरता व प्रेम के द्विविध भावों से मनोहर हैं। पात्रों के चरित्र को पं० अम्बिकादत्त व्यास ने प्रायः उनके कार्यों द्वारा ही प्रकट किया है, किन्तु सौवर्णी,[25] रघुवीरसिंह,[26] शिवाजी[27] और गौरसिंह[28] का चरित्र किसी अन्य पात्र कथन के रूप में सीधे भी प्रस्तुत कर दिया है।

राजस्थान के नरेशों में उदयपुराधीश्वर राजसिंह का चरित्र सर्वोत्कृष्ट है। राजा जयसिंह के दिल्लीवलयकलंक का लालाटिक[29] होने से गूढ़ जुगुप्सा की भावना व्यक्त की गई है, किन्तु जयपुर के प्रति विशेष

25. शिवराजविजय, 12/पृ. 577
26. वही, 9/पृ. 410, 576
27. वही, 10/पृ. 460-61
28. वही, 12/पृ. 576
29. वही, 5/पृ. 184

पक्षपात व प्रेम के कारण इसे उनकी वृद्धता व विवशता की आड़ में छिपा लिया गया है[30] तथा अन्त में अपूर्णप्रतिज्ञ रहने से मृत्यु दिखाकर उनके चरित्र की रक्षा का प्रयत्न किया गया है।[31] उनकी वीरता, ज्ञान व गूढ़ देशप्रेम की सराहना भी की गई है।

कल्पित पात्रों के नाम प्रायः उनके शरीर, वर्ण या गुण के अनुसार रखे गये हैं। गौरवर्ण होने से गौरसिंह, श्यामवर्ण होने से श्यामसिंह तथा सुवर्णवत् होने से सौवर्णी नाम दिये गये हैं। क्रूरस्वभाव का होने से क्रूरसिंह, हासपरिहासशील एवं सुन्दर स्मितियुक्त होने से चारुहासिनी एवं विलासवती उसकी भाभी विलासिनी कही गई है। वीरेन्द्रसिंह के पुत्र रामसिंह ने अपनी युवावस्था में नाम परिवर्तन किया तो स्वयं को रघुवीर कहा और बाद में स्वामिवेष धारण किया तो राघवाचार्य कहा। राम, रघुवीर व राघव तीनों पर्याय शब्द हैं।

पं० अम्बिकादत्त व्यास की पात्र-योजना की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि उन्होंने प्रतिपक्ष में भी चान्द्रखान जैसे विवेकी, सत्य व स्पष्टवक्ता वीरपात्रों की रचना की है एवं नायक पक्ष में भी क्रूरसिंह जैसे कुटिल, पिशुन व दुर्वृत्त की। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि मुगलों के प्रति जातिगतविद्वेष की भावना से उन्होंने चरित्र अवतारणा की है। अन्यत्र भी रमनारी द्वारा यह पूछे जाने पर कि शिवाजी के राज्य में क्या यवन भी प्रसन्न रहते हैं, शिवाजी ने उत्तर दिया था—

> शिव :— सर्वासां प्रजानां समान एव मोदः, न भवति शासनकाले जातिनामाद्युट्टङ्कनमावश्यकम्।[32]

उपन्यास की पात्र-योजना में सबसे अधिक खटकने वाली कमी यह है कि शिवाजी के चरित्र के प्रेरक व निर्माता माता जीजाबाई एवं

---

30. शिवराजविजय, 9/पृ. 383
31. वही, 12/पृ. 596
32. वही, 8/पृ. 311

समर्थगुरु रामदास का उपन्यास में कोई स्थान नहीं है। जीजाबाई का तो नामतः उल्लेख किया भी गया है, किन्तु गुरु रामदास का तो कहीं नाम ग्रहण भी नहीं किया गया है।

शिल्प-सौन्दर्य

(i) शैली— शिवराजविजय अनेक शैलियों के प्रयोग की विलक्षण रचना है। उपन्यास में देश, काल व परिस्थितिविशेष को प्रस्तुत करने के लिए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। वस्तु या व्यक्ति के रूप-वर्णन के लिए भी यह शैली अपनाई गई है। वर्णनशैली के लिए विख्यात संस्कृत-गद्यकार बाणभट्ट एवं अभिनवबाण पं० अम्बिकादत्त व्यास की शैली में स्थूल अन्तर यह है कि कवि बाण का वर्णन जहां अनेक पक्षीय, अतिविशद एवं अधिकतर बाह्य होता है तो पं. व्यास का वर्णन पक्ष-विशेष को स्पष्ट करने वाला, नातिविशद तथा अन्तरवस्था का परिचायक होता है। व्यक्ति की मनःस्थिति को अनेक क्रियाओं के प्रयोग से व्यक्त करने में तो पं. अम्बिकादत्त व्यास अप्रतिम हैं। अपने प्रिय रघुवीरसिंह का ध्यान करती हुई सौवर्णी के समीप अकस्मात् रघुवीर के पहुंच जाने पर उसकी दशा का वर्णन देखिए—

"चकितचकितेव च झटिति समुत्थाय मुदिता, मोहिता, कम्पिता, भीता, ह्रीता, शंकिता नतमुखी फलकं गोपयन्ती समवतस्थे।"[33]

इस शैली के साथ संवादात्मक शैली का भी बहुलता से प्रयोग हुआ है। प्रत्येक निःश्वास में ऐसे अनेक वार्तालाप हैं, जिन्हें नाट्य के रूप में मञ्च पर अभिनीत किया जा सकता है, यथा—

33. शिवराजविजय, 7.पृ. 273

गौरसिंह व शिवाजी के मध्य वार्तालाप[34] तानरंग व अफजलखान का वार्तालाप[35], पं. गोपीनाथ एवं शिवाजी की वार्ता[36], दुर्गाध्यक्ष व रघुवीर का वार्तालाप[37], शाइस्तखान व बदरदीन आदि चाटुकारों की बातचीत[38], शाइस्तखान व महादेव पण्डित का वार्तालाप[39], महादेव पण्डित व संन्यासी का संवाद[40], सौवर्णी व सखियों की वार्ता[41], शिवाजी का रसनारी के साथ[42], रसनारी की सखी के साथ[43], मायाजिह्म के साथ[44], यशस्विसिंह के साथ[45], राजा जयसिंह के साथ[46], मुरेश्वर के साथ[47], रघुवीरसिंह, गौरसिंह आदि के साथ[48], स्वानिवेषधारी राघवाचार्य के साथ[49] संवाद आदि[50]। इन सभी संवादों ने कथावस्तु में स्वाभाविकता, गतिशीलता, रोचकता, सरसता की संवृद्धि की है। गौरसिंह[51], सौवर्णी[52], गणेश शास्त्री[53], कविवर भूषण[54] एवं वीरेन्द्रसिंह[55]

34. शिवराजविजय, 2/पृ. 67-72
35. वही, 2/पृ. 89-104
36. वही, 2/पृ. 105-111
37. वही, 4/पृ. 157-160
38. वही, 5/पृ. 188-196
39. वही, 5/पृ. 197-201
40. वही, 6/पृ. 223
41. वही, 7/पृ. 262-268, 10/पृ. 427-429
42. वही, 9/पृ. 393-397, 8/पृ. 308-312
43. वही, 10/पृ. 452-454, 11/पृ. 487-491
44. वही, 8/पृ. 348-351
45. वही, 6/पृ. 231
46. वही, 9/पृ. 380-392
47. वही, 11/पृ. 504-508
48. वही, 5/पृ. 553-559
49. वही, 11/पृ. 474-483, 10/पृ. 440-445
50. वही, 5/पृ. 180, 7/पृ. 278-80, 8/पृ. 314-322, 9/पृ. 412-417 8/पृ. 330-341, 10/पृ. 430-435.
51. वही, 3/पृ. 125-149
52. वही, 7/पृ. 270-272
53. वही, 6/पृ. 420-423
54. वही, 5/पृ. 181-183
55. वही, 8/पृ. 331-341

द्वारा अपने-अपने वृत्त को प्रस्तुत करने में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार महाराजा शिवाजी द्वारा देश-दशा के चिन्तन में[56], सौवर्णी के प्रति देवशर्मा व गौरसिंह की वत्सलता में[57], सौवर्णी के प्रति रघुवीरसिंह के अनुराग-भाव[58] तथा रत्ननारी के शिवराज के प्रति आकर्षण में[59] भावात्मक शैली का सुन्दर समुचित प्रयोग है। यथास्थान भावुकतावश नवगीतों व नव छन्दों की अवतारणा भी की गई है।[60]

(ii) भाषा— पं. अम्बिकादत्त व्यास का भाषा पर अनन्यसामान्य अधिकार है। शिवराजविजय में अनेकानेक ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो अन्यत्र अत्यल्प रूप में प्रयुक्त हुए थे और अभी तक कोष की ही शोभावृद्धि कर रहे थे। प्राचीन समीक्षकों ने माघ के प्रथम नौ सर्गों को शब्दों का अपूर्व भण्डार कहा था — "नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते" किन्तु शिवराजविजय ने तो मानों माघ की कमी को भी अपने वाग्वैभव से पूर्णता प्रदान कर दी है। शिवराजविजय की शब्द-सम्पदा का द्रष्टा तो निस्संदेह यह कह सकता है—"स्वधीते शिवराजविजये नव शब्दो न हि विद्यते मन्देह[61] (राक्षसविशेष), अपीच्यदर्शनम्[62] (शोभनदर्शन), कर्क[63] (श्वेताश्व), त्रोटय[64] (चोंच), आरनालय[65] (काजी), अमत्रम्[66] (पात्र), गण्डूपद[67] (केंचुआ), उल्लाघ[68] (नीरोग),

56. शिवराजविजय, 6/पृ. 207-217
11/पृ. 472-474
57. वही, 1/पृ. 16-17
58. वही, 7/पृ. 342-343
59. वही, 9/पृ. 361-362
60. वही, 2/पृ. 95-96,
5/पृ. 198-99
61. वही, 3/पृ. 144
62. वही, 5/पृ. 197
63. वही, 8/पृ. 352
64. वही, 10/पृ. 465
65. वही, 2 पृ. 81
66. वही, 12/पृ. 580
67. वही, 12/पृ. 569
68. वही, 11/पृ. 505

वदावदानाम्[69] (कहने वाले), कुम्भिनी[70] (पृथ्वी) आदि अनेक शब्द प्रमाण रूप से उद्धृत किये जा सकते हैं।

आवश्यकतानुरूप उन्होंने अन्य भाषाओं के शब्दों के ध्वनि सादृश्य का ध्यान रखते हुए नव शब्दों की रचना की है, जिससे अर्थप्रतीति तो शीघ्रता से हो ही जाती है, सहृदय पाठक शब्द रचना से विमुग्ध हुए बिना नहीं रहता, यथा— हथियाते हुए-हस्तितवना[71], छीन लिया-आमिच्छिद[72], तम्बाकू का धूआं-ताम्रकधूम[73], बीड़ा-वीटिका[74], चबाने की इच्छा वाले-चिचर्वयिषु[75], कारु का खजाना-कारुकोशम्[76], अकेली ही बैठकर-एकलैवोपविश्य[77], किमाम-ताम्रकसारलेहः[78], आतिशबाजी-कृशानुक्रीडा[79], बैठक-उपवेशभवनम्[80], दुधमुंही बच्ची-दुग्धमुखी[81] आदि। इस प्रकार अरबी-फारसी के शब्दों और नामों का संस्कृतीकरण भी अत्यन्त पटुता से किया गया है, यथा— मस्जिद-मज्जिनस्थानम्[82], मोहर्रम-मोहरमः[83], रमजान-रामयानम्[84], जजिया-जीवंजीवम्[85], चिनाकने या काटा-किरातरसः[86], और इसी प्रकार अवरंगजीव (औरंगजेब), मायाजिह्मः (मुअज्जम), रसनारी (रोशनारा), अपजलखानः (अफजलखां), शान्तिखानः (शाइस्ताखां),

---

69. शिवराजविजय, 9/पृ. 370
70. वही, 9/पृ. 367
71. वही, 5/पृ. 171
72. वही, 5/पृ. 178
73. वही, 5/पृ. 180
74. वही, 5/पृ. 187
75. वही, 5/पृ. 192
76. वही, 11/पृ 505
77. वही, 7/पृ. 273
78. वही, 8/पृ. 320
79. शिवराजविजय, 7/पृ. 292
80. वही, 7/पृ. 278
81. वही, 7/पृ. 264
82. वही, 5/पृ. 189
83. वही, 6/पृ. 208
84. वही, 6/पृ. 208
85. वही, 6/पृ. 245
86. वही, 5/पृ. 193, 10/पृ. 467

रूस्टतमः (रुस्तम), चान्द्रखानः (चांदखां), गोलखण्डः (गोलकुण्डा), विजयपुरम् (बीजापुर) आदि। ऐसे शब्दों का प्रकरण, अन्यसन्निधि आदि उपायों से अर्थ स्फुट हो जाने से उनमें क्लिष्टता प्रतीत नहीं होती। शुद्ध भाषा के पक्षधर होने के कारण पं० व्यास ने बोलचाल में प्रचलित किन्तु व्याकरण असम्मत शब्दों को शुद्ध करके ही प्रयुक्त किया है, यथा जसवन्तसिंह-यशस्विसिंहः, मोरेश्वर-मयूरेश्वरः, तानाजी-स्तन्यजीवः, एवं शिवाजी को उन्होंने सदैव शिववीरः या शिवराज. ही कहा है। व्याकरण के निष्णात विद्वान् होने से सन्नन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त पदों का तथा लुट्, लृङ्, लिट् लकारों एवं भावकर्म प्रक्रिया का सरलता से प्रयोग किया है और इससे क्लिष्टता उत्पन्न नहीं हुई है, प्रत्युत भाषा में सजीवता तथा अर्थचारुता आई है। अनेक भावों की सहज अभिव्यक्ति के लिये पदों में वीप्सा का भी प्रयोग किया गया है। जैसे—आश्चर्य में "वीरो वीरो वीरः"[87], उत्साह व प्रसन्नता में (यवन द्वारा) "हता हता हतेति हिन्दुहतकाः[88], त्वरा में "हरिद्रा हरिद्रा, लशुनम् लशुनम्"[89], चाटुकयन में "आम् आम् आम्"[90], भय या त्रास में "सन्धि-सन्धि."[91], प्रशंसा में "गहन-गहनैः कोमलकोमलैः मधुरमधुरैः वाचाविलासैः"[92], बहुलता प्रदर्शन में "गृहे गृहे चत्वरे चत्वरे, सरणौ सरणौ, विपणौ विपणौ, कर्णे कर्णे"[93] आदि। णमुल् के प्रयोगों एवं प्रनिपूर्वक अव्ययीभाव समासों के प्रयोगों द्वारा भाषा में सहज एवं मनोरम अभिव्यक्ति अनेकत्र देखी जा सकती है।

अनेक ध्वनिसूचक शब्दों का प्रयोग भी शिवराजविजय में पर्याप्त रूप से किया गया है, यथा फरफरायमाणः,[94] सहड्हड़ा शब्दम्,[95]

---

87. शिवराजविजय, 5/पृ. 185
88. वही, 5/पृ. 189
89. वही, 2/पृ. 79
90. वही, 5/पृ. 193
91. वही, 5/पृ. 199
92. शिवराजविजय, 6, पृ. 237
93. वही, 11/पृ. 499
94. वही, 3/पृ. 144
95. वही, 4/पृ. 152

सकडकडाशब्दम्,[96] सतडतडाशब्दम्,[97] सगुडगुडाशब्दम्,[98] सखड्खड़ाशब्दम्,[99] सखिलाखिलाशब्दम्,[100] धमद्धमद्ध्वनिः,[101] धलद्धलद्ध्वनि,[102] झणज्झणद्ध्वनिः,[103] खटखटप्रधान,[104] पटपटाभिः[105] टं टं टम् इति,[106] सनणत्कारम्,[107] सघडत्कृतिना[108] आदि आदि। हिन्दी व उर्दू की कहावतों और मुहावरों का संस्कृतरूपान्तर भी उनकी भाषा को सहज, आकर्षक, सजीव व प्रभावशाली बनाता है। कुछ उदाहरण देखिए–

1. घृतेन स्नातु भवद्रसना[109]— आपके मुंह में घी-शक्कर।
2. एकैकमप्येकादश भवन्तीति[110]— एक-एक ग्यारह होते हैं।
3. सत्य दुग्धदग्धोजनस्तक्रमपि व्यजनैर्वीजयित्वा पिबति[111]— सच है दूध का जला छाछ को भी पंखा झल-झलकर पीता है।
4. स्फोटितौ मे कर्णौ[112]—मेरे कान ही फाड़ डाले।
5. त्वन्तु नैजान् स्वप्नान् पश्यसि[113]—तुम तो अपने सपने देखते रहते हो।

---

96. शिवराजविजय, 4/पृ. 154
97. वही, 4/पृ. 154
98. वही, 5/पृ. 187
99. वही, 5/पृ. 190, 5/पृ. 195
100. वही, 11/पृ.506
101. वही, 7/पृ. 294
102. वही, 7/पृ. 285
103. वही, 6 पृ. 204
104. वही, 7/पृ. 294
105. शिवराजविजय,11, पृ.503
106. वही, 7/पृ. 291
107. वही, 6/पृ. 219
108. वही, 7/पृ. 269
109. वही, 2/पृ. 78
110. वही, 12/पृ. 568
111. वही, 12/पृ. 568
112. वही, 5/पृ. 182
113. वही, 5/पृ. 200

6. त्वन्तु प्रपितामहोऽपि ते न शक्त प्रतिरोद्धुम्[114]—तेरा पुरखा भी नहीं रोक सकता।

7. अत्रुटितकेशाग्रो यातः[115]—बिना बाल बांका हुए चला गया।

8. वीरम्मन्या श्मश्रु परिमृशन्ति[116]—स्वयं को वीर मानने वाले मूंछों पर ताव देते हैं।

9. एष मम नासामिव छित्वा, कूर्च्चमिव समूलमुल्लूय श्मश्रु युगलमिवोत्पाट्य पादत्राणेनेवाऽऽहत्य, निष्ठीवनेनाभिषिच्य धूलिभिरिव चान्धीकृत्य कारागारान्निष्क्रान्तः[117]—यह (शिवाजी) मेरी नाक काटकर, दाढ़ी नोचकर, मूंछें उखाड़कर, जूता मारकर, थूक कर, आंखों में धूल झोंककर कैद से भाग गया।

10. "सजृम्भांऽगुलिस्फोटनं[118]–जमुहाई लेने और अंगुलि चटकाने के साथ भाषा में कहीं कहीं अंग्रेजी प्रयोगों की छाया भी दिखाई देती है, यथा—

(i) यद्यपि आयस्तमस्मन्मण्डलम्[119]

(ii) द्वावपि शाद्वलमेनद् रिक्तमकुरुताम्[120]

प्रथम वाक्य में आयस्तम् का प्रयोग Exhausted (थका हुआ) के लिए एवं द्वितीय वाक्य में रिक्तमकुरुताम्–Vacated के लिए प्रयुक्त है जो

---

114. शिवराजविजय, 11/पृ. 485
115. वही, 12/पृ. 588
116. वही, 10/पृ. 437
117. वही, 12/पृ. 587
118. शिवराजविजय, 9/पृ. 362
119. वही, 9/पृ. 406
120. वही, 7/पृ. 277

निश्चय ही संस्कृत व हिन्दी आदि की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा की प्रकृति के अनुकूल प० अम्बिकादत्त व्यास की भाषा की अन्यतम विशेषता यह है कि क्रियापदों द्वारा वह भावसौन्दर्य को बहुश व्यक्त करते हैं, यथा—

1. स्वप्ने चाह नीदकम्पम्, व्यलपन्, उदस्थाम्, करौ प्रासारयन्, अरोदिषञ्च।[121]

2 साऽस्माभिरतिसावधानतया सेव्यमानाऽपि प्रतिक्षणमनिमिषपात-निरुद्ध-निःश्वास वेक्ष्यमाणाऽपि रोमाञ्चति, स्विद्यति, सीत्करोति, ताम्यति, विलपति, वेपते, उद्वमति, रोदिति, ग्लायति, क्लिश्यति, गृह्णाति मूर्च्छति च।[122]

3 अथ फलकमिदमवतारयति, करे करोति वक्षसि धत्ते, निपुणमीक्षते, गाढ चुम्बति, चिरमालिंगति, शिरसा च वहति।[123]

उन्नीसवीं शताब्दी में संस्कृत के प्रभाव से हिन्दी गद्यलेखन की प्रवृत्ति भी पदरचना या वाक्यरचना में एक ही बात को दोहराए, तुकबन्दी करने, अनुप्रास का अत्यधिक प्रयोग करने आदि की थी। इसमें शब्दराशि आवर्त की भाँति घूमती हुई सी नृत्य करती हुई सी, लयसे युक्तसी प्रतीत होती है। संस्कृत भाषा की प्रकृति के अधिक अनुरूप होने से शिवराजविजय में इससे विशेष लालित्य उत्पन्न हुआ है। उदाहरणार्थ—

"दृष्ट्वैव भवन्तं हरिद्राद्रवस्नापितकपोल इव, निःशोणितवदनः, विस्मृततुरंगः, पारिप्लवकुरंग इव कुरंगः, पर्यन्वेषितसुरंगः, सवेपथु दुरंगः संवर्त्स्यति समासादितभयानक-नवरंगोऽवरंगः।"[124]

---

121. शिवराजविजय, 7/पृ. 275
122. वही, 9/पृ. 361
123. शिवराजविजय, 9/पृ. 363
124. वही, 10 पृ. 439

सानुप्रास विराम का एक उदाहरण देखिए—

> .... "तमेव जीवनाऽऽधारम्, ध्यानविहितसाक्षात्कारम्, विलुलिताश्रुधारम् संसारसारम्, प्रापितपरमपीडापारावारम्, अभिहितवचनपीयूषसारं रघुवीरसिंहमपश्यत्।"[125]

इन सब विशेषताओं के होते हुए भी प० अम्बिकादत्त व्यास द्वारा किए गए कुछ व्याकरणसम्मत शब्द प्रयोग रूढि से अन्य अर्थ में प्रचलित होने के कारण सरस हृदय पाठकों को शोभनीय नहीं लगते। उनका प्रयोग करने में पं० व्यास की सूक्ष्मेक्षिका से कैसे चूक हो गई, यह आश्चर्य है। उदाहरण के लिए दो वाक्य उद्धृत हैं—

१. अपि जानास्यवस्थां सुरतयुद्धस्य ?[126]
२. आशीःसहवाससुखमनुभवामि।[127]

इसी प्रकार गुब्बारे के लिए 'अग्निपुष्प'[128] शब्द का तथा मशालों के लिए "स्थूलवर्तिकामहाद्युलयो दीपा."[129] का प्रयोग कृत्रिम व अरुचिकर लगता है।

कुछ शब्दों का पुनः पुन. प्रयोग भी खटकता है। वे शब्द है— क्रियासमभिहारेण, विनकलय्य आदि।

(iii) **अलंकार सौन्दर्य**—शिवराजविजय में शब्दालंकार अनुप्रास का प्रयोग तो सर्वत्र साग्रह किया गया है। तात्कालिक कविता में वर्णविन्यास वक्रता तथा शब्दमैत्री के नाम से प्रसिद्ध यह अत्यन्त कविप्रिय अलंकार था। भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाले पं० अम्बिकादत्त व्यास इस प्रयोग में पूर्णतः सफल भी हुए हैं।

---

125. शिवराजविजय, 12/पृ. 533
126. वही, 3/पृ. 323
127. वही, 7/पृ. 270
128. शिवराजविजय, 7/पृ. 290
129. वही, 7/पृ. 291

कठोर से कठोर और मधुर से मधुर भाव की अभिव्यक्ति वह अनुप्रासमयी शब्द रचना से कर सके हैं। तीन उदाहरण देखिए—

(i) **सामान्य वर्णन में**—"यत्र प्रान्तप्ररूढ़ां पद्मावली परिमर्दयन्ती पद्मेव द्रवीभूता पय-पूरप्रवाहपरम्पराभिः पद्मा प्रवहति।"[130]

(ii) **कठोर भाव की अभिव्यक्ति में**—"अस्ति कश्चन घंर्घघारि-धुरन्धरैः घर्मोद्धारधौरेयैः, सोत्साहसाहसचचच्चन्द्रहासैः सुशक्तिमुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्नपरिपन्थिगलगलच्छोणितच्छुरि-तच्छन्नच्छुरिकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः, स्वप्रतिकूलकुलो-न्मूलनानुकूलव्यापारव्यासक्तशूलैः, घनविघ्नविघट्टकघर्घरा-घोषघोरशतघ्नीकैः,प्रत्यर्थितुण्डिशुण्डाखण्डनोद्दण्ड-भुशुंडीकैः, प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्यभाण्डप्रकाण्डकाण्डैः क्षत्रियवर्यैरार्यैर्यश्च व्याप्तो राजपुत्रदेशः।"[131]

(iii) **कोमलभावाभिव्यक्ति में**—"मधुविधुरयत्, मरन्दं मन्दयत्, कलकाकलीकलनपूजितं कोकिलकुलकूजितम्।[132]

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दीपक, स्वभावोक्ति[133] विरोधाभास[134] व अप्रस्तुतप्रशंसा[135] का प्रमुखतया प्रयोग हुआ है। उपमा और उत्प्रेक्षा की माला प्रस्तुत करने में पं० व्यास सिद्धहस्त हैं। कविवर भूषण द्वारा जिन नृपम्मन्यों की सेवा नहीं करते उनके लिए एक साथ दस उपमाएं दिलवायी गई हैं।[136]

---

130. शिवराजविजय, 2/पृ. 91
131. वही, 3/पृ. 125-26
132. वही, 3/पृ. 134
133. वही, 3/पृ. 143, 5/प. 179
134. शिवराजविजय,2/पृ. 64-65
135. वही, 5/पृ. 199
136. वही, 5/पृ. 183

इसी प्रकार शिवाजी की उत्साह पूर्ण बात सुनकर यशस्विसिंह की दशा का वर्णन नौ उत्प्रेक्षाओं से किया गया है।[137]

कल्पना कुशल श्री व्यास द्वारा कुछ सर्वथा नवीन उपमाओं का भी प्रयोग किया गया है यथा—(i) सौवर्णी का हाथ पर रखा हुआ मुख कमल की पखुड़ियों में सोते हुए कलानाथ को भी तिरस्कृत करने वाला हो।[138] (ii) वर्षा ऋतु में बहती हुई नदियां अजगर सी लगती है।[139] (iii) सूर्य का घेरा अस्ताचल के सिर पर लालपगड़ी सा लगता है।[140] (iv) अन्धकार में सोता हुआ यवन-प्रहरी मूर्छित भालू-सा या घड़ी किए हुए काले कम्बल-सा प्रतीत हो रहा था।[141]

(iv) वृत्ति, ध्वनि व रस – शिवराजविजय में लक्षणा एवं व्यंजना वृत्तियों से अभिव्यक्ति–चारुता सहृदय को मुग्ध कर देती है। "सदुर्गमेनं धूलीकरिष्याम."[142] परितः प्रसर्पिभिः करुणोद्गार-प्रवाहैरेव पर्यपूर्यत सा कुटी"[143] ततो दुग्धधाराभिरिव प्रथमं प्राचीं

137. शिवराजविजय, 6/पृ. 243-44

138. निरन्तर-परिक्रमणक्लमक्लान्तं मुखं कमलपल्लवोदरे सुप्तं कला-नाथमिव कदर्थयन्ती" वही, 7/पृ. 268

139. नवजलदजलपूरपूरिता. सहस्रशो नद्योऽजगरा इव सर्प्पिप्यन्ति वही, 11/पृ. 497

140. अस्मिन् समये पश्चिमाशाकुण्डलमिव मार्तण्डमण्डलमस्ताचलचूडा-शोणोष्णीषतां भेजे। —वही, 7/पृ. 285

141. "......मूर्च्छितं भल्लूकमिव...... आकुञ्च्य स्थापितं कृष्णकम्बल-मिव च किमपि श्यामश्याममद्राक्षीत्। —वही, 6/पृ. 220

142. शिवराजविजय 2/पृ. 103

143. वही, 3/पृ. 123

संक्षाल्य"[144] "कुटीरेष्वेव निद्रा द्राघणीया"[145] तित्र: चुम्बित-यौवना सुन्दर्यः दोला समारूढाः"[146] आदि लाक्षणिक प्रयोग शिवराजविजय में पदे पदे प्राप्त होते हैं। कहीं अचेतन पर चेतन का, कहीं अमूर्त पर मूर्त का, भाव पर द्रव का, द्रव पर महन रा आरोपण करने से लक्षणाएं की गई हैं। एक साथ की गई अनेक लक्षणाओं का सौन्दर्य देखिए—

"जातोऽयमरुणोदयः, कलविकंरारब्धः कलरवः तनूभूतं तम., धीरः समीरः इरंमदो मदयति मयूरान्, मतंगमोहनं गन्धमुद्गिरति नव-वारिदवारिसरसिता रसा, बलाहका मन्दं गर्जन्ति।"[147]

इसी प्रकार ध्वनि सौन्दर्य ने भी इस काव्य को मनोमोहक बनाया है। सभी प्रकार की ध्वनियां यहां देखी जा सकती हैं। गौरसिंह द्वारा यवन युवक के मृत शरीर से प्राप्त पत्र के विषय में शिवाजी से कहने पर उनका यह वाक्य—"दर्श्यताम्, प्रसार्यताम्, पठ्यताम्, वच्यताम्, किमिदमिति"[148] उनके हर्ष, औत्सुक्य, आवेग आदि अनेक भावों को ध्वनित कर देता है। इसी प्रकार सौवर्णी और रघुवीर के प्रथम मिलन के बाद लेखक का यह वाक्य अनेकानेक भावसंवलित उनकी अनुरागमय विचित्र मनोदशा को तत्काल स्पष्ट कर देता है—"को जानाति कौशला-रघुवीरयोः काभिर्भावनाभिरत्यतनी रजनी व्यत्यैतीति।"[149] प्रथमबार शिवाजी को अपने भवन में आता हुआ देखकर रसनारी की भावशबलता को पं. व्यास ने इन शब्दों में, अभिव्यंजना की है—"किंचिद् भीतेव, स्तब्धेव, खिन्नेव, क्षुभितेव, उद्विग्नेव च सा समवित्त।"[150]

---

144. शिवराजविजय, 3/पृ. 131
145. वही, 3/पृ. 147
146. वही, 7/पृ. 255
147. वही, 12/पृ. 529
148. शिवराजविजय, 2/पृ. 71
149. वही, 4/पृ. 173
150. वही, 8/पृ. 307

कहीं-कहीं चुटीले व्यग्य भी अत्यन्त आनन्द प्रदान करते हैं, यथा-

1. परं महादेवस्तु न टिड्डाणत्र् पण्डित., किन्तु युद्धपण्डित: ।[151]
2. एक एवाऽऽसीदेपत्वत्पार्श्वे विचार्यकारी नीतिज्ञश्च, तदस्मिन् मदसिविलीढे को नाम कठिनो वारवधूकरशरावचुम्बनचञ्चुरस्य तव विजय: ?[152]

श्रेष्ठ ध्वनि ही असलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि अर्थात् रसादिध्वनि है। रस इसमें प्रमुख है। शिवराजविजय में चिरन्तन काव्यशास्त्रियों की दृष्टि से वीररस अंगी है एवं अन्य रस उसके अगभूत परन्तु नव्य चिन्तक रति के नाना रूपो में वैशिष्ट्य मानते हुए उनकी भी रसरूपता स्वीकार करते है। इस दृष्टि से इस उपन्यास में देशप्रेम रस की प्रधानता है तथा वीरादि अन्य रस उसके अंगभूत है। शिवराज एवं उनके सहयोगी फलार्थियों के उत्साह, प्रेम, क्रोध, शोक, विस्मय, जुगुप्सा आदि स्थायिभावों के केन्द्र में उनका देशानुराग ही है। उपन्यास में योगिराज व ब्रह्मचारिगुरु के वार्तालाप मे[153], महादेव पण्डितवेषधारी शिवाजी के आत्मचिन्तन में[154] शिवाजी व यशस्विसिंह के भाषण मे[155], शिवाजी व राजा जयसिंह की वार्ता में[156], उदयपुराधीश के पत्र[157] एवं शिवाजी के स्वप्न-दर्शन में[158] इसी देश प्रेमरस का आस्वादन होता है। रघुवीर सिंह के झझावात में भी तोरणदुर्ग तक जाने व संदेश पहुंचाने में[159], चान्द्रखान व अपजलखान के वध में[160], कविभूषण के प्रसंग मे[161], शास्तिखान पर शिवाजी द्वारा

151. शिवराजविजय, 6, पृ. 224
152. वही, 6/पृ. 225
153. वही, 1/पृ. 19-36
154. वही, 6/पृ. 207-217
155. वही, 6/पृ. 227-50
156. वही, 9/पृ. 380-92
157. शि.वि., 12/पृ. 561-566
158. वही, 12/पृ. 586-96
159. वही, 4/पृ. 151-160
160. वही, 6/पृ. 224-25, 2/पृ. 112-18
161. वही, 5/पृ. 181-86

किए गए आक्रमण में[162], विजय दुर्ग की विजय[163] एवं दिल्ली से लौटते समय मुगलों से युद्ध करने में[164] वीररस की निष्पत्ति होती है। रघुवीर सिंह के प्रति पिशुनता की शंका के प्रसंग में शिवाजी के क्रोध से रौद्ररस[165], मुसलमान प्रधान बाजार के वर्णन में वीभत्सरस[166], कविभूषण के अश्वपाल और शिवाजी के वार्तालाप[167], मायाजिह्व तथा पद्मिनी प्रसंग में[168] हास्यरस, देवशर्मा[169], गौरसिंह,[170] ब्रह्मचारिगुरु[171] एवं गणेशशास्त्री[172] के आत्मवृत्त कथन में कहीं-कहीं करुणरस की अनुभूति होती है। रघुवीर व सौवर्णी के मिलन[173] व पुनर्मिलन[174], सौवर्णी व उसकी सखियों के वार्तालाप में[175] शृंगाररस का आस्वादन होता है। रसनारी व शिवाजी के वार्तालाप में शृंगार-रसाभास की अनुभूति होती है।[176] देवशर्मा व सौवर्णी आदि ब्रह्मचारि-गुरु व रामसिंह के मिलन में पुत्र वात्सल्य तथा रसनारी व मायाजिह्व के मिलन में भगिनीभ्रातृ-वात्सल्य है।

---

162. शिवराजविजय, 7/पृ. 287-93
163. वही, 9/पृ. 402-407
164. वही, 11/पृ. 523-25
165. वही, 9/पृ. 413-41
166. वही, 6/पृ. 210
167. वही, 5/पृ. 180
168. वही, 8/पृ. 315
169. वही, 3/पृ. 120-23
170. वही, 3/पृ. 129-30
171. वही, 8/पृ. 331-36
172. वही, 10/पृ. 419-422
173. शि.वि., 4/पृ. 164-65
174. वही, 7/पृ. 275
175. वही, 7/पृ. 262-73, 10/पृ. 427-29
176. वही, 8/पृ. 309, 9, पृ. 360-371

विभिन्न प्रसगों व वर्णनो में शिवराजविजय के अन्तर्गत गौडी[177] व वैदर्भी रीतियों[178] का काव्य-सौन्दर्य व गुण सौन्दर्य भी दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार शिवराजविजय एक युगान्तरकारी आदर्श गद्य-रचना है एवं इसके प्रणेता राजस्थान-नन्दन पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्य-सेवियों के लिए अनुकरणीय एवं नित्य स्मरणीय व्यक्तित्व।

अध्यक्ष- संस्कृत-विभाग,
वनस्थली-विद्यापीठ (विश्वविद्यालय)
पो. वनस्थली-विद्यापीठ (राज०)

177. शिवराजविजय, 3/पृ. 120-21,
12/पृ. 539-542

178. वही, 9/पृ. 396-397

-※-

शिवराजविजये चरित्रचित्रणम्

● डा० पुष्करदत्त शर्मा

आवेदोपनिषदन्तानां कृतीनां गद्यं समालोच्य स्पष्टमेतद् यद् गद्यस्य विकासः शनैः शनैरजायत। प्रारम्भिके वैदिककालीने गद्यं सरलत्वमासीत्। उपनिषत्सु गद्यस्य रम्यत्वमपि दृष्टिपथमायाति। सामान्यतया गद्यमेतद् दैनिकव्यवहारोचितमिव परिदृश्यते। महाभारतीयं गद्यमप्यतिसरलमासीत्। पातञ्जलमहाभाष्ये तु अनलंकृतमपि गद्यं अनुपमां कामपि गद्यश्रियं प्राञ्जलतां च प्रकटीकरोति। परमेतद् सहजतरं गद्यं लौकिकसंस्कृतकाले शनैः शनैः असहजतां दुरूहतां च समवाप्य प्रसादगुणं सर्वथैवाऽत्यजत्। सुबन्धोः प्रतिपदं श्लेषमयत्वं, दण्डिनः पदलालित्यं, बाणभट्टस्य ओजोगुणमण्डित-समासबाहुल्यं च सम्प्रेषणीय-तात्मकेन तत्त्वेन सर्वथा विरहितमिव अजायत। तदनन्तरमपि सामान्यतया निखिलैरपि गद्यलेखकैर्बाणभट्टादीनामनुकरणमेवाक्रियत। एतेषां कृतिषु कल्पनाबाहुल्यमेव संदृश्यते।

परमाधुनिककाले एतादृशः कृतिकारा अजायन्त, यैः खलु न केवलं कल्पनाप्राचुर्यमपि तु यथार्थजगतः स्वरूपमपि बहुशः प्रकटीकृतम्। एषां कृतिषु व्यक्त्याश्रितं प्रकृतिवैभिन्न्यं, सच्चरित्रताया अभावः, सुख-दुःखे, बुभुक्षाजनितं दैन्यं, पाशविको व्यवहारः, कुशासनाश्रितो अत्याचारो-त्पीडनादिकं च सम्यक्तया प्रस्तुतीकृतम्। प्रामुख्येण एतादृशः कृतिकाराः सन्ति-महाननाः अम्बिकादत्तव्यासः, पण्डिता क्षमा, भट्टमथुरानाथ

महाभागाः, गणेशराम शर्मणः, श्रीनिवासाचार्यः, मेधाव्रताचार्य, श्री आनंदवर्धन रामचन्द्र रत्नपारखी च।

एतेष्वपि कृतिकारेषु अम्बिकादत्तव्यासस्य नाम अग्रणीयं विद्यते। व्यासमहोदयेनैव आधुनिका कथाशैली स्वकीयासु बहुविधरचनासु स्वीकृता। एतामेव शैलीमाश्रित्य सः "शिवराजविजयम्" इत्याख्यमुपन्यासस्य रचनामकरोत्। अस्मिन् उपन्यासे पारम्परिकं भाषासौष्ठव-मलंकाराणां छटा, वर्णनबाहुल्यं, प्रकृतिमौन्दर्यादिकस्य च निरूपणं तु विद्यत एव, किन्तु वैशिष्ट्यमपि किमपि सदृश्यतेऽस्मिन् उपन्यासे। अत्र हि भौतिकस्य सुखस्य, मानवीयाभिलाषाया, सफलासफलताया, लिप्सायाः, महत्त्वाकांक्षा-जिजीविषा-समूर्पादीनां च यथार्थचित्रण दृष्टिपथमायाति। चरित्रगत वैशिष्ट्यमपि साफल्येन समुद्घाटितम्। प्रस्तुते निबन्धे नायक-नायिकादीना चरित्रचित्रणमाश्रित्य किमपि वैशिष्ट्योद्घाटनमेवा-स्माभि करणीयम्।

एतत्तु उपन्यासस्य नाम्ना एव ज्ञायते यत् शिवराजः किंवा "छत्रपतिशिवाजी" अस्य उपन्यासस्य नायकोऽस्ति। नायकोपयुक्ता सर्वे एव गुणाः शिवराजे विद्यन्ते। खलु सः धीरोदात्तः, शौर्यसमन्वितः, नम्रो, दयावान्, मर्यादारक्षकश्च। सर्ववर्मस्य स्वतन्त्रतायाश्च स रक्षकोऽस्ति। तत्कालीनस्य दिल्लीश्वरस्य शासनं तु स नैवाङ्गीकरोति। तद् विरुद्ध संघर्ष विधाय सः विजय समाप्नोतीति तु प्रसिद्धमेव। नायकस्य साहाय्य विदधन्तः रघुवीरादयः सौकुमार्यस्य प्रतीकस्वरूपा सौवर्णी, शिवराजस्य प्रेयसी रत्नारी, गौरसिंहः, कूर्मसिंहः, महाराजा जसवन्तसिंहः, महाराजा जयसिंहः, अन्यानि च बहूनि पात्राणि अस्मिन् उपन्यासे सम्यक्तया चित्रितानि। परमस्मिन् निबन्धे प्रमुखाणा पात्राणामेव चरित्रचित्रणं अस्मत्कर्तेऽभिप्रेतम्।

सर्वप्रथमं तु नायकविषये किमपि कथनीयम्। एतत्तु पूर्वत एव विज्ञापितं यत् शिवराजोऽस्योपन्यासस्य नायकः। अस्य समग्रः कथानकः शिवराजं परिवृत्य एव प्रसृतः। नायकोचिताः सर्वे गुणाः शिवराजे प्रत्यक्षीभूता इव

दृश्यन्ते। शौर्य दूरदर्शिता च तस्मिन् निःसीममात्राया विद्यते। न खलु स अनैतिकमाचरणं विदधाति। रमनारी तदधिकृता आसीत् परं तदासक्तोऽपि स तया सह विवाहपूर्वं दैहिकसम्बन्धं नैव अभिलषति। यद्यपि तेन सा रमनारी रक्षणार्थं अङ्के उत्थापिता, पर एतेन दैहिकस्पर्शेण स लज्जां स्ववश्यमेवाऽन्वभवत्। वार्तालापे तु स अतीव चतुर आसीत्। एतेनैव कारणेन स महाराजं जसवन्तसिंहं जयसिंहं च तर्ककौशलमाश्रित्य पराभवीचकार। अवसरवादिताया न तस्य विश्वास आसीत्। स तु कार्यसिद्धिकृते मृत्युमपि स्वीकर्तुं सन्नद्ध आसीत्। दुस्तरास्त्वपि परिस्थितिष्वपि स धैर्यं न परितत्याज। दिल्लीश्वरस्य विरोध महतामपि नृपाणां कृते दुष्कर आसीत्। तेषां समक्षं शिववीरोऽतीव सामान्यभूपतिरासीत्। पर स दिल्लीश्वरस्य अवरंगजीवस्य आधिपत्यं न कदापि स्वीचकार। जयसिंहपराजयः भविष्यवक्ता श्रुत्वापि स जयसिंहानुरोधवशादेव सन्धिमङ्गीचकार। सद्य एव स तेजां त्रुटिं ज्ञातवान्। अत्रापि स स्वकीयानुचराणां सकटं दूरीकर्तुं स्वयमेव कष्टाननुबभूव। एतेनैव कारणेन तदीयाः सेवकाः तं प्रति पूर्णतः समर्पिता आसन्। समग्रो महाराष्ट्रप्रदेशः स्वकीयस्य नृपस्य कृते प्राणानपि उत्स्रष्टुं संनद्धोऽविद्यत।

यदैव स शिववीरः स्वकीयान् सेवकान् पश्यति स्म, तदैव सः सर्वप्रथमं समुचितसत्कारं विधाय कुशलमंगलमप्रच्छत्। एतेन कारणेन तद्भृत्या आतङ्कमुक्ता अजायन्त। उदाहरणतया गौरसिंहं दृष्ट्वा महाराजः शिववीरोऽकथयत्—

> "इत इतो गौरसिंह! उपविश, उपविश। चिराय दृष्टोऽसि, अपि कुशलं कलयसि? अपि कुशलिनः तव सहवासिनः? अस्यंगीकृतमहाव्रतं निर्वहत यूयम्! अपि कश्चन नूतनो वृत्तान्तः?"
>
> (शि० वि० पृ. 44)

शत्रूणां सन्देशवाहकान् प्रत्यपि तदीयो व्यवहारः शिष्टतापूर्णं भवति स्म। सः पूर्वमेव ज्ञातवान् यत् पण्डितो गोपीनाथो बीजापुर-

नृपतेर्गुप्तदुरभिसन्धिवशात् तत्समक्षमागत आसीत्, पर तत्कृते समुचित स्वागत विदधान् शिववीरेण आज्ञप्त यत्—

> "गम्यतां दुर्गान्तर एव महावीरमन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम्, भोज्यपर्यंकादि-सुखदसामग्रीजातेन च सत्क्रियताम्। ततोऽहमपि साक्षात्करिष्यामि।"
>
> (शि० वि०, पृ 48)

वस्तुत ईदृग्विधेन सद्व्यवहारेण शिववीर एतदेव अभिलषति स्म, यदागन्तुकस्य मनसि कोऽपि सदाशयश्चेदविद्यत, तदा स सद्व्यवहारेण द्रवितः सन् स्वपक्षस्यैव समर्थनं विधास्यति। विशेषतश्च विद्वांसोऽनुभवयुक्ता व्यक्तयश्च एतादृशोपायेनैव स्वपक्षे आनेया.। अतएव शिववीरो मनोवैज्ञानिकेन व्यवहारेण वाक्-चातुर्येण च दिग्गजान् विपश्चितो वशीकर्तु प्रायतत। तेन न केवल गोपीनाथविषये, अपितु, जसवंतसिंह जयसिंहं च वशीकर्तुमेतादृग्विधः प्रयोगः कृत। जसवन्तसिंहस्तु शिववीरस्य प्रयोगेण विजित, पर जयसिंह समधिकेनात्मत्वेन वैदुष्यसमन्वयेन च सवलितः सन् नाभिभूत, पर एष प्रयोगः सामान्यतया सफलतामेव वृणोतीति कथयितु पार्यते।

विपक्षस्थिता हिन्दुधर्मावलम्बिनस्तु तदीयेन तर्कजालेन सर्वथैव निरुत्तरा अजायन्त। यदा यदा स हिन्दुधर्मस्य रक्षाविषय प्रारभत, तदा तदा विपक्षस्थिता पण्डिता. स्वकीयान् अस्त्रशस्त्रान् पर्यत्यजन्। गोपीनाथ-पण्डितेन सह शिववीरस्य वार्तापा द्रष्टव्या--

> 'येऽस्माकमिष्टमूर्तीर्भङ्क्त्वा, मन्दिराणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि पत्तवणीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा, वेदपुस्तकानि विदार्य च प्रायर्वशोयान् बलाद् यवनीकुर्वन्ति, तेषामेव चरणयोरंजलिं बद्ध्वा लालाटिकतामंगीकुर्याम, एवं चेद् धिङ् मां कुलकलङ्कलीबम्, यः प्राणभयेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासेरकतां वहेत्। यदि चाहमहमाहवे म्रियेय वध्येय ताड्येय वा तदेव धन्योऽहम्, धन्यौ च मम पितरौ। कथ्यतां भवादृशां विदुषामत्र का सम्मतिः ?

गोपीनाथः :— (विचार्य) राजन्! धर्मस्य तत्त्वं जानासि, तस्माहं स्वसम्मतिं कमपि निदर्शयिष्यामि। महती ते प्रतिज्ञा, महत् तवोद्देश्यमिति, प्रसीदामितमाम् नारायणस्तव साहाय्यं विदधातु।"

(शि॰ वि॰, पृ 68-69)

शिववीरस्य देहोऽननिलस्य अप्रांशुर्वा आसीत्, किन्तु स अति-विशालानपि विरोधिनः पराजेतुं समधिकं चातुर्यं प्रादर्शयत्। तदर्थं स युक्तिकौशलवैशिष्ट्येन आशिश्रियत्। अफजलखानसदृशेन दैत्याकारेण शत्रुणा सह प्रथमे साक्षात्कारे शिववीरोऽनिनतरोऽजायत, अन्यथा स दैत्यः स्वकीयभुजपाशेन लघुकायमिव शिववीरमावेष्ट्य कालकवलतां प्रापयितुं क्षमते स्म। अतएव शिववीरः तदीयालिङ्गनव्याजेन समीपं गत्वा व्याघ्रनखात्मकेनास्त्रेण तदीयानि जत्रूणि कन्धरांश्च व्यपाटयत्। वस्तुतः क्षणार्ध एव स दीर्घकायं शत्रुं व्याजघान। अफजलखानस्तु किमपि चिन्तयितुमपि नाऽशकत्, यथा—

"शिववीरस्तदालिङ्गनच्छलेनैव स्वहस्ताभ्यां तस्य स्कन्धौ दृढं गृहीत्वा सिंहनखैर्जत्रूणि कन्धरांश्च व्यपाटयत्। रुधिरदिग्धं च तच्छरीरं कटिप्रदेशे समुत्तोल्य पृष्ठे ऽताडयत्।"

(शि॰ वि॰, पृ. 72)

शिववीरो योग्यव्यक्तेः समुचितं समादरमप्यकरोत्। भूषणकवेरोजस्विना काव्यपाठेन स एतावान् प्रमुदितोऽजायत यत् स भूषणाय विंशसंख्यकान् हस्तिवरान् पुरस्काररूपेण दत्तवान्। सः तस्मै राजकवि-पदमपि प्रायच्छत्। महाराष्ट्रे ब्रजकविता कृते एष समादरः प्राथम्यमभजत् यथा—

"महाराजस्तु "साधु साधु" इति व्याहृत्य पुनः पठितुमादिष्टवान्। पठितवति च तस्मिन् सर्वेषु प्रसन्नेषु पुनरप्यादिशत्। इत्येवं विंशति वारं तेन सा ब्रजभाषामयी कवित्वकामनामिका धृतिरपाठि।

महाराजेन च तस्मै गजानां विंशतिर्वितीर्णा, इत्यद्यापि प्रसिद्धं कवितारसिकानां मण्डले। तदेव च दिनमारभ्य तेन भूषणकविः स्वसभायां संस्थापितः।

(शि० वि०, पृ. 143)

शिववीरे निर्भीकता स्वभीनमाश्रायामविद्यत। स एकाकी एव रिपुकन्दरायां निर्भयः सन् प्राविशत्, इष्टपूर्त्येनन्तरं च सकुशलं प्रत्याजगाम। पूना-नगरे शास्तिखानस्याधिकारे संजाते स महादेवरूपे तेन सह वार्तां विधातुं तदीये प्रासादे सत्वरं प्रविवेश। शिववीरस्य मित्राणि भृत्याश्च अनेकवारं तदीयैरतादृग्विधैः साहसिकैः कर्मभिर्विकला इव समजायन्त। ते शिववीरं साहसिकात् कार्यान्निवारयितुमप्ययतन्त, पर शिववीरः स्वनिश्चयात् तृणमात्रमपि न परावर्तिष्ट। यदा स जसवन्तसिंहं जयसिंहं च द्रष्टुं जिगमिषति स्म, तदा माल्यश्रीकादयः समधिकं बिभयाचक्रुः, परं ते शिववीरं गमनान्निरोद्धुं न पारयामासुः। वस्तुतः शिववीरोऽजानद् यद् महान्तं पुरुषं प्रभावयितुं महद्-महद्-व्यक्तित्वमावश्यकं भवति। एतादृगवसरे स सामान्य-दूतस्य प्रेषणं व्यर्थमिवाऽन्वभवत्। अतः खलु स स्वयमेव एतादृग्विधं साक्षात्कारं व्यधात्। तदनन्तरं सफलस्त्वजायत एव सः।

एकाकिगमनेऽपि किमपि रहस्यमवर्तत। तत्खलु पूनानगरोपरि आक्रमतः तेन प्रकटीकृतम् पुनः। पुनः माल्यश्रीकादिना सहगमनाय अनुरुद्धः सः कथयामास —

"वीरवर! क्षम्यताम्, नाहं युष्माकं धैर्यं गाम्भीर्यं वीर्यं वा विस्मरामि। परमलमनुरोधेन। केवलमाशीर्भिरेव संवर्द्धतामेष जनः। *निश्चयेनाहं युष्मदाशीः सर्वाद्धितो विजेष्ये।* दैवाद् वीरगति गतश्चेद् भवत्सु कुशलिषु पुनरपि स्वतन्त्रमेव महाराष्ट्रराज्यम् पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्मः, पुनरपि च शल्यं एव वक्षःसु भारतप्रत्यर्थिपत्नीनाम्।"

(शि. वि. पृ. 247-248)

एतादृश्या दूरदर्शितया सम्मन्त्य वराको नान्दर्श्रीको निरन्तर एव समभवत् । न तत् तेन एतावता गाम्भीर्येण प्रश्न एष विचारित आसीत्, परं शिववीरस्य कृते निखिला एषा विचारणा करणीया अवर्तत । न स एतत् स्वीकर्तुं सन्नद्धोऽभवद् यत् सर्वे ते महाराष्ट्रस्य वीरवरा एकवार एव वीरगतिं प्राप्नुयुः । तेषां कर्त्तव्यं तु हिन्दूधर्मरक्षार्थं सततं सघर्षरनिरंतमासीत् । अत तत् महाराष्ट्रस्य समग्रा शक्तिमूर्जा न एकस्या एव व्यक्तेः कृते कथं व्ययीक्रियेत ?

शिववीरोऽनावश्यके रक्तपाते न विश्वसिति स्म । अनेकवारं तु स शत्रुं प्रति दयालुरप्यजायत । चांदखानस्य पुत्रोपरि एतादृशी-मेवानुकम्पा प्रदर्शयन् स कथयामास—

"अपसराऽपसर, किमिति मुधा स्वपितृशोणितदिग्धमत्करवालधारा-तीर्थे शरीरं विसिसृक्षसि ? समालोक्य तव मुग्धं मुखमण्डलं करुणापरवशः क्रौर्यमाचरितुं नोत्सहे ।"

(शि. वि. पृ. 258)

शिववीरस्यैतेन कथनेन स्पष्टमेतद् यत् सः चांदखानस्य वधेन किञ्चिदनुतापयुक्त आसीत् । संभाव्यते एतद् यत् सः चांदखानस्य वंशं समूलं हन्तुं नैच्छत् । अन्यथा स. कथं रिपुगृहे एतादृशीं दयां प्रदर्शयित्वा स्वकृते शङ्कामुत्पादयितुं प्रारेभे । सत्यमेव तेन स्वयं क्षणान्त एव स्वकीया त्रुटिर्ज्ञाता । नो चेद् रघुवीरस्तत्र आगच्छेत्, तदा कोऽप्यनर्थ एवाऽभविष्यत् ।

शिववीरस्य युद्धकौशलमनुपममासीत् । अश्वचालनेऽसिचालने च सोऽतीव निष्णात आसीत् । पूनानगरीये युद्धे तदीयं रण-चातुर्यं पश्य तावत्—

"शिवस्तु चन्द्रहासचालने प्रवृत्तोऽद्य इति झटिति केषांचिदविहितो-त्क्रामानामस्पृष्टतलानां गमनं एवोदरं सविदरमकार्षीत्, परेषां परिपाटोत्तिष्ठासतामेव शिरोधरानशिरोधरां व्यधित, अन्येषां

मेदोमांसपिच्छिलकर्दमचलितान् चरणान् संवरणानकृत, इतरेषां च खड्गोत्क्षेपणोत्क्षिप्तान् करान् निजासिवृंषण बाहुमूलानुदक्षैप्सीत् ।"

(शि वि. 259–260)

शिववीरो धैर्यशील आसीत्। कटुवचनान्यपि श्रुत्वा स क्रोधाभिभूतो नाऽजायत । यदा रसनारी नमजात्वा "पार्वतीन्दुरु" इतिसंज्ञयाऽऽकारयामास तदा स्पा तदीयमाननं रक्ताभं न समभवत्। प्रत्युत स धैर्यमाश्रयन् रसनारीमवोधयत् यत् पौनःपुन्येन पराजिता मुगलजातीयास्तमेतन्नाम्ना निरस्कुर्वन्ति स्म । तथाप्येतन्नानुमीयते यद् रसनार्या. सौन्दर्यं नारीत्वं च शिववीरस्य क्षमाभावोत्पादने हेतुनी आस्ताम्। तां दृष्ट्वा स अनुरक्तोऽप्यजायत। एतत्तथ्य तु ज्ञातमेव यथा—

"ततः परमुपविष्टयोर्मुहूर्तं यावद् बहुव आलापास्तयोः परस्परं घटितयोर्मिलितयोरनुरक्तयोश्चाभूवन् ।"

(शि. वि. पृ. 274)

परं शिववीरस्यानुरागो भुजङ्गत्वस्य द्योतको नासीत्। तदीयोऽनुराग. न कामपि वासनां, परं हृदयस्य सहजमाकर्षणमेव मुखरीचकार। अतएव स हस्तगताया अपि रसनार्या. स्थितिविशेषेण कमपि लाभमवाप्तुं नायतिष्ट। अन्ढया सह सहवासस्य कल्पनाऽपि न तस्मै रोचते स्म । अतः खलु सः कामोद्दीप्तां रसनारीमाभाष्य कथितवान्—

"भद्रे ! मुधैव मामुपालभमे। यदा गम्भीरं निरीक्षिष्यसे परीक्षिष्यसे च, तदा स्पष्टं समीक्षिष्यसे, यन्न अणुरपि दोषो मामकीनः ... पित्राऽप्रदीयमाना यं कंचिदेवांगीकुर्वती व्यभिचारिणी वचनीया च भवति ।"

(शि. वि., पृ. 332-333)

नैनिस्तया वृद्धोऽपि सः यदा प्रपरिणीतं, तां बालामग्निज्वालापरिवृतात् रथात् बहिरानेनं भुजाभ्यामुत्थापयामास, तदा सा शिववीर

भृशमालिलिङ्ग । शिववीरस्तु तदा न किमपि कर्तुमक्षमत । तस्या रक्षणमेव तदभिप्रेतमासीत्, इति कृत्वा स विवश इव तदालिङ्गनमनभिप्रेतमपि न तिरश्चकार ।

शिववीरस्यैकाऽदूरदर्शिताऽपि दृष्टिपथमायाति । रघुवीरसिंहनामको तदीयो भृत्य परमविश्वस्त. शौर्यान्वितश्चासीत् । परमेकदा विलम्बेन आयातः स शिववीरेण भृश निरस्कृत. । सत्यमेतद् यद् रघुवीरसिंहो विलम्बस्य कारणं नैव प्रकटीचकार, पर शिववीरकृते एतदचिन्तनीय नासीद् यदनुद्घाटिते सति कारणे किमपि रहस्य भवितव्यम् । रघुवीरस्यैतेन लघ्वपराधेन शिववीरो भृश चुकोप, रघुवीरस्य वधाय च सन्नद्धो बभूव । एतेन प्रसङ्गेन शिववीरस्य कार्यविचारणा सदृश्यते । परमेतत्र विस्मरणीय यत् स तत्कृतेऽनुताप नाऽन्वबभूव । दीर्घकाल यावत् स रघुवीरस्यापमानेन दूयते स्म । रघुवीरस्य पुनरागमनानन्तर तु स तदीया क्षमामपि ययाचे ।

जयसिंहेन आश्वस्त. सन् स दिल्ली यातु सहमतोऽजायत, पर तन्मनसि दिल्लीदवरगदाशङ्काऽप्यासीत् । वस्तुतः सामान्यपरिस्थितौ न कोऽपि जनोऽवरङ्गजीव विश्वसिति स्म, तदा शिववीरस्य दिल्ली प्रति गमनं त्रुटिमेवाऽभिव्यनक्ति । पर स्मरणीयमेतद् यदवरङ्गजीवस्य आदेशः कथमपि तिरस्करणीय नासीत् । आदेशस्य तिरस्कारः सद्य एव विपत्तिकारक आभाति स्म, तदीयेन पालनेन तु विपत्तेर्निराकरणं संभाव्यते स्म । वस्तुतः शिववीरेण दिल्लीगमनं स्वीकृत्य महाराष्ट्रे महद्-रक्तपातस्य संभावनाऽपि दूरीकृता ।

यदा अवरङ्गजीवेन तस्मै पञ्चसाहस्रिकस्य श्रेणी प्रदत्ता, तदा तु शिववीरः भृशं चुक्षोभ । स राजसभाया नियमान् तिरस्कृत्य रामसिंहं कैश्चिदस्फुटैः शब्दैः एवं सबोधयामास—

> **"किं शिवः पञ्चसाहस्रिकः ? यदि सम्राट् कदाचन महाराष्ट्रदेशं यास्यति तदा द्रक्ष्यति कति पञ्चसाहस्रिकाः शिवं चामरैर्वीजयन्ति ।"**

(नि. वि., पृ. 430)

यद्यपि नैजमावासं प्रतिनिवृत्य स भृशमदूयत, अनिद्रया चाविष्टोऽजायत मुखमपि विवर्णोऽजायत, परं राघवाचार्येण दिल्लीनगरात पलायनस्य प्रबन्धे कृतेऽपि सः सहचरान् परित्यज्य एकाकी सन् पलायनं न स्वीचकार। यदा तु स ज्ञातवान् यद् राघवाचार्य एव रघुवीर्सिह आसीत्, तदा स तमालिङ्ग्य पूर्वापमानकृते क्षमामपि ययाचे।

महाराष्ट्रं प्रत्यागते सति शिववीरः राजसभायां रघुवीरं प्रति कृतज्ञतां प्रकटयामास, मण्डलेश्वरपदं च तस्मै प्रायच्छत्। सौवर्ण्या सह तदीये विवाहेऽपि शिववीरः उपस्थितो भूत्वा स्वकृतज्ञतां पुनः प्रकटीचकार।

उपन्यासस्य समापनं तु शिववीरस्य स्वप्नवृत्तान्तेन जायते। एतस्मिन् स्वप्ने अवरङ्गजीवस्य दुश्चिन्ता., रसनायां आत्महत्या, जयसिंहस्य च मृत्युप्रभृत्यादिविषया चित्रिताः। एतेन स्वप्नेन भविष्यचित्रणमिव प्रतीयते।

उपर्युक्तेन विश्लेषणेन शिववीरस्य चरित्रगतं गुणवैविध्यं शुद्धयादर्शश्च पूर्णतः प्रकटीभवन्ति। साम्प्रतमेतत् कथयितुं शक्यते यत् पराधीनतां गते भारते देशे राष्ट्रीयचेतनायाः जाग्रतौ राष्ट्ररक्षणोद्बोधने च शिववीरस्य चरितं किमपि परमवैशिष्ट्यं धत्ते। शौर्यदयाऽनुकम्पादूरदर्शिताऽन्तस्तापाऽनुतापपुरस्कारसम्मानक्षमादिगुणास्तदीयचरित्रस्य परमोत्कर्षं प्रकटयितुं भृशं क्षमन्ते, इत्यपि कथयितुं शक्यते। अनेनैव कारणेन स हिन्दुराष्ट्रकल्पनाया जनक इव इतिहासग्रन्थेषु प्रसिद्धः।

रघुवीरसिंहस्य चरित्रचित्रणम्

अम्बिकादत्तव्यासेन शिववीरस्यैवनायकत्वेन परिकल्पितस्तदा रघुवीरसिंह उपनायकत्वेनास्मिन् उपन्यासे समुपस्थापितः। यदा कदा तु एतदप्याभाति यत् स कृतेरस्या नायक एव विद्यते, यतः सौवर्ण्या सह तदनुराग उद्वाहश्च उपन्यासस्य प्रारंभात् समाप्तिपर्यन्तं चित्रितौ स्तः। सौवर्णी तु सौन्दर्येण बहुविधगुणार्णवेन च नायिकैव प्रतिभाति, यतो हि

रसनारी वासनाया. प्रतिमूर्ति. सती नायकं शिववीरं पतिरूपेण प्राप्तुं साफल्यं नावाप, स्वप्नसंकेतानुसारमात्महत्यां च कृतवती। अतः सौवर्णी निश्चप्रचं नायिकापदोपयुक्ता प्रतीयते। तदनु रघुवीरसिंहो नायक इव अनुमीयते। परमुपन्यासस्य नाम्ना परमप्रतिष्ठया च शिववीर एव नायकत्वेन परिकल्पित उपन्यासकारेण इति तु निश्चितमेव।

रघुवीरसिंह जयपुरवास्तव्यस्य कस्यापि सामन्तस्य पुत्र इति संकेतितमस्ति। तत्रत्येनैव लेखकेन श्रीमता व्यासमहोदयेनास्मै पात्राय काप्यात्मीयतेव प्रदर्शिता। रघुवीरसिंह युवकोऽस्ति, सामान्यसौन्दर्येण समन्वितोऽपि चित्रितः। तदीया कर्तव्यनिष्ठा तु सीमातीतं वर्तते। बाधाभिः सह संघर्षे स आनन्दमिवानुभवति। तत्कृते विश्रमोऽप्यनावश्यक इवाभाति। एतेनैव स पत्रवाहकपदात् सततोन्नतिं लभमानः मण्डलेश्वरो जायते। यौवनसुलभा निर्बलताऽपि तस्मिन् दृश्यते। सौवर्ण्याः प्रेम्णि स एकदा प्रमादमप्याचचार। तदर्थं स दण्डमप्यवाप। परमवमाननाविषं तु रघुवीरं नैव स्पृशति। स. स्वकीयत्रुटिं मनसा स्वीकृत्य अवमाननाजनित कलंकमपाकर्तुं वीरोचितं मार्गमाश्रयन् साफल्यमप्राप्नोत्। स्वयं शिववीर-स्तदीयां क्षमामयाचतेति तु तत्कृते महत्तमः पुरस्कार इवाजायत। तदधिकं तु स न किमप्याकांक्षते स्म। परमेतत्कृते तेनातियुक्तिकौशलं साहसेन समन्वितं शौर्यं च प्रदर्शितम्। एकाकी सन्नपि स. शत्रूणां कन्दरायाः शिववीरं बहिर्निस्सारणे सफलीबभूव।

सर्वप्रथमं तस्मिन् उपन्यासे रघुवीरः कोऽपि निर्भयः, साहसिकः, कर्तव्यनिष्ठश्च पत्रवाहक इति निरूपितोऽस्ति। सिंहदुर्गात् तोरणदुर्गं प्रति शिववीरस्य पत्रं गृहीत्वा प्रचलन्नेष वीरो मार्गे धूलिवर्षा-विद्युदादिबहुविध-संकटापन्नोऽपि कार्यहानिं नैवासहत। स तु स्रोतास्युल्लंघमानो गर्तांश्च परिजहदुच्चचाल।

कर्तव्यनिष्ठेन रघुवीरेण अवकाशे प्राप्ते इतस्ततो भ्रमता कोऽपि गीतध्वनिः श्रुतः। संगीतस्य व्यामोहेन गायिकादर्शनाकांक्षया च स अवश इवाऽजायत। अन्वेषणं च कुर्वता तेन सौवर्णी दृष्टा, या ननु न

केवलं गायने, अपि तु सौन्दर्येऽपि वैशिष्ट्यमधात्। रघुवीरस्तु तां दृष्ट्वैव मुग्धोऽजायत। प्रथमदृष्ट्यां प्रेम्ण उदाहरणमेतन्न केवल सौवर्ण्याः सौन्दर्येण, नैव च तदीयेन गायनेन, अपितु वातावरणानुकूलतया च प्रभावितमासीत्। यद्यपि तन्मनसि कार्यस्यास्य अनौचित्यशङ्काप्यजायत, परं कामाहतो जनो न खलु तर्कविवेकेन वा प्रेम्णोमार्गं त्यजति। एतादृग्जनस्तु करणीयतामपि न पश्यति। स तु गता अनागता वा संभाव्यताः विस्मृत्य सर्वविषपरिणामानुभूत्यै तत्परो जायते। सौवर्ण्या हस्तेन मोदकानि यूथिकामालां च समवाप्य स धन्य इवाऽजायत।

उपन्यासकारेण व्यासमहोदयेन प्रकरणमेतद् विवाहावसरे वरमालासमर्पणमिव समुपस्थापितम्। किंचित्कालानन्तरं सौवर्ण्याः या स्वर्णमाला प्रमादवशात् कुत्रापि न्यपतत्, सा खलु रघुवीरेण समासादिता। तेन तु सा स्वर्णमाला पुनरपि सौवर्ण्याः गलप्रदेशं प्रापिता। इत्थं हि उभाभ्यामेव वरणात्मकं चयनं सम्पन्नम्।

यदा सः स्वकीया प्रेयसी खिन्नामिवाभालयति, तदा सः स्वकीय हृदयानुतापं विवशतां च प्रकटीकृत्य तां सान्त्वयामास। यथा—

> "प्रिये! किमेतत्? अहह! किमिति ताम्यसि? शुष्यसि, ग्लायसि खिद्यसे च? हन्त! अहमेव वा किं करोमि? अश्वपृष्ठमेव मे गृहम्। तत्कथं मादृशमशरणमव्यवस्थं च चिन्तयन्ती चेतश्चलयसि, प्रत्यह शुष्यन्ती तव गात्रयष्टिमालोक्य स्वप्नेष्वप्युद्विजे।"
>
> (शि. वि., पृ. 235)

स. तदैव सौवर्ण्याः प्रेमाभिव्यक्तिं श्रुत्वा प्रत्यजानात् यत् स. तामेव पत्नीरुपेण स्वीकरिष्यति, अन्यथा जीवन-पर्यन्तमविवाहित एव स्थास्यति। सः कथयामास—

> "किमत्र संशये? काऽत्र संदेहः? काऽत्र विचिकित्सा? कौमारब्रह्मचर्यमहाव्रतेनैव गात्राणि जर्जरयिष्यामि, त्वामेव वा परिणेष्यामीति सुदृढो मे नियमः।"
>
> (शि. वि., पृ. 237)

रघुवीर एकाकी आसीत्। न कोऽपि तत्कृते रोदिष्यतीत्यपि स अजानात्, परं विचारणयैतया कमपि शङ्कामनुभूय स दुःसाहसात्मकं किमपि कृत्यमनुष्ठातुमपि सन्नद्ध आसीत्। एतेनैव कारणेन स. शिववीर-सम्मुखमावेदयति यत् शास्तिखानेन सह योद्धुं तस्मै अनुमतिः प्रदीयेत। अनेन कथनेन प्रतीयते यद् भविष्यनिर्माणस्य स्वर्णविमर्शमेनं परित्यक्तुं न सः सन्नद्ध आसीत्—

> "महाराज! स्वकुटुम्बेऽहमेकोऽस्मि, विनष्टं मामयगत्य न कोऽपि रोदिष्यति। प्रभुं तोषयितुं शक्यामि चेदायतिर्मे मंगलमयी।"
>
> (शि. वि., पृ. 257)

शिववीरस्यानुनयं कृतवता तेन तदौचित्यमपि प्रत्यपादयत्। शत्रुद्वयाभ्यामाक्रान्तस्य स्वामिनो रक्षां विधाय स वास्तविकस्वामिभक्ति तत्परता च प्रकटीचकार। स्वयं शिववीरेण तत्कृते कृतज्ञताऽपि विज्ञापिता।

रघुवीरोऽदम्यसाहसेन समन्वित आसीत्। रुद्रमण्डलमाक्रामता शिववीरेण स्वसेनया सह रघुवीरोऽपि प्रेषितः। तत्र तु सः सर्वप्रथमं प्राचीरमुल्लंघयामास, स्वकीयान् सहचरांश्च तथैव कर्तुं प्रोत्साहयामास। अन्यथा न स दुर्गो जेतुं शक्य आसीत्। पश्यत तावद् युद्धवर्णनम्—

> "क्षणं तत्र घोरं युद्धमभूत्। तावदकस्माद् दृष्टं यत् कश्चन 'हर हर महादेव" इति स्वरेणोच्चारयन् खड्गं चालयन् सोत्फालं दुर्गान्तः पतितोऽस्ति। सोऽयं रघुवीरसिंहः, यः सर्वेभ्यः प्रथममेव दुर्गान्तः प्रविश्य साहसमभ्यकार्षीत्। तेन सहैव वीरः राजसिंहोऽपि शार्दूल इव जघन्ययवनमण्डले समापतत्। तन्निरीक्ष्य शतशो महाराष्ट्र-वीरास्तथैव सकूर्दनं दुर्गान्तः प्रविष्टाः। तत्र च मुहूर्तं तुमुलं युद्धमभूत्।"
>
> (शि. वि., पृ. 366)

परं रघुवीरो दुर्भाग्येन पुनरपेक्षितः। तदनु सर्वमपि तदीयं साहसिकार्यमकृतमिवाऽजायत। एकदा विलंबेन आगतः स विलम्बस्य

कारण नैव प्रकटीचकार। संभवत सौवर्ण्या सह मिलने एव विलम्बो-ऽभूत्। तेन चैतत् प्रकटीकर्तुं नैव समर्थितम्। यद्यपि स युद्धेऽप्रतिमं शौर्यं प्रकटय्य स्वकीयं प्रमादं क्षमायोग्यमिव व्यधात्, पर विश्वासघातसदृशा-रोपस्योत्तरं तु पृथकतयाऽपि देयमासीत्। परमत्र तदीया बुद्धिस्तत्शौर्यं च तमपरित्यजताम्। कथ स वराक प्रकटीकुर्याद् यद् गौरसिंहसदृशः पदाधिकारिणो भगिन्या सौवर्ण्या सह मिलने विलम्बोऽजायत। एतेन तु स्वय शिववीरो गौरसिंहश्च क्रुद्धौ भवेतामित्याशंका तु तनाऽवर्तत एव। अतएव सः शिववीरेण भृशमवधीरितोऽपि सन् मौन नाऽत्यजत्।

वस्तुतः रघुवीरस्तु पुरुष आसीत सर्वथैव अकिंचनश्च। स तु तिरस्कारं सोढुं क्षम आसीत्, परं विलम्बकारणं ज्ञापयित्वा सः सौवर्णी न कदापि निन्दिता विधातु शशाक। स्वय शिववीरेण प्रत्याख्यातः सन् स सौवर्णी मुखं दर्शयितुं न क्षमते स्म। एतत्कृते स. स्वामिवेषं धारयित्वा सौवर्णीसामीप्यं लेभे, ता च "रघुवीरो निर्दोषोऽस्ति" इत्यपि प्रबोधयामास।

सौवर्णी द्रष्टुं गतः सः क्रूरसिंहहस्तात् सौवर्णीममोचयत्। अन्यथा क्रूरसिंहस्तु वलात्कारेण सौवर्णीमधिगन्तुं तत्रायात आसीत्। एतदपि स्मरणीयं यत् क्रूरसिंह एव रघुवीरापमानाय शिववीर प्रेरयामास, येन हि स रघुवीराद् विमुखीभूता सौवर्णी अनुनयेन, प्रणयेन वलात्कारेण वा समासादयेत् पर स्वामिवेषेण समागत रघुवीरस्तदीया कुत्सिता योजना विफलीचकार, कुत्सित क्रूरसिंहं च यमलोक प्रेषयामास।

तदनन्तर सः प्रणयव्यापारं किंचित्कालाय पराकरोति, स्वामिनो हितचिन्तने च तत्परतां वहति। सः शिववीरं दिल्लीगमनविषयकान्निश्च-यान्निवारयितुं वारं वारं प्रचोदयामास, परं सः साफल्यं तु नाऽभजत्। दिल्लीश्वरस्य कारागार इव आवासे निरुद्धस्य स्वामिनः रक्षार्थं स्वामिवेषेण संचरन् रघुवीर एव योजनामेकामचिन्तयत्, तत्पूर्त्यै च निखिलमायोजनमपि कृतवान्। दिल्लीतः प्रस्थाने, महाराष्ट्रे च समागमने सति शिववीरोऽजानात् यत् तदीया प्राणरक्षा रघुवीरसिंहस्य प्रयासैरेव

संजाता। ततस्तु स रघुवीरं प्रति स्वीयां कृतज्ञतां मुखरस्वरेण प्रकटीचकार, मण्डलेश्वरपदं च तस्मै समर्प्य तदीयमभिनन्दनमपि व्यदधत्। सौवर्ण्या सह रघुवीरस्य विवाहेऽपि स्वयं शिववीर उपस्थितः सन् दम्पत्यभिनन्दनं कृतवान्।

इत्थं हि लेखकेन व्यासमहोदयेन रघुवीरसिंहस्य चरित्रगतं विविध वैशिष्ट्यमस्मिन् उपन्यासे प्रकटीकृतम्। नो चेत् स नायकत्वेन वृतः, तदा शौर्येण, साहसेन, कर्तव्यनिष्ठया, स्वामिभक्त्या, प्रेमव्यवहारे च पुनीतभावनया समलङ्कृतः स उपनायकत्वं त्ववश्यमेवालङ्करोति।

सौवर्णी

उपन्यासस्य स्त्रीपात्रेषु सौवर्णी एव प्रमुखतां भजते। नायिकोपनायिका वा एषा सौवर्णी उपन्यासस्य प्रारम्भादन्तं यावत् सातत्येन चित्रिता। प्रारम्भे तु सा यवनेनाक्रान्ता लावण्यमयी बालिका एव समुपस्थापिता। तदनु सा यौवनश्रिया समृद्धा, लावण्येन समन्विता, मुग्धा नायिका च आभाति। परं तदीयेन वृत्तान्तेन ज्ञायते यत् साऽतिदुर्भाग्यमयी आसीत्। बाल्य एव तदीया जननी मृत्युमगात्, पिता च तस्याः मुगलसैनिकैः सह युद्धे वीरगतिं प्राप। तदीयौ भ्रातरावपि कुत्रापि विलीनावभूताम्। अतः खलु साऽनाथकन्या संजाता, तस्याः कुलपुरोहितेन च पालिता।

तदीया तुलना रत्ननार्या सह क्रियेत चेत्तदा स्पष्टमेतदाभाति यद् रत्ननारी सौभाग्यमवाप्य समुन्नताऽऽसीत्। सा हि दिल्लीश्वरस्य अवरंगजीवस्य सुता, सौन्दर्येऽपि सौवर्ण्या नातिन्यूना, शिववीरसदृशो महाराष्ट्राधिपतेः प्रेमाधिकारिणी आसीत्। एतत्तुलनाया सौवर्णी त्वनाथा सती पुरोहितगृहेऽकिञ्चनत्वमिव भेजे। तस्याः प्रेमभाजनमपि एतादृग्जन आसीत्, यः स्वयमेकाकी सन् शिववीरस्य भृत्यत्वं दधौ। परं दैवस्य विलक्षणत्वं त्वेतद् यद् रघुवीरे मिलिते सति सौवर्ण्याः सौभाग्यं परावर्तितुमिवारेभे। तदीयेन प्रेम्णा जीवनं सार्थकमिवानुभवन्ती सौवर्णी स्वभ्रातरावपि पुनरैक्षत। यद्यपि तया रघुवीरः स्वकार्यनिर्वहणानिरुद्धः,

तथापि सा त्रुटिमेना हि सुदीर्घां व्यथामनुभूयम्र शमयामास। रघुवीरेण सह नदीय उद्वाहस्तु दुर्भाग्यस्य परममर्मातिमेव व्यनक्ति। अत. सा रस गार्या. तुलनाया अधिकतरं प्रामुख्यमुच्चस्तरत्व च भजते।

सौवर्ण्या बालरूपं प्रकटयितुमुपन्यासकारेण कारुणिकस्य वातावरण-स्य सर्जनं विहितम्, तद्यथा—

> "क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमरण्ये दीर्घं निश्वसती, मृगीव व्याघ्राघ्राता, अश्रुप्रवाहं स्नाता, सवेपथुः कम्पकैकांके निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरो सहचरो वा न प्राप्तः। तां च चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणालगौरीम्, कुन्दकोरकाग्रवतीम्, सक्षोभं रुदतीमवलोक्या, स्माभिरपि न पारितं निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।"
>
> (गि. वि. पृ., 11-12)

एवंव रुदती बालिका यौवनागमे सति कीदृगप्रतिमं रूपं दधौ, तदपि द्रष्टव्यम्, यथा—

> "सेयं वर्णेन सुवर्णम्, " वयसैकादशमिव वर्षं स्पृशन्ती, श्यामकौशेय वस्त्र-परिधाना ...... मन्दं मन्दं, मुग्धमुग्ध, मधुरम् मधुरम् किंचिद् गायतीति।"
>
> (गि वि. पृ., 120-121)

पुरोहितस्य निर्देशं पालयन्ती सा रघुवीरं मोदकप्रदानेन माल्यार्पणेन च पतिरूपेण वृतवत्यासीत्। सा हि सततं स्वप्रियं द्रष्टुं कामयामास, परं रघुवीरस्तु शिववीरस्य भृत्यत्वेन व्यस्तः सन् बहुकालपर्यन्तं प्रियां द्रष्टुं न पारयामास। अतो हि यदा सः सौवर्णीं द्रष्टुमागतः, तदा तु सा प्रियवराय तस्मै उपालम्भमेवं दत्तवती —

> "वीर! अभाग्य एष जनः, अस्वायत्तं हृदयम्, विगलितं धैर्यम्, पराधीनं चित्तम्, अस्थिर आत्मा, दुर्निवारः प्रेमप्रवाहः, दुरन्तः अभिलाषः, अप्रतिरोधा कर्मरेखा, तत् किमिव वच्मि? न जाने कीदृशं वज्रादपि

> निष्ठुरं हृदयं भवादृशानां व्यरचि विधात्रा, ये स्वसमर्पित-जीवनाना-मनन्यशरणानां ---- देहं न शीतलयन्ति ।"
>
> (शि. वि. पृ., 236)

यदा रघुवीरस्यापमानवृत्तान्तस्तस्या ज्ञातं, तदा सा मर्मान्तिकव्यथा-मन्वभवत् । वस्तुतो न वस्तु नैव, अपि तु कापि नारी विश्वासघातिनं प्रणयिनं पत्नीत्वे वाऽभिलषति । सौवर्णी यथाऽपि न तद्विभिन्नासीत् । आजीवनं सा कौमार्यव्रतं पालयितुं सन्नद्धाऽऽसीत्, परं विश्वासघातिनं पतिरूपेण स्वीकर्तुं न कदापि प्रस्तुता । परं तस्या मनस्येष विश्वासो दृढीभूत आसीत्, यत् तस्याः प्रियः स्वामिना सह विश्वासघातं न कदापि करिष्यति । पश्यत तावद् तदीयभावाना चित्रणम्—

> "धिक् ! नाहं तावद् तादृशमुदारस्वभावं कुलीनं युवानं विद्रोहीति विश्वसिमि । सूर्यो यदि प्रत्यगुदीयात्, गगनतले वा प्रफुल्लकमल-मण्डलमण्डितवलोकयेत, ततोऽपि न भवेन्मे विश्वासस्तदीय-कपटस्य ।"
>
> (शि० वि०, पृ. 394)

सर्वविध-संकटेषु व्यतीतेषु सा स्वप्रियं पुनः समवाप्य हर्षातिरेक-मिव जगाम, यथा—

> "सा स्वानन्दपरवशा जडीकृतेव, चित्रार्पितेव, मन्त्रकीलितेव, माया-मोहितेव, हारितहृदयेव, मथितमानसेव च विविधभावभंगतरं-गिताभ्यां नयनाभ्यां निपुणमीक्षमाणा, अविरलगलदश्रुजल-धारया मलिनसम्मर्दमिव क्षालयन्ती मन्दं मन्दं मुहूर्तमालप्य तं विससर्ज ।"
>
> (शि. वि. पृ. 394)

तदनु तावुभौ विवाहसूत्रेण दृढमाबद्धौ महाराजस्य शिववीरस्य आशीर्वचोभिरभिनन्दितावप्यजाताम् ।

इत्थं हि सौवर्ण्याः चित्रणं बालिकारूपेण प्रारब्धम्, वधूरूपेण च समाप्यते । बालिकारूपे तु सा जगतः कौटिल्येन सर्वथैवाऽपरिचिता,

परं दुर्भाग्यवशात् प्रपीडितेवाभाति परं सौभाग्यस्यागमनमपि तस्याः कृते नैव न्यूनमासीत् । अज्ञानकुलोत्पन्नं युवकं प्रति तस्या नैसर्गिकं प्रेम न कदापि वासनामभिव्यनक्ति । विरहव्यथया सन्तप्तापि सा प्रियं प्रतीक्षते, परमात्महत्याप्रयासं कुर्वन्ती सा मध्य एव विरमति । अनन्तरं तु सा विरहोद्दग्रतपसा नैजं प्रेम समधिकं तीव्रं पावनं च व्यदधाति । अस्त्रशस्त्रप्रयोगेषु तु साऽज्ञानवतीव दृश्यते, परं कामेषुप्रयोगे तु सा किमपि प्रावीण्यमिव धत्ते ।

रसनारी

रसनारी "रौशनारा" वा राजभवनेषु सुलालिता सुपालिता कन्यैव वर्णितास्ति । दिल्लीश्वरस्यावरंगजेबस्य प्रिया सा पुत्री महाराष्ट्रपुंगवं शिववीरं प्रत्यनुरक्तेत्यपि अस्मिन् उपन्यासे चित्रितम्, परमितिहासग्रन्थेषु न किमपि प्रामाण्यं तत्कृते लब्धुं शक्यते । अतः शिववीरं प्रति तदीयं प्रेम काल्पनिकमेव मन्तव्यम् ।

परं रसनार्याः प्रेम्णि वासनायाः संपुटं तु स्पष्टतया दृष्टिपथमायाति । सा खलु शिववीरं प्रति सन्देशानपि प्रेषयति यत् स शीघ्रमेव समागत्य तस्याः दैहिकक्षुधां प्रशामयेत् । परं शिववीरकृते एतत् स्वीकरणीयं नासीत्, इति तु पूर्वंत एव प्रतिपादितम् । स्वीये प्रयोजने साफल्यमनवाप्य सा अन्ते तु आत्महत्यां विदधाति । तदीयमेतद् दुष्कृत्यं तस्याः कृते जीवनस्य वैयर्थ्यमिवाभिव्यनक्ति ।

रसनारी दैहिके सौन्दर्ये यौवनसुलभे आकर्षणे च न कस्या अपि न्यूनाऽऽसीत् । स्वयं शिववीरः तस्याः सौन्दर्यजाले आबद्ध इव चित्रितः । शिववीरेण प्रदर्शितं सौजन्यं समादरभावश्च तां राजकन्यां भृशं द्रावितवन्तौ । न कोऽपि जनस्तत्र तया सह बलात्कारमचेष्टत, इति तु तस्याः कृते सर्वथैवातर्कितमासीत् ।

शिववीरं प्रत्यक्षं दृष्ट्वा सा एकवारं तु तदीया वाक् प्रेमाधिक्येन मूकत्वमिव भेजे, परं शिववीरेण पुनः पुनः पृष्टा सा स्वीयान् भावान् एवं प्रकटीचकार—

"महाराज ! किमिवाऽऽच्छन्दयसि ? विचित्रास्तव मायाः, विलक्षणास्तव घटनाः । यदा यदा मां साक्षात्करोषि, तदा तदानया तु मूर्त्याऽऽचार विनयं मर्यादामेव रक्षसि । निद्रायामपि मम कदाचिदंशुकं स्पृशसि, कर्हिचित् कपोलयोः स्वेदकणानपहरसि………।"

(शि. वि., पृ. 331)

यदा यवनो वह्निस्था जनाः "अग्निः अग्निः" इति उच्चैःस्वरेण वारंवारं कोलाहलमिव कुर्वन्ति, तदा भयेन त्रस्ता रसनारी शिववीरं भुजाभ्यामावेष्टयामास । उभयोस्तयोरेष एव प्रथमोऽन्तिमश्च दैहिकस्पर्श आसीत् । शिववीरो भृशं लज्जितोऽप्यनया स्थित्वा तामङ्के निधाय बहिरानिनाय ।

तोरणदुर्गाद् दिल्लीं प्रति गच्छन्ती रसनारी मनोव्यथया प्रपीडिता सञ्जाता । परं सा विवशा आसीत् । पित्रा दत्ता सा शिववीरकृतेऽग्राह्या आसीत् । पित्राऽनुमतस्य तयोर्विवाहस्तु कल्पनातीत इव प्रतीयते स्म दिल्लीनगरे समागतं शिववीरं प्रष्टुं सा सन्देशमपि प्रेषयामास, परं शत्रुपुर्यां शत्रुपुत्र्या सह मिलनमनिष्टकारकमिव मन्त्रयित्वा शिववीरेण सः खलु मिलनसन्देशः सर्वथैव प्रत्यादिष्टः ।

उपन्यासस्यान्तिमे स्थले शिववीरेण दृष्टे स्वप्ने रसनारी विवशतायाः अतृप्तेश्च शापि साक्षाद् मूर्तिरिव चित्रितास्ति । वस्तुतः तस्या चित्रणेऽतृप्तस्य प्रेम्णः परिपाकः साक्षाद् द्रष्टुं शक्यते । सा स्वपितुर्हठधर्मितायाः बलिरिवाभाति । न तस्यां पितुर्विरुद्धं स्थातुं सामर्थ्यमासीत् । एतत्तु नैव कल्पनातीतं यद् वासनायाः कर्दमे समुत्पन्ना सा वासनाया अपूर्त्या दैहिकं विपदुत्तापमन्वभवत् । सम्राजः सन्ततित्वं हिन्दूनृपं प्रति तस्य प्रेमभावश्च तृप्तिमार्गे बाधामेवोत्पादयामासतुः । अनेनैव कारणेन सा आत्महत्यां विधातुं विवशीबभूव, इत्यपि शिववीरस्यस्वप्नेन संकेतितम् ।

गौणपात्राणि

अन्येषु गौणपात्रेषु गौरसिंह-देवशर्मा-माल्यश्रीक-भूषणकवि-जसवन्तसिंह-जयसिंह-अफजलखान - शाइस्ताखान - शेरसिंह-मायाजित्ह-अवरंगजेब-

चांदखानप्रभृतेरुल्लेखः करणीयः। एतानि पात्राणि किंचित्प्रतीकत्वमपि प्रकटीकुर्वन्ति। यथा हि गौरसिंह स्वामिभक्ते, देवशर्मा निष्ठात्मकस्य पौरोहित्यस्य, भूषण कविर्वीरोचितायाः प्रेरणायाः, जसवन्तसिंह कुंठितस्य हिन्दूत्वस्य, जयसिंहोऽनुभवाघूनायाः परिपक्वतायाः, अफजलखानोऽन्धशक्तेः, शास्तिखानोऽनवधानतायाः, चांदखान स्पष्टवादितायाः, क्रूरसिंहः दुष्टतायाः विश्वासघातस्य च, मायाजित्सु सरलतायाः सहिष्णुतायाश्च, अवरंगजीवो धर्मान्धतायाः अविश्वासस्य प्रवञ्चनायाश्च प्रतीकोऽस्ति। उपन्यासलेखकेनैतेषां चित्रणे न काप्यतिरंजना प्रयुक्ता, अतः खल्वेतेषां चित्रणे स्वाभाविकतैव सर्वत्र परिलक्ष्यते।

महिलोचितानि वस्त्राणि धारयित्वा गौरसिंहो हास्यरससर्जनायापि दाक्षिण्यमभिव्यनक्ति, यथा—

"प्रभो! गौरः प्रकृत्यैवातिसुन्दरः। तत्रापि दिवाकीर्तिमाहूय, मसृणमुखं संवृत्य, अवररागमञ्जनरंजनं वारवधूयोग्यमाभरणजातं प्रच्छदकपटं च धारयित्वा, शिबिकामारुह्य, वीरैरेवाकलित-भार-वाह-वेषैरुह्यमानः तदीयशिबिरमण्डलमासाद्य "पद्मिनी"-नाम्नी जगत्प्रसिद्धा महाराष्ट्रदेशीया वारांगना समागच्छति इति समसूसुचत।" (शि. वि. पृ., 277-278)

अवरङ्गजीवस्य प्रवञ्चनाऽप्यत्र द्रष्टव्या। यदा रामसिंहस्तम् व्यज्ञापयत् यत्तस्य पिता जयसिंहो युद्धे संकटमापन्नः सन् सैन्यसाहाय्याकांक्षन् विद्यते, तदा दिल्लीश्वरः स्वगतं भाषते—

"दिल्लीश्वरः—(स्वगतम्) अस्तु, जयसिंहः शिवश्च द्वावेव भारते दुर्दमनीयौ वीरौ, तदेकः कारागारे बद्धः, अपरश्च तत्र विनश्येत् चेत्, साधु भवेत्।" (शि. वि., पृ. 458)

"शास्तिखानोऽनवधानतया शिववीरेणाक्रान्तः सन् पुण्यनगरात् पलायितः। किन्त्वेकदा सः संस्कृतभाषायाः प्रशंसामपि करोति।" (शि० वि०, पृ. 157)

अस्मिन् विषये एतदेव संभाव्यते यदुपन्यासकारेणोत्साहाधिक्यवशाद् धर्मान्ध शास्तिखान. संस्कृतभाषाया. प्रशंसक इव वर्णितः। यतो हि वर्तमानकालेऽपि संस्कृतभाषाया प्रशंसा विदधन्तो मुस्लिमधर्मावलम्बिनो जना विरला एव सन्ति। अनेन हेतुना शास्तिखानकृते संस्कृतभाषायाः प्रशंसा लेखकीयोत्साहमात्रमेव व्यनक्ति।

इत्थमेव भूषणेन कविता या व्रजभाषामयी कविता श्राविता, सा महाराष्ट्रियाणां कथं बोधगम्या प्रशंसनीया चाऽजायतेत्यपि चिन्तनीयेवाभाति। परं महाराष्ट्रे प्रचलिता परंपरा भूषणनामकाय कवये शिववीरेण दत्तस्य पुरस्कारस्य पुष्टिं खवश्यमेव करोतीत्यनेन तथ्येन स्पष्टं यत् तेन कविना कविता तु श्राविता एव। सा च महाराष्ट्रियाणां कृते बोधगम्याऽसीन्न वेति तु विचारणीयम्।

उपर्युक्तेन चरित्रविश्लेषणेन तथ्यमेतत् स्पष्टतामेति यद् मुस्लिमशासनेन वैकल्यमावहद्भि. शिववीरप्रभृतिभिर्वीरवरेण्यैः स्वकीयसंस्कृतेः सुरक्षार्थं बहुश. प्रयतितम्। साफल्यमपि तैरवाप्तं किंचित्कालाय, इत्यपि व्यासमहोदयेन स्वकीयेनानेनोपन्यासेन स्फुटीकृतम्। वस्तुत एतदाभाति यदस्मिन् उपन्यासे विक्रमादित्यादारभ्य अवरंगजीवपर्यन्तं राजसिंहासनेषु समागतैः परिवर्तनैराहतस्य हिन्दूधर्मस्य रक्षायै शिववीरसदृशाः धर्मसंरक्षका एव हिन्दूजनान् प्रबोधयितुमन्ततश्च 'देहं वा पातयेयम्, कार्यं वा साधयेयम्" इति च प्रेरयितुं क्षमन्ते। वर्तमानशताब्द्यां महर्षेर्दयानंदस्य स्वामिनो विवेकानंदस्य च भारतभूमावतरणमप्येतस्य लक्ष्यस्यैव पूर्त्यै समजायत, इत्यप्यस्माभिरनुमीयते।

सेवानिवृत्त अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,
डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर
(राजस्थान)

शिवराजविजये केचन भाषाप्रयोगाः

● डॉ० हिन्दकेसरी

शताधिकवर्षेभ्यः प्रवर्तिता संस्कृतभाषायाम् उपन्यासानां काचित् परम्परा। प्रथमं वंगलाप्रभृतिभाषाणामनुवादाः, अनन्तरं च स्वतन्त्र-लेखनमपि विहितं विद्वद्भिः। पाठकानामलाभात् सेयमुपन्यासपरम्परा दीर्घकालं नालभत वृद्धिम्, अधुनापि सुप्तेवानुभूयते। श्रीमदम्बिकादत्त-व्यासस्य शिवराजविजयस्तु आधुनिकगद्यलेखकानां काव्यमिति वैशिष्ट्यमदसीयम्।

'अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः'

(काव्यादर्श १-२८)

इति दण्डिरीत्या आख्यायिकायामेव कुत्रचिद् उपन्यासानामन्तर्भावो भविष्यति। लेखकस्तु भूमिकायाम् सुबन्धुबाणदण्डिप्रभृतीनां महाकवीनां परम्परायामात्मानं द्रष्टुकामः, तन्मतेनैतद् गद्यकाव्यमेव न तूपन्यासः। अत्र हि पूर्वतनगद्यकाव्येभ्यः प्रस्तावक्रमो भिद्यते। तेन काव्यमिदम् आधुनिकोपन्यासेष्वन्तर्भवति। कवेः वर्णक्रमस्तु पूर्वपरम्परामनुसरतीति गद्यकाव्यमपि शक्यत एव वक्तुम्।

भाषाप्रयोगेषु निपुणोऽयं महाकविर्व्यासः, छात्राणां व्युत्पत्ति-सिद्धयेऽस्यैव पण्डितपद्धारेत्यपरनामधेयं गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनमिति पुस्तकं समादृतमनेकत्र परीक्षासु। कवेरस्य व्याकरणवैदुष्यं प्रशंसार्हम्, अनेन बहवो नूतना भाषायामनुष्ठिताः प्रयोगाः, तेष्वेव कांश्चिदधिकृत्यात्र

कश्चन विचारश्चिवर्षोपितः। छात्रावस्थायामेव मम 'असावेव चर्कर्ति वर्भर्ति जर्हर्ति च जगद्' इति वाक्यं चमत्काराधायकमभूत्।

संस्कृतभाषायाः गद्यकाव्येषु समासस्तावद् मुख्यो विशिष्टाधायकेषु समस्ता पदावली कवेः पदयोजनसामर्थ्यमभिव्यनक्ति। चिरादेव संस्कृतसाहित्ये समासबाहुल्यं कवेः पाण्डित्यस्य निकषमिव स्वीकृतम्। बाणादीननुकुर्वनाऽनेनापि कविना समासबहुलापद्धतिरनेकत्र स्वीकृता। समासेषु मुख्यतया तत्पुरुषबहुव्रीहिभ्यां दीर्घा पदावली निर्मीयते। अत्रापि काव्ये तयोरेव प्राधान्येनाश्रयणम्। यद्यपि अव्ययीभावस्याऽपि निरर्गलं भूयांसः प्रयोगाः किन्तु अव्ययीभावेन दीर्घा पदावली न निर्मीयते। द्वन्द्वे यद्यपि तथा सामर्थ्यं वर्तते किन्तु बहूनां पदानां द्वन्द्वः स्वल्प एव। कुत्रचित्तु एकस्मिन्नेव पदे बहुव्रीहितत्पुरुषयोरनेकधा प्रवृत्तिः—'फलपटलास्वादचपलितचञ्चुपतत्रिकुलक्रमणाधिकविनतशाखशशिसमूहव्याप्तः' (१-१ पृ. ३) अत्र हि 'फलपटलास्वादचपलिताः चञ्चवो येषां ते इति प्रथमं समासः। ततो पतत्रिपदेन कर्मधारयः, तस्य कुलशब्देन षष्ठीतत्पुरुषः कुलस्य आक्रमणेन विनता शाखा येषामिति पुनः बहुव्रीहिः, ते च शशिन इति कर्मधारयः, पुनश्च समूहपदेन षष्ठीतत्पुरुषः। इयमेव रीतिरनेकत्र समाश्रिता कविना, इदमत्र वैशिष्ट्यम् 'असमर्थसमासा' अल्पीयांस एव। कुत्रचित्तु सप्तमीतत्पुरुषविधाने स्वातन्त्र्यमालम्बितं कविना। यद्यपि सप्तमीति योगविभागेन समादधते केचन तथापि अपाणिनीयत्वं तु एतस्य वर्तते एव, योगविभागस्याप्रमाणिकत्वात्। अयं च गद्यकाव्येषु सामान्यो दोषः, दीर्घपदावली लोभात् पूर्वैरपि कविभिरयं स्वीकृतो मार्गः। 'वीरतासीमन्तिनीसीमन्तसान्द्रसिन्दूरदानदेदीप्यमानदोर्दण्डः' (१-१ पृ. २२) इत्यत्र सीमन्ते सान्द्रसिन्दूरदानमिति समासो नैव उपपन्नः। अन्यत्रापि 'वामस्कन्धस्थापितकुसुमपूर्णपिटकिका' अत्रापि वामस्कन्धे इति सप्तम्यन्तेनैव विग्रहः। 'कर्णान्तिलम्बमानराजतताटङ्कचोचुम्ब्यमानगण्डयुगला' (२-११ पृ. ४४६) इत्यत्रापि कर्णान्तयोर्लम्बमान इत्येव विग्रहः। अयं च समासः 'शाखालम्बितवल्कलस्य न तरोः' (अभि. शा.) इत्यादि कालिदासप्रयोगवत् तम्बितादिपदैः भवत्येव।

एतेन द्वितीयनिश्वासस्थः गजदन्तिकावलम्बितेत्यादि—सुवर्णपिञ्जर-लम्बमानादि—प्रयोगाः समर्थनीयाः ।

असमर्थसमासोऽपि कुत्रचित् 'विविधयुद्धेषु विहितशिवसाहचर्य' (१-६ पृ. १६१) अत्र हि विहितेतिपदं युद्धेषु इत्यनेन सापेक्षमत स्पष्टमेवात्रासामर्थ्यम्। कुत्रचित्तु दीर्घापि रमणीया समस्तपदावली स्वस्ति श्रीदिगन्तदन्तदन्तुरितकीर्ति कौमुदीधवलितवसुधातलराजपुत्रदेशचूडामणीभूतजयपुरप्रदेशसीमन्तमण्डलीमस्तकमण्डनमण्डितपादारविन्दो जयपुराधीशः सार्वीराशि सूचयति ।'

अव्ययीभावसमासस्तु वीप्सार्थकप्रतिशब्देन सहशब्देन वा बहुषु स्थलेषु विहितः । 'प्रतिशृङ्गाटकम् प्रतिविपणि प्रतिगोपुरं प्रतिपल्लि च दोधूयन्ते (२-५ पृ. १४६) प्रतिप्ररूपम्, प्रत्यस्तमनवेलम्, प्रतिमध्याह्नं प्रतिनिशीथञ्चेत्यादिक्रमेण एकत्रैव दशाधिकपदानि प्रयुक्तानि । सह शब्देन तु सहर्षं स साधुवादं सरोमोद्गमं च (१-१ पृ.३०)' इत्यनया रीत्या प्रयोगाः । द्वन्द्वे तु इतरेतरयोगस्यैवोदाहरणानि दृश्यन्ते तत्राय दीर्घतमो द्वन्द्वः—'समीपस्थापितकुतूकुतुपकर्करीकण्डोलकटकटाहकम्बिकडम्बान्' अत्र समीपस्थापित इत्यनेन द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। (१-२ पृ. ५२) तिङन्तपदप्रयोगेष्वपि वर्तते कवेः कापि प्रौढिः । तत्रापि यङन्त यङ्लुगन्त-सन्नन्तण्यन्तपदानि कविरनेकत्र पाण्डित्यप्रदर्शनार्थमेव निक्षिपति । सनाद्यन्तेभ्यः कृदन्तरूपाणामपि अनेकत्र रुचिरः सन्निवेशः सूर्यास्तवर्णन-प्रसङ्गे उप्रत्ययान्तपदानि, यथा—

"श्रान्त इव सुषुप्सुः...... निर्विवेदयिषुः, तपश्चिकीर्षुः समुद्रजले सिस्नासुः, सन्ध्योपासनामिव विधित्सुः कन्दरेषु प्रविविक्षुः ।"

(१-२ पृ. ३५)

यङन्तप्रयोगेषु एकत्र साम्येनैव कृतः प्रयोगः 'दन्दह्यमानेनैव वर्तिष्यते चातुर्वर्ण्येन' (पृ. ३४८) अत्र दादह्यमानेनेत्येव साधुः, दह्धातोः नुमागमविधेरभावात् । ण्यन्तप्रयोगेषु क्षपयामीत्यर्थे (२-७ पृ. २३१) इण्धातोः व्यत्यापयामीति प्रयोगः। अत्रावबोधनार्थे इण्धातोः गमादेश

एव भवति, तथात्र व्यतिगमयामीत्येवोचितम्। बोधने तु प्रत्याययति। यद्यपि आप्धातोस्तथारूपं सिध्यति, किन्तु तथार्थोऽत्र नास्त्येव।

अपाणिनीयस्य सान्त्वधातो. तिङन्तरूपाणि अत्र प्रथमतया दृश्यन्ते। 'सान्त्वयामासतु.' (२-७ पृ. १३०) शत्रन्तस्य तु 'सरस्वती सान्त्वयन्' (१-१ पृ. ८) इत्यादि। अथ सान्त्वधातुः काशकृत्स्न वोपदेवादीनां धातुपाठे दृश्यते। भारतादौ सान्त्वसान्त्वनादिशब्दा. प्रसिद्धाः सन्ति। तिङन्तस्य प्रथमतयाऽत्रैव दृष्टः प्रयोग.। कर्तृवाच्ये लुङ्लुटोः प्रयोगेषु क्वे. भूयानाग्रह' (१-४ पृ. १३२) मा स्मोपपदस्य लुङ् सन्ति दशाधिकाः प्रयोगा.। 'मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित् कन्यकामपजिहीर्षुः' अत्र अडादि-बुद्ध्या आड्प्रयोगोऽपि निवारित इति प्रतीयते। अस्मिन् वाक्ये 'आगच्छेत्' इत्याशंका न तु गच्छेदिति, तथा चात्र आगमादित्येव प्रयोक्तव्यम्।

तद्धितान्तशब्दाना तु स्वल्प एव प्रयोगः। कुत्रचित् 'प्रियतद्भिन्ना विद्वास' इति वाक्य सङ्गतं भवति, विनापि प्रत्ययं समासादिना तस्यार्थस्य प्रतीते.। 'यावनत्रासेन' (१-१-७) 'अन्तरङ्गित्वगर्विण्यौ ते सख्यौ' (२-७ पृ २२६) अत्र हि यवनत्रासेन, अन्तरङ्गत्वगर्विण्यौ इत्येव पर्याप्तम्। अनेकत्र देशवाचकशब्देभ्यः तद्धितप्रत्ययानां प्रयोगोऽपि व्यर्थ एव प्रतीयते 'वङ्गेषु, कलिङ्गेषु, अङ्गेषु, मगधेषु, मत्स्येषु मैथिलेषु, काशिषु, कोशलेषु, कान्यकुब्जेषु चोलेषु, पाञ्चाल्येषु काञ्चिषु, शौरसेनेषु, सिन्धुषु, सौराष्ट्रेषु, च दोधूयन्ते' (२-५ पृ. १८७) एषु शूरसेनेषु पञ्चालेषु इत्येतादृश एव प्रयोग उचितः। काञ्चिमिथिलयोरपि नगरीत्वमेव तत्रापि बहुवचनं चिन्त्यमेव।

द्वे शते वीराणाम् (पृ. ३६६) इत्यस्मिन् वाक्ये द्विशतमित्यर्थे शतशब्दात् परो द्विवचनप्रयोगोऽनुपपन्नः, विंशत्याद्याः सदैकत्वे इत्यनुशासनात्। द्वे शते इत्युक्ते हि चतुःशतद्वयं साहसिकान्' इत्यनया संख्यया विरोधात्। पारस्यभाषायामिति तद्धितान्तप्रयोगोऽपि नवीन एव द्वितीयनिश्वासे। पारसीक इत्येव चिरन्तनप्रयोग.।

मुस्लिमनामानि कानिचित् स्थाननामानि च ध्वनिसाम्यात् संस्कृतभाषायामन्यार्थशब्दैः कल्पितानि–अवरङ्गजीव मायाजिह्व रसनारी भज्जितप्रभृतयः शब्दा अत्र निदर्शनभूताः। परिणतिरियं यद्यपि श्रवणगता रोचते, तथापि ऐतिहासिकनामसु परिवर्तनं नास्त्येव आदरार्हम्। संज्ञाशब्दास्तथैव स्वीकर्तव्याः, इत्येव समीचीनो मार्गः। स्वयमपि कविना पालङ्की (पालकी) कचौरी प्रभृतिपदानि तथैव स्वीकृतानि।

काश्चन हिन्दीभाषाया लोकोक्तयः कविना सफलरीत्या संस्कृतेऽवतारिता इति कवेरस्य भाषायामपूर्वः प्रशस्यो योगः। घृतेन स्नातु भवद्रसना (१-२-५०) दुग्धमुखीयम् (दुधमुँही इत्यस्मिन्नर्थे. २-७-२२४) इत्यादीनि उदाहरणानि। अत्रैव भाषायाः मुँहजला इत्यर्थे दग्धमुखशब्दः कदाचित्समर्थं नैवाभिदधाति।

कूष्माण्डफक्किकारया नौकया (१-२ पृ. ६) इत्यत्र फक्किका-पदार्थोऽपि चिन्त्य एव, शास्त्रपङ्क्तिषु प्रसिद्धोऽयं शब्दः कविना हिन्दीभाषायाः 'फाक' इत्यस्मिन्नर्थे प्रयुक्त.। केषाञ्चिच्छब्दानां तु संस्कृतमपि अर्थदृष्टौ असंस्कृतं भवति पन्हालादुर्गार्थे पानालयशब्दप्रयोग., सूरतयुद्धार्थे च सुरतयुद्धम्।

एवमनुमीयते अयं कविः बिहारदेशाद् वाराणस्या वा दिल्ली सम्प्राप्तः। तेनैव मार्गेण यमुनामुत्तीर्य दिल्लीनगरे प्रवेशो भवति। शिवराजस्तु यदि महाराष्ट्रदेशात् आगरानगरं दिल्ली वा गच्छेत् तर्हि यमुना तरणीया भवति। अपि च 'ब्रह्मदेशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदः' (१-२ पृ. ५८) इति वाक्यमपि नामसादृश्यादेव प्रयुज्यते। नास्ति ब्रह्मपुत्रेण ब्रह्मदेशस्य च कुत्रापि विभागः। एतादृशप्रसङ्गानधीत्य कदाचिदेवं प्रतीयते यदाधुनिकः कश्चिद् व्यासः शिवस्य काव्यं निरर्गलेन प्रवाहेण प्रस्तौति इति।

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, जयपुरम्

—❀—

शिवराजविजये धर्मस्य दर्शनस्य च सन्निवेशः

डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा

श्रीमदम्बिकादत्तव्यासप्रणीतस्य शिवराजविजयस्य काव्यप्रकारविशेषे उपन्यासेऽन्तर्भावः। प्राचीनपरम्परानुसारमत्र वस्तुनेतृरसा आधुनिकपरम्परानुसारञ्चात्र कथानककथोपकथनचरित्रचित्रणादीनि तत्त्वानि। अत्र नेता चरित्रचित्रणं वा वस्तुन एव मूर्तिमत् स्वरूपमित्येवंविधं वस्तुतत्त्वमत्र किमप्याधारभूतं तत्त्वम्। अस्यैव तत्त्वस्य यथोचितमुपन्यासेन रसनिर्वाहः। अस्मिंस्तत्त्वे इतिवृत्तविशेषे विचारमान्यतादीनामपि अनुस्यूतता। एषु विचारमान्यतादिषु धर्मस्यापि स्थितिः। आधुनिकसिद्धान्तानुसारमस्य धर्मस्य प्राधान्येन आदर्शवादे स्थितिः। परमसम्मतानुसारमस्य यथार्थवादेऽपि स्थितिः।

अस्मिन्नुपन्यासे शिववीरस्य यवननामकैः सह सततसंघर्षः प्रधानमितिवृत्तम्। अस्मिन्नितिवृत्ते अन्येषु चैतत्सम्बद्धेषु कथाप्रसंगेषु धर्मतत्त्वं सर्वत्रानुस्यूतम्। अस्य धर्मतत्त्वस्य प्राधान्यमादौ मंगलाचरणोपादानेनैव स्पष्टम्—

"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते।"

अस्यैव धर्मसम्मतस्य सिद्धान्तस्य इतिवृत्तमाध्यमेन क्रमेण पोषणं विकासश्चेति ज्ञेयम्।

धर्मगतानि यानि विविधानि तत्त्वानि तेषामत्र सविस्तरं वर्णनमवलोक्यते। आचारः प्रथमो धर्म इत्येषा प्रसिद्धा उक्तिः। अस्मिन्नेवाचारे सन्ध्योपासनादीनां नित्यकर्मणामनुष्ठानस्य वृद्धगुरुमुनिजनादीनां सेवायाः, ब्राह्मणादीनां सत्कारस्य देवानां पूजायाश्चान्तर्भावः। स्थाने स्थाने उपन्यस्तानामेतेषां ग्रन्थादावेव सम्यक् सकेत। यथा—

"अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य..." वेदा एतस्यैव वन्दिनः, गायत्री अमुमेव गायति ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य। प्रणम्य एष विश्वेषामिति उदेष्यन्त भास्वन्त प्रणमन् निजपर्णकुटीराग्निरचक्राम कश्चिद् गुरुसेवनपटुर्विप्रबटुः।"

(शि. वि. पृ., 2)

अत्रास्मद्धर्मस्याधारभूताया गायत्र्या एव प्रथममुल्लेख.। अस्याश्च विषयः सविता। अयं सविता न हि प्राकृतिकशक्तिमात्रोऽपितु साक्षाद् भगवानिति स्पष्टमुपादनम्। ब्रह्मनिष्ठा इति विशेषणोपादानेन ब्राह्मणानां पूज्यत्वं अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते इति वाक्यांशस्य सन्निवेशेन तेषां सन्ध्योपासनादिनित्यकर्मानुष्ठानम्, गुरुसेवनपटुरिति वाक्यांशस्य सन्निवेशेन च गुर्वादीनां पूज्यत्वं सूच्यते। किञ्च वेदा एतस्यैव वन्दिन इत्युपादानेन वेदानां न हि केवल धर्माधारत्वेन प्रतिपादनमपितु ईश्वरार्थपर्यवसायित्वमपि सूचितम्।

धर्मगतानि एतानि तत्त्वानि अधर्मापहारकाणीत्येतेषामुपादानौचित्यसाधनाय धर्मविरोधिनामपि तत्त्वानां ग्रन्थादौ सविस्तरं सन्निवेशः। यथा—

"अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते, "क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपात।" इत्येव श्रूयते लोक्यते च परितः।"

उपन्यासे सौवर्णीगतस्येतिवृत्तस्य यः सन्निवेशस्तत्रेदमेव प्रमुखं कारणं यत्कन्यापहरणरूपस्य अधर्मतत्त्वस्योपादानानन्तरं कन्यारक्षण-माध्यमेन धर्मस्योपादान स्यात् ।

उपन्यासे इतिवृत्तनिर्वाहाय येषां पात्राणामवतारस्तेषु केचन अधर्मस्य अपरे च धर्मस्य अवतारा इति तेषा संघर्षेण अधर्मस्योपरि धर्मस्य विजयप्रतिपादनमित्यत्र यतो धर्मस्ततो जय इति चिरविश्रुत एव सिद्धान्तः पुष्टिं प्रापित । श्रीशिववीरादयोऽत्र धर्मस्य अपजलखानादयश्चाधर्मस्यावतारा इति स्पष्टम् । श्रीशिववीरस्य चरित्रमधिकृत्य कविकृतेन निम्नलिखितेन वर्णनेनैतत् स्पष्टम् । यथा—

"यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती, यश्च सन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च सन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेशभूमिः तस्यैव महाराजशिववीरस्य आज्ञां वयं शिरसा वहामः।"

(शि. वि. पृ. 102)

एतद्वैपरीत्येन अपजलखानादीनां चरित्र वेदविरोधि देवावमानकञ्चेति तस्य धर्मविरोधित्वं स्पष्टम् । यथा—

"अथ सहासं सोऽब्रवीत् को नाम खपुष्पायितः शशशृङ्गायितः कमठीस्तन्यायितः सरीसृपश्रवणायितः भेकरसनायितो वन्ध्यापुत्रायितश्च शिवोऽस्ति? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां श्व एवैषाऽस्माभिः पाशैर्बद्ध्वा चपेटैस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते ।

(शि. वि., पृ. 191)

अत्रेदमवधेयं यत् श्रीशिववीरो न हि यवनधर्मविरोधी आसीत्, अपितु यवनशासकैर्यदनार्यमधर्म्यञ्चाचरितं तस्यैव विरोधी आसीत् । अत एव कविना स्थाने स्थाने यवनशासकानां दुराचाराणां तज्जन्याया भारतभुवो दयनीयावस्थायाश्च कारुणिकं वर्णनं विहितम् । यथा सूर्यास्तसमयवर्णनप्रसंगेन प्रोक्तम्—

"म्लेच्छगणदुराचारदुःखाक्रान्तवसुमतीवेदनामिव समुद्रशायिनि निर्विवेदयिषुर्वैदिकधर्मध्वंसदर्शनसञ्जातनिर्वेद इव गिरिगह्वरेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः—·······अन्धतमसे च जगत् पातयन् चक्षुषामगोचर एव संजातः।"

(शि. वि. पृ. 93)

अपरञ्च —

"नूतनः प्रत्नश्च को नामाद्यतनसमये वक्तव्यः श्रोतव्यश्च वृत्तान्त ऋते दुराचारात् स्वच्छन्दानामुच्छृङ्खलानामुच्छिन्नसच्छीलानां म्लेच्छहतकानाम्।"

(शि० वि० पृ. 124)

किञ्च एकत्र सन्ध्योपासनादिपरायणस्य भूसुरादिसेवकस्य आर्तार्तिहरस्य शिवस्य वर्णनेन अपरत्र च सुरापानमत्तानां कुत्सितभोजनसेविनां परपीडनपराणाम् अपजलखानादियवनशासकानां वर्णनेनैतत्स्पष्टं यदत्र कविना धर्माधर्मयोरेव मूर्तिमान् संघर्षः प्रस्तुतः।

किं बहुना, यवनशासकजन्यस्यास्याधर्मस्य प्रतिरोधाय प्रपीडितः प्रताडितश्चाखिलो धर्म एव संहत्याकारोऽत्र समुत्थित इति प्रतीयते। अस्मिन् धर्मे न हि केवलं शिववीरस्य अपितु सर्वेषां तस्य सहायकानाम्, सर्वेषां मुनीनां तपस्विनाञ्च, सर्वेषां ब्राह्मणानां क्षत्रियाणाञ्च, सर्वेषां देवालयानां पावनस्थानानाञ्चान्तर्भावः। अस्यैव पोषणाय कविना महाव्रतायमाणां सविस्तरं हृद्यञ्च वर्णनं विहितम्।

अस्मिन् धर्मवर्णने अपजलखानेन सह शिवकृतं यत् प्रतारणादिकं तदपि शठे शाठ्यं समाचरेदिति सिद्धान्तेन समर्थितं सत् हि धर्मविरोधि अपितु दलितमेवेति ज्ञेयम्।

कविकृतेऽस्मिन् धर्मवर्णने अलौकिकतात्त्वस्याप्यनेकत्र सन्निवेशः। योगिराजस्य निम्नलिखितेषु वचस्सु एतादृशी एव स्थितिः—

"भवगतम् यवनयुद्धे विजय एव। जीवति सः·······। विवाहसमये द्रक्ष्यसि।"

(शि. वि. पृ. 66)

अनेनैतत्स्पष्टं यदत्र धर्मस्य वर्णनं सविस्तरं सूक्ष्मञ्चास्तीति सिद्धान्तविशेषे तस्य पर्यवसानम्। परं काव्यस्य प्रकारविशेषे उपन्यासे एवंविधं वर्णनमुचितं न प्रतीयते। अत्रायं हेतुर्यत् काव्यस्य शास्त्राद्भेदः। धर्मश्च प्राधान्येन शास्त्रस्य विषय इति काव्ये धर्मस्य सन्निवेशौचित्येऽपि प्राधान्येन सिद्धान्ततया चोपादानमयुक्तम्। किञ्च लोकदृष्ट्या धर्मो द्विविधःयथार्थरूप आदर्शरूपश्च। अत्र यथार्थरूपस्य धर्मस्य सन्निवेशौचित्येऽपि न हि आदर्शरूपस्य प्राधान्यापादनमुचितम्।

अपरञ्च "धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च " "धर्मादिसाधनोपाय. सुकुमारक्रमोदित " इत्यादीनामुपादानेन धर्मस्य काव्यप्रयोजनता न तु काव्यस्वरूपतेति काव्ये धर्मस्य साक्षात् सिद्धान्ततया चोपादानं परिहार्यम्।

अपरञ्च काव्यप्रकारविशेषे उपन्यासे मूर्तिमता पात्रादीना योग.। धर्मश्च मूलतोऽमूर्त इति स्तोत्रशतकादिषु केषुचन काव्यप्रकारेषु धर्मतत्त्वस्य साक्षात् सन्निवेशौचित्येऽपि उपन्यासे पात्राणां चरित्रचित्रणमाध्यमेनैव तस्य सन्निवेशौचित्यम्।

अत्रैतदप्यवधेयं यदुपन्यासोऽयं घटनाप्रधानोऽस्ति। एवंविधे उपन्यासे प्रधानेतिवृत्तेन सह अन्वितिप्रदर्शनपुरस्सरमेव धर्मतत्त्वस्य सन्निवेशो विधेयो न तु स्वतन्त्रतया। आदिकविनाऽपि रामायणे धर्मतत्त्वस्य यः सन्निवेशः कृतः, स रामादिपात्राणा चरित्रचित्रणप्रसंगेन अधिकारिकेतिवृत्तनिर्वाहप्रसंगेन च न तु स्वतन्त्रया सिद्धान्ततया चेति स्पष्टम्।

अपरञ्चात्रोपन्यासे इतिवृत्तानुसारं श्रीशिववीरस्य शौर्यादिप्रदर्शनार्थमेव तत्कृतानां राष्ट्ररक्षणादीनां वर्णनम्। अनेनात्र वीररसस्यांगित्वं स्वीकृत्य राष्ट्रभक्तेरंगत्वं स्वीकार्यम्। एवं सति धर्मतत्त्वस्यानेकत्र स्वतन्त्रतया सिद्धान्ततया चोपादानेन सिद्धान्तविषयकस्तेः प्रतिपादनं नात्र संगच्छते।

अस्मिन्नुपन्यासे दर्शनतत्त्वस्यापि सन्निवेशः। तच्चादौ मंगलाचरणस्य स्वरूपेणैव स्पष्टम्। यथा।

'विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितञ्जगत् ।'

एतद्दर्शनतत्त्वं योगिराजेतिवृत्तान्तर्गतमस्ति । योगिराजस्यानेनेतिवृत्तेन कविनाऽत्र कालस्य निस्सीमता समावेशश्च प्रभविष्णुता प्रकटीकृता । यथा –

"मुने! विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः । स एव कदाचित् पय पूरपूरितान्यकूपारतलानि मरुकरोति । ……निरीक्ष्यताम् कदाचिदस्मिन्नेव भारतवर्षे यायजूकं राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत । कदाचिदिहैव वर्षवाताऽऽतपहिमसहानि तपांसि प्रतापिषत । सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्ते, मन्दिराणि मन्दुरीक्रियन्ते, सत्यः पात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते । सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधीरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि ?"

(शि. वि., पृ. 42)

काव्ये दर्शनतत्त्वस्य सन्निवेशौचित्येऽपि न हि तत्त्वमेतत् प्रधानेतिवृत्तेन सह असम्बद्धं स्यात् । कालस्य निस्सीमतासम्बन्धि एतत्तत्त्वं यस्मिन् योगिराजेतिवृत्तेऽन्तर्भूतम् तस्य शिववीरसम्बन्धिन इतिवृत्तात् पार्थक्येन स्थितिरिति, न हि अस्य तत्त्वस्य प्रधानेतिवृत्तेन सह अविच्छिन्नतया स्थितिः । प्रत्यभिज्ञादर्शनान्तर्भूतस्य शकुन्तलाप्रत्यभिज्ञानतत्त्वस्य स्थितिरभिज्ञानशाकुन्तलेऽप्यस्ति परं तत्त्वमेतन् प्रधानेतिवृत्तेऽनुस्यूतमित्यस्य तत्र कश्चन विशेषः ।

अपरञ्च योगिराजेतिवृत्तसम्बन्धि दर्शनतत्त्वं लोकातीतं कालातीतञ्च । शिववीरसम्बन्धि चेतिवृत्तं लोकगतं कालगतञ्चेत्यस्य प्रमुखत्वेऽपि कालातीतदृष्ट्या गौणताधानम् । तच्च न युक्तियुक्तम् । एतद्वैपरीत्येन बाणभट्टविरचितायां कादम्बर्यामनेकजन्मसम्बन्धिनो दर्शनतत्त्वस्य सत्यपि यथाकथञ्चन लोकबाह्यतास्पर्शित्वे न हि कालबाह्यता । किञ्च कादम्बर्यां तत्त्वमेतल्लौकिकस्यैवेतिवृत्तस्य कश्चन सहजो विस्तार इत्यस्य कश्चन विशेषः ।

अपरञ्च योगिराजसम्बन्धि दर्शनतत्त्वं शान्तरसस्य परिपोषकमिति वीररसपरिपोषकेण श्रीशिववीरसम्बन्धिना प्रधानेतिवृत्तेन सह नेदं रस-दृष्ट्या संगच्छते।

अत्रेदमप्यवधेयं यत् शिवराजजनमितिवृत्तमैतिहासिकमस्ति। ऐतिहासिकञ्चेतिवृत्तमुपन्यासकारेणऽऽत्मनोऽत्मकरणपुरस्सरं स्वयुगमत्यस्यैव प्रकाशनाय निर्वाह्यमन्यथा इतिहासादेव तत्सिद्धि स्यात्। हिन्दीभाषागतेन श्री जयशंकरप्रसादाभिधेन प्रसिद्धेन कविना चन्द्रगुप्तादिषु स्वकृतिषु एत-देवाचरितम्। न हि श्रीअम्बिकादत्तव्यासविरचिते शिवराजविजयेऽस्य दर्शनम्।

भू. पू. निदेशकः,
राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानम्
7–क–15
जवाहरनगर, जयपुर

शिवराजविजय की ऐतिहासिकता

डॉ० रूपनारायण त्रिपाठी

संस्कृत-साहित्य में सुबन्धु, बाण एवं दण्डी की परम्परा में गद्य-काव्य के उत्कर्षकों में पं० अम्बिकादत्त व्यास का नाम समादरणीय है। हिन्दी तथा संस्कृत में रचना-प्रवीण व्यास जी अच्छे चित्रकार, संगीतज्ञ, कवि और विद्वान् थे तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और बहुमुखी प्रवृत्तियों की छाप शिवराजविजय में पद-पद पर अंकित मिलती है।

महाकवि अम्बिकादत्त व्यास ने इतिहास से सूत्र लेकर संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में नवीन औपन्यासिक विधा में 'शिवराजविजय' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस रचना में इतिहास और उपन्यास इन दोनों का सुन्दर मिश्रण हुआ है। यद्यपि संस्कृत-साहित्य में प्राचीन काल से इतिहासाश्रित रचनाएं होती रही हैं, परन्तु आज वे प्रायः अनुपलब्ध हैं। काव्यादर्शकार का यह कथन 'इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्' इसका प्रमाण है। फिर भी इसका यह आशय नहीं है कि शिवराजविजय में सर्वांगतः ऐतिहासिकता है। वस्तुतः इसमें ऐतिहासिक तत्त्व इतिवृत्त के निर्वाह के साथ कवि-कल्पना के समाहार के लिए भी है। जब कवि की कल्पनानुभूति इतिहास की मर्यादा को भंग नहीं करती है–मुख्य कथानक में इतिहास का यथासम्भव निर्वाह किया जाता है, तो तब वह कलात्मक कृति ऐतिहासिक रचना मानी जाती है। ध्वन्यालोक में भी कहा गया है—

"यदितिहासादिषु कथासु रसवतीषु विविधासु सतीष्वपि यत्तत्र विभावाद्यौचित्यवत् कथाशरीरं तदेव ग्राह्यं नेतरत्।

वृत्तादपि कथाशरीरादुत्प्रेक्षिते विशेषतः प्रयत्नवता भवितव्यम्। तत्र ह्यनवधानात् स्खलत. कवेरव्युत्पत्तिसम्भावना महती भवति।"[1]

इस कथन के अनुसार ऐतिहासिक तत्वों के साथ कवि-कल्पना का उचित समावेश काव्यानन्द अर्थात् रस का अभिव्यञ्जक होता है। शिवराजविजय में यह विशेषता प्रधानतया दिखाई देती है। इसी कारण इसे ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है।

शिवराजविजय के कथानक के ऐतिहासिक स्रोत

प्रस्तुत निबन्ध में शिवराजविजय की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालने से पूर्व यह विचारणीय बिन्दु है कि क्या जिस समय इस काव्य की रचना हुई, उस समय तक मराठा साम्राज्य का इतिहास अथवा शिवाजी से सम्बन्धित इतिहास लिपिबद्ध था या नहीं ? क्योंकि 'शिवराजविजय' महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी के जीवन के कुछ अंश पर आधारित है। कोई भी रचनाकार अपने पूर्ववर्ती रचनाकार से प्रेरणा लेता है या उपलब्ध साहित्य से सामग्री या कथासूत्र ग्रहण करता है। इस विषय पर चिन्तन करने से ज्ञात होता है कि महाकवि व्यास के समय तक मराठा इतिहास से सम्बन्धित एक ही पुस्तक प्रामाणिक थी, वह थी ग्रान्ट डफ द्वारा लिखित 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टज'। साथ ही शिवाजी के जीवनवृत्त पर आधारित बंगला भाषा में दो रचनाएं—'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' और 'अंगुरीय विनिमय' प्रकाशित हो चुकी थी। इन दोनों पुस्तकों में शिवाजी से सम्बन्धित किंवदन्तियों के अनुरूप कथानक का समावेश हुआ है तथा ऐतिहासिक घटनाओं में तारतम्य नहीं है। अतः निर्विवाद कहा जा सकता है कि शिवराजविजय पर इन दोनों रचनाओं का प्रभाव नगण्य रहा है। शिवराजविजय में समाविष्ट ऐतिहासिक घटनाओं के विवेचन

1. ध्वन्यालोक- तृ० उद्योत (ज्ञानमण्डल ग्रन्थमाला) पृ० 193

से ज्ञात होता है कि व्यास जी ने ग्रान्ट डफ की पुस्तक का आश्रय लिया और तदनुसार कथानक का विन्यास किया। शिवराजविजय में मुख्य रूप से निम्नलिखित ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश हुआ है—

1. शिवाजी और अफजल खां का संघर्ष।
2. शिवाजी द्वारा शाइस्ताखां के पूनास्थित निवास पर आक्रमण करना।
3. भूषण कवि का शिवाजी के आश्रय में रहना।
4. शिवाजी द्वारा शाहजादा मुअज्जम को कैद करना तथा रोशनआरा का प्रसंग।
5. शिवाजी द्वारा सूरतनगर पर विजय।
6. शिवाजी—जयसिंह का संघर्ष और सन्धि।
7. शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में उपस्थिति।
8. शिवाजी का महाराष्ट्र लौटना और परवर्ती घटनाएं।

यहां इन बिन्दुओं के अनुसार शिवराजविजय की ऐतिहासिकता की समीक्षा इस प्रकार है—

१. शिवाजी और अफजल खां का संघर्ष—

शिवराजविजय के द्वितीय निःश्वास का कथानक इस प्रसंग पर आधारित है। बीजापुर के अधिपति के आदेश पर अफजल खां शिवाजी को पकड़ने के लिए गया। वह शिवाजी को धोखे में डालकर पकड़ना चाहता था। उसकी योजना के अनुसार दोनों की भेंट प्रतापदुर्ग के समीप एक अस्थायी शिविर में हुई। बीजापुराधिपति ने गोपीनाथ पण्डित को इस योजना के कार्यान्वयन के लिए दूत बनाकर शिवाजी के पास भेजा था। शिवाजी को यह रहस्य पहले से ही मालूम हो गया था, फिर उन्होंने गौरसिंह को नानरंग गायक के वेश में अफजल खां के शिविर में उस रहस्य की पुष्टि के लिए भेजा।

ग्रान्ट डफ के इतिहास में दूत रूप में गोपीनाथ पन्ताजी का उल्लेख मिलता है, परन्तु परवर्ती इतिहासकारों ने कृष्णाजी भास्कर को बीजापुर का दूत तथा गोपीनाथ पन्ताजी को शिवाजी का दूत बताया है। अतः इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिवराजविजय में वर्णित गोपीनाथ पण्डित-प्रसंग ग्रान्ट डफ के अनुसार है, परन्तु गौरसिंह का तानरंग गायक का वेश धारण कर अफजल खा के शिविर में जाने का प्रसंग कवि-कल्पित है। शिवाजी द्वारा अफजल खा से भेंट करते ही उसे मार डालना और उनकी छिपी हुई सेना द्वारा यवन सेना पर आक्रमण कर उनके शिविर को लूटना व भस्मसात् करना ग्रान्ट डफ के अनुसार वर्णित है तथा बीजापुर का षड्यन्त्र कवि-कल्पना से प्रसूत है।

ग्रान्ट डफ ने अफजल खां को विश्वासघात का शिकार बताया और गोपीनाथ पण्डित पर भी शिवाजी से मिल जाने का आरोप लगाया है।[1] परन्तु नवीन गवेषणाओं से यह सिद्ध हो गया है कि षड्यन्त्र रचकर पहले अफजलखा ने आक्रमण किया था।[2] तत्पश्चात् शिवाजी ने गुप्त शस्त्रों से उसे मार डाला था। इस तथ्य की पुष्टि प्राचीन ग्रन्थ 'शिवभारतम्' से भी होती है।[3] अतः प्रतीत होता है कि व्यास जी ने अपने चरितनायक का उत्कर्ष दिखाने के लिए अफजल खां पर पहले आक्रमण करने का वर्णन किया है। यह प्रसंग इस दृष्टि से कवि-कल्पना पर आश्रित है।

२. शिवाजी द्वारा शाइस्ताखां के पूनास्थित निवास पर आक्रमण करना—

शिवराजविजय के पञ्चम से सप्तम निश्वास तक शाइस्ताखां का पूना पर अधिकार, चाकनदुर्गपर आक्रमण कर उसे हस्तगत करना तथा

---

1. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज—ग्रान्ट डफ, पृ० 78–79
2. शिवाजी—सम्पादक—रघुवीरसिंह, पृ० 35
3. श्रीशिवभारतम्—अ० 21, श्लोक 33–40.

शिवाजी द्वारा उसके निवास-स्थान पर आक्रमण करने का वर्णन किया गया है। औरंगजेब ने शाइस्ताखा (शास्तिखान) को दक्षिण का सूबेदार बनाया था और वह शिवाजी के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ कर पूना को हस्तगत कर वहां लाल-महल में रहने लगा। यह महल शिवाजी से छीना गया था। एक रात में कुछ सैनिकों के साथ शिवाजी ने उस पर आक्रमण किया और उसके अनेक रक्षकों, दासों तथा उसके एक पुत्र को मार दिया। शाइस्ता खां जब भाग रहा था तो उस पर तलवार फेंकी, जिससे उसके हाथ की अंगुलियां कट गईं। तदनन्तर शिवाजी सकुशल सिंहदुर्ग पहुंच गये।

शिवराजविजय में यह घटना-वर्णन ग्रान्ट डफ के इतिहास से बहुत अधिक मिलता है। व्यास जी ने इस प्रसंग को अपनी कल्पना के साथ उपस्थित किया है। डफ के अनुसार शिवाजी ने पूनानगर की स्थिति का अवलोकन करने के लिए दो ब्राह्मणों को भेजा था, परन्तु व्यासजी ने स्वयं शिवाजी को महादेव पण्डित के वेश में तथा माल्यश्रीक को मुसलमान फकीर के वेश में वहां जाने का वर्णन किया है और बारात के माध्यम से पूना नगर में प्रवेश करना बताया है। इस क्रम में वहां महादेव पण्डित तथा यशस्विसिंह (जसवन्तसिंह राठौर) में वार्तालाप होता है। अन्य इतिहासकारों ने इस घटना को अन्य रूप में लिखा है। इसमें शाइस्ता खां का भाग जाना, शिवाजी द्वारा उसका पीछा न करना भी एक घटना है। शिवराजविजय के अनुसार शाइस्ताखा पर आक्रमण करने में शिवाजी ने जसवन्तसिंह की गुप्त रूप से सहमति ली थी, परन्तु इतिहासकारों ने इसका समर्थन नहीं किया है।[1] सम्भवतः यह कवि-कल्पना से प्रसूत है। जसवन्तसिंह को शिवाजी से सहमत बतलाने में व्यासजी का उद्देश्य हिन्दू धर्म और जातीय गौरव के उद्धार की भावना को उद्दीप्त करना रहा है।

---

1. शिवाजी—सम्पादक—रघुवीरसिंह, पृ० 47

३. भूषण कवि का शिवाजी के आश्रय में रहना—

शिवराजविजय के पञ्चम निश्वास में भूषण कवि द्वारा दिल्ली की आश्रयता का परित्याग कर शिवाजी के आश्रय में आने का वर्णन है। एकादश निश्वास मे भूषण कवि को शिवाजी के साथ दिल्ली प्रवास में स्थित बताया है। इस तरह व्यासजी ने शिवाजी और भूषण कवि को समकालीन चित्रित किया हैं, परन्तु प्रसिद्ध मराठा इतिहासकार यदुनाथ सरकार और सरदेसाई ने भूषण कवि को राजा साहू का समकालीन सिद्ध किया है[1] तथा भूषण की कविताओं को परवर्ती बतलाया है।

इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि 'शिवराजभूषण' के कुछ कवित्तों मे शिवाजी की प्रशस्ति की गई है। ये कवित्त उनके द्वारा रायगढ़ को राजधानी बनाने के बाद की स्थिति का संकेत करते हैं।[2] शिवराजभूषण ग्रन्थ की समाप्ति का समय संवत् 1730 अर्थात् 1673 ई० उल्लिखित है और शिवाजी का निधन 5 अप्रैल, 1680 को हुआ।[3] इन तथ्यों के आधार पर शिवाजी और भूषण का समकालीन होना स्वतः सिद्ध हो जाता है।

४. शिवाजी द्वारा शाहजादा मुअज्जम को कैद करना तथा रोशनआरा का प्रसंग—

शिवराजविजय के अष्टम तथा नवम निश्वास में औरंगजेब के पुत्र शाहजादा मुअज्जम (मायाजिह्म) का प्रसंग समाविष्ट है। सर्वप्रथम सारथ्थीक शिवाजी को मुअज्जम के ससैन्य आगमन की सूचना देता है। तब चतुर कूटनीति के साथ शिवाजी द्वारा उसे कैद कर लिया जाता है।[4]

---

1. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स—यदुनाथ सरकार, पृ० 378
2. न्यू हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज—सरदेसाई, पृ० 268
3. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज—ग्रन्ट डफ, पृ० 131
4. शिवराजविजय, पृ० 211

नवम निश्वास में शिवाजी की कैद में स्थित मुअज्जम तथा उसकी बहिन रोशनआरा (रसनारी) का वार्तालाप होता है। यह प्रसंग ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में सत्य सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि इतिहास के अनुसार शाहजादा मुअज्जम ने सन् 1664 ई० में शाइस्ता खां का स्थान ग्रहण किया था,[1] परन्तु उसे शिवाजी ने कैद नहीं किया था। इसी प्रकार औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा का प्रसंग भी ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में असत्य ही है। शिवराजविजय में व्यासजी ने ये प्रसंग सम्भवतः इसलिए समाविष्ट किये ताकि चरितनायक के शौर्य, औदार्य और प्रतिष्ठा की वृद्धि हो सके तथा कथानक में रोचकता आवे। अष्टम निश्वास में रसनारी द्वारा शिवाजी के प्रति अनुराग दर्शाना तथा शिवाजी द्वारा उसे अस्वीकार करने का जो वर्णन हुआ है, वह भी नायक की उदात्तता व्यक्त करने के लिए चित्रित किया गया है।

५. शिवाजी द्वारा सूरत नगर पर विजय

शिवराजविजय के अष्टम निश्वास में शिवाजी के सेनापति द्वारा सूरतनगर पर विजय प्राप्त करने का सकेतात्मक वर्णन है, परन्तु यह प्रसंग इतिहास के अनुरूप नहीं है, क्योंकि यदुनाथ सरकार के अनुसार सूरत नगर पर स्वयं शिवाजी ने सन् 1664 ई० में आक्रमण किया था, न कि उनके सेनापति धीरेन्द्रसिंह अर्थात् विजयध्वज ने।[2] शिवाजी ने पुनः सूरत पर आक्रमण करके खूब लूट-पाट मचायी थी, ऐसा सभी इतिहासकार प्रमाणित करते हैं।[3] व्यासजी ने इस ऐतिहासिक तथ्य में परिवर्तन किया है। सम्भवतः व्यासजी ने शिवाजी की तरह उनके सेनापति आदि की वीरता एवं दक्षता बतलाने के लिए ऐसा वर्णन किया है।

---

1. शिवाजी—सम्पादक रघुवीरसिंह, पृ० 90
2. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स—यदुनाथ सरकार, पृ. 91
3. शिवाजी—सम्पादक रघुवीरसिंह, पृ. 86

६. शिवाजी–जयसिंह का संघर्ष तथा सन्धि

शिवराजविजय के नवम निश्वास में महाराज जयसिंह के आगमन का वर्णन है। मन्दिर पुरोहित देवशर्मा शिवाजी को सलाह देता है कि हिन्दू राजा जयसिंह से युद्ध न करें, क्योंकि इसमें पराजय मिलेगी। तब शिवाजी ने माल्यश्रीक, भूषण कवि और वृद्ध पुरोहित को महाराज जयसिंह के पास भेजा। इन्होंने आकर सूचना दी कि जयसिंह उसी अवस्था में सन्धि के लिए तैयार है जबकि शिवाजी मुगलों से अपहृत दुर्गों का अधिकार छोड़ दें और कर देना स्वीकार करें। तब शिवाजी एकाकी जयसिंह से मिले तथा उनका स्वागत किया और दोनों में सन्धि हुई। उस सन्धि में ये शर्तें थीं—

1. शिवाजी औरंगजेब की कर प्रदता स्वीकार करें।
2. मुगलों से छीने गये सारे किले वापिस करें।
3. बीजापुर के साथ युद्ध में मुगलों की सहायता करें।
4. रोशनआरा को खोजकर मुगलों के सुपुर्द करें।
5. शाहजादा मुअज्जम को खोजकर मुगलों को सुपुर्द करें।

शिवराजविजय में वर्णित उक्त पांच शर्तों में से अन्तिम दो शर्तें कवि-कल्पना से प्रसूत हैं, क्योंकि ये दोनों शर्तें इतिहास से मेल नहीं खाती हैं। शिवाजी और जयसिंह की सन्धि वाली घटना को व्यासजी ने इस तरह उपस्थित किया है कि इससे ऐतिहासिक सत्य की भी रक्षा हो सकी है तथा कथानायक की अप्रतिष्ठा भी नहीं हुई है।

अन्त में महाराज जयसिंह द्वारा विश्वास दिलाये जाने पर शिवाजी ने औरंगजेब से मिलने के लिए प्रस्थान किया। शिवराजविजय के दशम निश्वास में इस घटना का वर्णन ऐतिहासिकता के अनुरूप हुआ है।

७. शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में उपस्थिति

(क) शिवराजविजय के दशम निश्वास के अनुसार मिर्जाराजा जयसिंह के वचनों से आश्वस्त होकर शिवाजी ने पांच सौ घुड़सवारों और

एक हजार पदातियो के साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।[1] दिल्ली के वाह्य–क्षेत्र में पहुंचने पर राजकुमार रार्मासह ने उनकी अगवानी की और दरबार मे ले जाकर उनकी बादशाह मे भेंट करवायी। परन्तु यदुनाथ सरकार तथा अन्य इतिहासकार शिवाजी का मुगल–दरबार में उपस्थित होने हेतु दिल्ली जाने की वजाय आगरा जाना लिखते हैं।[2] क्योंकि शाहजहां के कैद मे जीवित रहने तक औरंगजेब दिल्ली में ही रहता था, परन्तु 22 जनवरी 1666 ई० को शाहजहा की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने आगरा मे आकर धूमधाम से अपना अभिषेकोत्सव मनाया। 13 मई, 1666 ई० को ही उसका 50वां जन्मदिन का उत्सव था, जिसमे शिवाजी को उपस्थित होना था।

इस तरह शिवाजी की दिल्ली यात्रा ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध नहीं होती है। मुगल-दरबार में अपमानित होने से शिवाजी ने क्रोध व्यक्त किया। औरंगजेब ने उन्हें अपने आवास में कैद कर लिया। तत्पश्चात् शिवाजी ने अपने सैनिकों को वापिस भेज दिया और कुछ विश्वस्त लोगों को अपने साथ रखा। शिवराजविजय में व्यासजी ने इस ऐतिहासिक घटना का आंशिक समावेश किया है। इतिहासकार बतलाते हैं कि शिवाजी के साथ उनका पुत्र सम्भाजी (शम्भूजी) तथा सौतेला भाई हीराजी फर्जन्द भी था। शिवराजविजय मे इनका समावेश नही हुआ है।

(ख) शिवराजविजय के अनुसार शिवाजी के साथ महाराज जयसिंह के सौ अश्वारोही भी दिल्ली तक गये। शिवाजी द्वारा यमुना के तट पर शिविर स्थापित कर लेने पर उन्होंने नदी पार करके औरंगजेब को सूचना दी तथा दूसरे दिन राजकुमार रार्मासह शिवाजी से मिले। इस घटना का भी इतिहासकार समर्थन नहीं करते है। यदुनाथ सरकार के

1. शिवराजविजय–दशम निश्वास व हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज–ग्रान्ड डफ पृ. 95
2. शिवाजी-सम्पादक रघुवीरसिंह, पृ. 70

अनुसार रामसिंह शिवाजी से उनके शिविर मे नहीं, अपितु आगरा के मध्य नूरगज उद्यान में उनसे मिला। उससे एक दिन पूर्व उनका पड़ाव आगरा के समीपस्थ गांव सराय-मलूकचन्द मे था।[1]

(ग) शिवराजविजय के अनुसार शिवाजी वसन्त के आरम्भ मे संवत् 1666 को दिल्ली पहुचे थे, परन्तु यह घटना इतिहासविरुद्ध वर्णित है। क्योंकि चाद तिथि के अनुसार औरंगजेब का ५0वा जन्म दिन 13 मई, 1666 को पड़ता था और उसी अवसर पर आयोजित उत्सव में शिवाजी को सम्मिलित होना था। इस प्रकार व्यासजी द्वारा संवत् 1666 लिखना गलत है, क्योंकि यह घटना विक्रमी संवत् को न होकर ईस्वी सन् की है।

(घ) शिवराजविजय में शिवाजी के कैद में रहने की अवधि का उल्लेख नही है। शिवाजी ने बादशाह से दक्षिण जाने की अनुमति मांगी, परन्तु नही मिली। तत्पश्चात् उन्होने बादशाह की अनुमति लेकर सभी सैनिकों को वापिस भेज दिया और अपने रुग्ण होने की अफवाह फैलादी। इसके बाद प्रतिदिन शहर से बाहर फकीरों को मिठाईयां बंटवानी प्रारम्भ कर दी और एक दिन स्वयं मिठाई के टोकरे में बैठकर निकल गये। शिवराजविजय में इन सभी घटनाओं का वर्णन इतिहास के अनुसार किया गया है।

(ङ) शिवराजविजय के अनुसार शिवाजी अपने साथियों माल्यश्रीक, गौरसिंह व राघवाचार्य के साथ संन्यासी के वेश में घोड़े पर सवार होकर मथुरा गये। वहां पहले से ही भेजे गये भूषण कवि मौजूद थे। परन्तु इतिहासकारों ने इस तरह का विवरण नहीं दिया है। यदुनाथ सरकार तथा सरदेसाई ने शिवाजी का आगरा से अपने पुत्र

1. शिवाजी (यदुनाथ सरकार का अनुवाद) सम्पादक रघुवीरसिंह, पृ. 78

के साथ पलायन कर मथुरा में किसी ब्राह्मण के घर आश्रय लेना बताया है।[1]

(च) इतिहास के अनुसार शिवाजी के कैद वाले भवन से निकलते समय उनका सौतेला भाई हीराजी फर्जन्द उनका सोने का कड़ा पहनकर उनकी चारपाई पर लेटा रहा। उसने सारे शरीर को चादर से ढक रखा था, उसका केवल कड़ा वाला हाथ बाहर था, जिसे खिड़की से देखकर पहरेदारों को यकीन हो जाता था कि शिवाजी अन्दर ही हैं।[2] वह एक दिन बाद वहां से गया था। शिवराजविजय में व्यासजी ने इस घटना का समावेश नहीं किया है।

८. शिवाजी का महाराष्ट्र लौटना और परवर्ती घटनाएँ—

(क) शिवराजविजय के एकादश-द्वादश निश्वास में शिवाजी का दिल्ली से महाराष्ट्र लौटने का वर्णन हुआ है। इसमें शिवाजी को सर्वप्रथम प्रतापदुर्ग में पहुंचना बतलाया गया है, जबकि इतिहास में शिवाजी को गुप्त वेश में सर्वप्रथम रायगड पहुंच कर प्रकट होना बताया गया है। इस आधार पर शिवराजविजय का यह प्रसंग इतिहास-विरुद्ध है।

(ग) शिवराजविजय के अनुसार शिवाजी ने अपने राज्य में पहुंचकर शीघ्र ही मुगलों को दिये गये सभी तेईस किले पुनः जीत लिए, परन्तु इस घटना की पुष्टि कुछ ही इतिहासकार करते हैं। यदुनाथ सरकार तथा सरदेसाई का मत है कि दक्षिण लौटने के बाद शिवाजी ने सर्वप्रथम अपने राज्य को संगठित किया और पुरन्दर की सन्धि का पालन करते हुए तीन वर्ष तक शान्त रहे।[3] तत्पश्चात् उन्होंने

1. शिवाजी सम्पादक रघुवीरसिंह, पृ. 70
2. „ „ „ पृ. 76
3. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स-यदुनाथ सरकार, पृ. 178-179

औरंगजेब की नीतियो का विरोध करते हुए मुगलों को दिए गए सभी किले जीत लिये।[1]

(ग) शिवराजविजय में महाराज जयसिंह को बीजापुर-युद्ध में औरंगजेब द्वारा सैनिक सहायता न भेजने का उल्लेख हुआ है तथा इस कारण महाराज जयसिंह की दर्दनाक मृत्यु का चित्रण किया गया है। परन्तु यह प्रसंग इतिहास से प्रमाणित नही होता है। क्योंकि इतिहास के अनुसार महाराज जयसिंह बीजापुर को नही जीत सके। तब बादशाह ने उनके स्थान पर शाहजादा मुअज्जम को सूबेदार बनाकर भेजा और महाराज जयसिंह को आगरा लौट आने का आदेश दिया। इसी यात्रा में बुरहानपुर नामक स्थान पर 62 वर्षीय महाराज जयसिंह का निधन हुआ।[2]

(घ) मेवाड़ राजपरिवार से सम्बन्धित व्यक्ति खड्गसिंह के पुत्र गौरसिंह, श्यामसिंह, पुत्री सौवर्णी, पुरोहित तथा आमेर राजपरिवार से सम्बन्धित वीरेन्द्रसिंह, उसका पुत्र रामसिंह या रघुवीरसिंह या राघवाचार्य और पुरोहित गणेश शास्त्री आदि पात्रों से सम्बन्धित घटनाएं ऐतिहासिक लगती अवश्य हैं और व्यासजी ने इनका बड़ी कुशलता से समावेश किया है, परन्तु इतिहास में इनका उल्लेख नहीं मिलता है। केवल राघवमिश्र नामक व्यक्ति का इतिहास में उल्लेख मिलता है जो कि आगरा कैद से पलायन करते समय शिवाजी के साथ था।[3]

(ङ) अष्टम निश्वास में रोशनआरा का शिवाजी से अनुराग रखनेका वर्णन है। पुनः एकादश निश्वास में रोशनआरा की सहेली

1. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज—ग्रान्ट डफ, पृ. 97
2. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज—ग्रान्ट डफ, शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स—यदुनाथ सरकार, पृ. 178-179; न्यू हिस्ट्री आफ दी मराहठाज—सरदेसाई, पृ. 192
3. शिवाजी—सम्पादक रघुवीरसिंह, पृ. 76

कैद में अवस्थित शिवाजी से उसका प्रणय-निवेदन करने आयी। इस तरह शिवराजविजय में वर्णित यह घटना इतिहास से प्रमाणित नहीं है। काव्य में रोचकता, नायक के चरित्र में उदात्तता तथा संयमशीलता आदि का समावेश करने के लिए सम्भवतः इस प्रसंग का समावेश किया गया है। यह भी सम्भव है कि व्यासजी के काल में उन्हें ऐसी कोई किंवदन्ती सुनने को मिली हो, जिससे उन्होंने ऐसा वर्णन किया हो।

इस विवेचन के अनुसार पं. अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय में ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश अपनी अभिरुचि के अनुरूप किया है। इसमें उन्होंने यह अवश्य ध्यान रखा है कि यथासम्भव ऐतिहासिक सत्य की रक्षा हो। उन्होंने ऐतिहासिक तत्त्वों और काव्य-कला का समन्वय कर राष्ट्रीय और जातीय गौरव की भावनाओं को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया है तथा साथ ही अपने युग की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर प्रेरणादायी सन्देश दिया है। यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि शिवराजविजय ऐतिहासिक उपन्यास है और इसमें ऐतिहासिकता का कलात्मक निर्वाह हुआ है।

– ० –

"अभिनवबाणो" व्यासः

डॉ० जगन्नारायणपाण्डेयः

सुविदितमेवैतत् संस्कृतसाहित्यपाथोनिधिकृतावगाहनानां विद्वद्वरेण्यानां यत् निखिलभुवनमण्डलमण्डनायमानमिदं भारतं पुरा स्वजन्मना सुचिरम् अलमकार्षुः नैके रससिद्धाः कवीश्वराः। तत्रास्माकं संस्कृतगद्यसाहित्यं तावद् येषां मनीषिमूर्धन्यानां तपःप्रसादाद् अष्टमशताब्द्याः पूर्वमेव सर्वत्र परमां प्रतिष्ठामवाप, तेषु महनीयकीर्तयस्त्रयो महामतयो मुख्यतमाः—सुकविबन्धुः सुबन्धुः, कविताकामिनीपञ्चबाणो बाणः, कविवरो दण्डी च। एतैः प्राचीनकालात् प्रचलितां पद्यकाव्यप्रणयनसरणिं विहाय सुधानिस्यन्दीनि मधुरमधुराणि ललितपदालङ्कृतानि गद्यकाव्यानि निर्माय तदपूर्वानन्देन सहृदयहृदये विस्मयकारि परिवर्तनमकारि।

तत्र सुबन्धुना श्लेषप्रधानं वासवदत्ताख्यं गद्यकाव्यं रचितम्। बाणभट्टस्य हर्षचरितमेकमैतिहासिकं काव्यम्, कादम्बरी च कल्पनामात्रप्रसूता सरसकथा। दण्डिना कोमलकान्तपदविन्यासपूरितं रचितं दशकुमारचरितम्। एतेषां त्रयाणामपि कविमूर्धन्यानां रचनानां पर्यालोचनेन प्रतीयते यत् तदानीं सरलवर्णनेऽपि क्लिष्टभाषायां प्रसह्य विविधालङ्काराणां सन्निवेशेन पाण्डित्यप्रदर्शनमेव कवीनां प्रमुखमुद्देश्यमवर्तत। तादृक्पाण्डित्यशून्यस्य काव्यस्य विद्वन्मण्डले नासीत् किञ्चिदपि प्रतिष्ठा। अत एव सुबन्धुना प्रसह्य प्रत्यक्षरं श्लेषप्रयोगे दण्डिना च कोमलपदविन्यासे पाण्डित्यं प्रदर्शितम्। विलक्षणविचक्षणेन बाणेन यथावसरं सुललितपदावल्या

सह प्राय. रसानुकूलम् श्लेषयमकोपमाद्यलङ्काराणामपि प्रयोगो विहितः। बाणभट्टस्य कादम्बरी न केवलं तस्य रचनास्वेव, प्रत्युत निखिलेऽपि संस्कृत-गद्यसाहित्ये सर्वोत्कृष्टा रचना।

अथ बहुकालं यावत् तिमिरनिकराच्छन्ने संस्कृतगद्यसाहित्यगगने चन्द्रायमाणेन ऊनविंशतमशताब्द्या उत्तरार्द्धे समुद्भवेन, शताव्धानेन, भारतरत्नेन येन राजस्थानभूमातुस्तनयेन नूतनः प्रतिभाप्रकाश आविर्भावित: यश्च व्यास इव पुराणकल्पानि विविधविषयपूर्णानि ग्रन्थरत्नानि विरचय्य न केवलं नाम्नैव प्रत्युत अर्थतोऽपि स्वकीयं व्यासत्वं प्रमाणयामास। स आसीत् विहारभूषण-भारतभूषणाद्यनेकोपाधिविभूषितो गद्यसम्राट् महाकविः श्रीमदम्बिकादत्तव्यासः (1858 ई.) अष्टपञ्चाशदधिकाष्टादशशततमे ईसवीयवर्षे (अष्टपञ्चाशदधिकाष्टादशशततमे खृष्टाब्दे) पाटलकुसुममनोहरे जयपुरे लब्धजन्मा विलक्षणविचक्षणो व्यासः कर्मभूमित्वेन विहारप्रदेशं काशीं च वरयांचक्रे। अनेन संस्कृते हिन्दीभाषायां चाहत्य अशीतिकल्पाः ग्रन्था विरचिताः, परं तेषु 50 (पञ्चाशत्) ग्रन्था एव प्रकाशिता वर्तन्ते। वस्तुतस्ते सर्वेऽपि सर्वत्र नोपलभ्यन्ते। दुर्भाग्याद् द्विचत्वारिंशद्वर्षाणाम् अल्पायुष्येव दिवंगतेनापि व्यासमहानुभावेन यावद् विपुलमुत्कृष्टं च साहित्यं विरचितं, तावन् मन्ये कश्चिदन्यः शतायुर्भूत्वाऽपि निर्मातुं समर्थो न भवेत्। व्यासस्य साहित्यं संख्यायामेव न विपुलतरमपितु भावाभिनवविषयादिदृष्ट्याऽपि नितरां प्रशंसनीयमस्ति।

व्यासस्य महनीयसाहित्यसम्पत्तौ नितान्तं कमनीयं सुप्रसिद्धं गद्यकाव्यमस्ति शिवराजविजयाभिधानम्। 'शिवराजविजयस्तावत् कश्चिदैतिहासिक उपन्यासः।' अस्य कथावस्तु विरामत्रये विभक्तमस्ति। प्रतिविरामं चत्वारो निश्वासाः। अस्मादाहत्य द्वादशनिश्वासाः समुल्लसन्ति। नायकः शिवराजो यवनानामत्याचारादतीव खिन्नो भूत्वा मातृभूमेः स्वाधीनतायै संघर्षमारभते। असौ गौरसिंहरघुवीरसिंहादिभिः सह सोत्साहं बलेन प्रतिभया कूटनीत्या च युद्धं कुर्वन् अन्ते स्वकार्यसम्पादने

सफलतामाप्नोति। उपन्यासोऽयं सुखान्तो वर्गेवर्ति, यस्य परिसमाप्ति-र्नायकशिवराजस्य महाराष्ट्रविजयेन भवति।

यद्यपि काव्यशास्त्रीयग्रन्थेषु उपन्यासशब्दस्य प्रयोगः भिन्नेऽर्थे दृश्यते। भरतमुनिना[1] प्रतिमुखसन्धेरङ्गेषु उपन्यासोऽपि गणितः। विश्वनाथेन भाणिकाया अङ्गेषूपन्यासमपि गणयता कथितम्–'उपन्यासः[2] प्रसङ्गेन भवेत् कार्यस्य कीर्तनम्।' अमरसिंहेनापि 'उपन्यासस्तु[3] वाङ्मुखम्' इत्युक्तम्। परमेतदनुसारमुपन्यासः काव्यत्वेन स्वीकर्तुं न शक्यते। अत एव व्यासेन स्वगद्यकाव्यमीमांसायामुपन्यासविषये निरूपितम्—

"गद्यैर्विद्योतितं यस्माद् गद्यकाव्यं तदीरितम्।
प्रन्यरूपं तदेवात्र श्रव्यं किञ्चिन्निरूप्यते।।
उपन्यासपदेनापि तदेव परिकथ्यते।
यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजजयो मम।।"[4]

अथ तेनोक्तं यदुपन्यासे मञ्जुलं चरितं ग्राह्यम्, संवादादौ स्वाभाविकता रक्षणीया। दूरान्वयसमन्वितं शब्दजालप्रधानं वर्णनं त्याज्यम्। आङ्ग्लभाषाया गृहीता या उपन्यासपद्धतिः वङ्गहिन्दीसाहित्ये प्रचारमव-

---

1. नाट्यशास्त्रम् 19/35
2. साहित्यदर्पण: 6/310
3. अमरकोष: 1/6/9
4. गद्यकाव्यमीमांसा-कारिका संख्या 4–5।
5. चरितं मञ्जुलं ग्राह्यं तथानल्पैश्च कल्पनैः।
कर्तव्यं मञ्जुलतरं वक्तव्यं कोमलाक्षरैः।।
वर्णनं देशकालादेः स्वभावस्य प्रधानतः।
परस्परमथालापे स्वभावोक्तिः प्रशस्यते।।
शब्दजालप्रधानं यत् दूरान्वयसमन्वितम्।
अस्थगतवर्णनं वापि स्वभावोक्ति-विवर्जितम्।।

गद्यकाव्यमी० कारिका सं० 14, 15, 17

लोकय मन्ये व्यासेन संस्कृते शिवराजविजयाख्य उपन्यासो लिखितः। अस्य कथावस्तु ग्राण्टडफ लिखितात् 'मराठा' इतिहास-नामकग्रन्थाद् गृहीतम्। शिल्पविधाने च 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात'– 'अङ्गुरीयविनिमयाख्यो' वङ्गीयोपन्यासयोः प्रभावो दृश्यते। व्यासेनास्य निर्माणस्योद्देश्यमेवमुक्तम्-संस्कृते उपन्यासलेखनपरम्पराया आरम्भः, सनातनधर्मरक्षकस्य शिवराजस्य चरित्रचित्रणम्, यवनात्याचारेभ्यः भारतीयानां तत्संस्कृतेः मातृभूमेश्च रक्षार्थं प्रेरणाप्रदानम् तथा मद्यः परनिर्वृतिः। मुकविरयमेतत्सम्पादने कियत्साफल्यमवापेति समासेन विचार्यते।

रसयोजना—

अस्मिन्नुपन्यासे वीररसोऽङ्गी। अन्ये रसास्तदङ्गतया कविना यथावसरं वर्णिताः। दयावीरो दानवीरो धर्मवीरः युद्धवीरश्च नायकः शिवराजोऽत्र भूयो भूयश्चित्रितो वर्तते।

गौरसिंहयवनहन्तकयोर्मध्ये प्रचलितस्य युद्धस्य वर्णनेऽपि वीररसः सम्यक् पुष्टिमश्नुते।[1]

सौवर्णीरघुवीरसिंहयोः रसनारीशिवराजयोश्च प्रेमनिरूपणे शृंगारस्य द्वयोरपि भेदयो. मुकविना मनोहारि चित्रणमुपस्थापितम्। महाराष्ट्र-गमनविषये दिल्लीश्वरस्य अनुमतिमनवाप्य दिल्लीकारागारे निरुद्धस्य कुपितस्य शिववीरस्य वर्णने रौद्ररसोऽनुभूयते। यथा —

"अथ[2] महाराष्ट्रराजो दृष्ट्वैतत लोहितवदनः कोपस्फुरदधरो ज्वलयमानमनयनो जिघत्सन्निव ब्रह्माण्डमण्डलम्, भ्रूभेदाकुञ्चनेन स्फोटयन्निव गगनतलम्, स्तम्भजीव माल्यश्रीकं चावादीत्–पश्य-पश्य"...... महाराष्ट्रा अस्मानपि चातुरीं शिक्षयन्ति।"

चिकित्सकरूपेण प्रिच्छिन्नं कृत्रिमलम्बकूर्चं समागतं बाल्यमित्रं मुरेश्वरम् अवसाने विगतकूर्चं विधाय यदा शिववीरेण सह सर्वेऽपि माल्य-

1. शिवराजविजयः प्रथम नि., पृ. सं. 44
2. शिवराजविजयः द्वितीयः निश्वासः प -

श्रोत्रादयः प्रसह्य नखिलखिलायन्ते हसन्ति तदा नुतरां तत्र हास्यरसस्य परिपाको भवति।[1]

प्रथमनिश्वासे गौरसिंहेन मारितस्य यवनहतकस्य वर्णने वीभत्सरसानुकूला सामग्री समुपलभ्यते। यथा—

"..... गाढरुधिरदिग्धायां[2] ज्वलदंगारचितायां चितायामिव वसुधायां शयानं ... शोणितसङ्घातव्याजेनान्तः स्थितरजोराशिमिवोद्गिरन्तं ..... छिन्नकन्धरं यवनहतकम् ..... ।"

अपि च यवनवर्णने[3]

"चिरन्तनावगाहनोद्भूतमहामलावलिमलीमसैः मद्यस्वेदनिष्ठ्यूतकर्णकिट्टसिङ्घाणदूषिकादिविविधमललिप्तचिराक्षालितमलिनवसनैः ।"

इत्यत्र वीभत्सस्य साम्राज्यमस्ति।

प्रथमनिश्वास एव यवनेनापहृतायाः पुनश्च भल्लूकभिया तेन परित्यक्तायाः कन्यकायाः सौवर्ण्याः वर्णने भयानकरसोऽनुभूयते—

'... सवेगमत्युष्णं दीर्घं निःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अंके निधाय समानीता।"[4]

अनेनैव प्रकारेण अस्मिन् काव्ये यथावसरं वीररसस्यांगत्वेन शान्ताद्भुतकरुणरसानामपि समावेशो द्रष्टुं शक्यते।

गुणा :—

यद्यप्यत्र यथावसरं यथोचितं त्रयाणामपि गुणानां सन्निवेशो दृश्यते, किन्तु तेषु प्रसादस्य [5] प्रधानता वरीवर्ति। अत्र प्रायः क्वचिदपि

---

1. शिवराजविजयः द्वितीय निश्वासः पृ. सं. 235
2. शिवराजविजयः द्वितीय निश्वासः पृ. सं. 45-46
3. शिवराजविजयः द्वितीय निश्वासः पृ. सं. 53
4. शिवराजविजयः प्रथम नि. पृ. सं. 16
2. तदाकर्ण्य चन्द्रमुखी विमृज्य मुखं प्रोञ्छ्य कष्टं रुन्धती बाष्पान् कथमपि संरुध्य इन्दीवरयोरुपरि भ्रमतो भ्रमरानिव लोचनयोरंचितान् कुंचितकचितान् मेचकान् कचान् अपसार्य..... ..... गौरसिंहो वक्तुमारभत।

शिवराजविजयः तृ. नि. पृ. सं. 127

पदैः स्फुटता न परित्यक्ता, यथासम्भवमर्थगौरवमपि स्वीकृतम्। कविना सर्वत्र वाचा पृथगर्थता प्रतिपादिता। सर्वत्र पदानि विवक्षितार्थप्रकाशने समर्थानि विलोक्यन्ते। इत्थं भारविमतेऽप्यस्योपन्यासस्य सुकाव्यत्वं संसिद्धम्।[1] व्यासो विविधभावानां चित्रणेऽपि निपुणतरः। पूर्वपरिचिता कन्यका तद्भ्रातरौ गौरसिंहश्यामसिंहौ चोपेत्य वृद्धदेवशर्मणो हृदि य आनन्द-प्रवाहः प्रचलितस्तस्य वर्णनं स्मरणीयम् -

"अथ कथमपि रिंगत्तरंगतिमिंगिलपरिखर्वप्रसंगसंगभंगतरंगरंग-प्रांगणसोदरीभूतं हृदयं वशीकृत्य ...... पुरोहितेः।[2]"

चरित्रचित्रणम् - घटनाप्रधानोऽपि चरित्रप्रधानोऽयमुपन्यासः। पात्राणां चरित्रचित्रणे व्यासेन पदे-पदे नैसर्गिकता प्रदर्शिता। ऐतिहासिक-पात्रेष्वपि तेन यथावसरमोजः संवर्धितम्। अस्मिन्नुपन्यासे द्विविधानि पात्राणि नयनपथमायान्ति ऐतिहासिकानि काल्पनिकानि चेति। तत्र एतिहासिकपात्रेषु महाराष्ट्रकेसरी शिववीरः माल्यश्रीकः, जयसिंहः, अवरंगजीवः, रमनारी, मायाजिह्वप्रभृतीनि। गौरसिंहः, रघुवीरसिंहः, चन्द्रखानः, रहीमत्तखानः इत्यादीनि च काल्पनिकपात्राणि सन्ति। नायकः शिववीरः कवेर्दृष्ट्या शिव इव धृतावतारः वर्तते यस्य आदर्शवाक्यं विजृम्भते "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" इति महाराष्ट्ररत्नं वर्णयन् कविः कथयति।[3]

"महाराष्ट्रदेशरत्नं यवनशोणितपिपासाकुलकृपाणः, वीरतासीम-न्तिनीसीमन्तसुन्दरसान्द्रसिन्दूरदानदेदीप्यमानदोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महा-राष्ट्राणाम्, भूषणं भटानाम्, निधिर्नीतीनाम्, कुलभवनं कौशलानाम् पारावारः परमोत्साहानाम् ...... इति।"

---

1. स्फुटता न पदैराकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
   रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥
   किरातार्जुनीयम् 2/27
2. शिवराजविजयः तृतीयनिःश्वासः पृ. सं. 125
3. शिवराजविजयः, प्रथमनिःश्वासः पृ. सं. 33

शिववीरो विप्राणां विदुषां नारीणां च विषये नितरां विनीतः दानशीलः प्रजावत्सलः प्रियंवदश्च। बुद्धेस्तीक्ष्णतया चरित्रस्य निर्मलतया मनसश्च दृढतया असावसाधारणमपि कार्यं हेलयैव सम्पादयति। बलवति साहसावतारे तस्मिन् धीरोदात्तनायकस्य सर्वेऽपि गुणाः समुल्लसन्ति। विविधयोजनानां चिन्तने तदनुसारेण कार्यसम्पादने च निपुणतरोऽसौ कविना हिन्दूराष्ट्रनिर्मातृत्वेन वर्णितो वर्तते। अस्मिन् कार्ये सुकविरयं पूर्णतया साफल्यमप्यवाप।

रघुवीरसिंहगौरसिंहश्यामसिंह वीरेन्द्रसिंहाः शिवराजस्य सहायकाः। अस्मादेव तेषु देशधर्मप्रेम्णः, पराक्रमस्य स्वाभिमानस्य च भावनाया बाहुल्यमवलोक्यते। कुलीना वीराश्चेमे राजपुत्राः हृदयेन सततं स्वामिभक्ताः सन्ति। ब्रह्मचारिगुरोः वीरेन्द्रसिंहस्य चरित्रमपि वैशिष्ट्यमवगाहते। अयं यवनानामत्याचारेभ्यो देशस्य मुक्तये मनसा, वाचा, कर्मणा च तत्परोऽन्ते बहुकालानन्तरं सौभाग्येन स्वतनयं प्राप्य कमपि विलक्षणमानन्दमनुभवति।

स्त्रीपात्रेषु रसनारी तत्सखी, सौवर्णी तस्याः सख्यश्च प्रामुख्यं भजन्ति। रसनारी हि दिल्लीश्वरस्य अवरंगजीवस्य तनया, यामपहृत्य गौरसिंहः स्वामिनः सम्मुखमानयति। रसनारी शिवराजं प्रत्यतिशयेनानुरक्ता। अत एव विरहोत्कण्ठितायाः खण्डितायाश्च नायिकायाः स्थानं गृह्णाति। सा खलु विमलप्रणयमूर्तिरतः प्रियतममनवाप्य अन्ते आत्महननेन संसारं जहाति। सौवर्णी तु काचिद् आदर्शमयी भारतीयललना रघुवीरसिंहस्य च प्रेयसी। कविना तस्याश्चित्रणं कुर्वता प्रमाणितं यदियं प्रणयिनी, पतिपरायणा, लज्जासहिष्णुतयोः काचिदपूर्वा मूर्तिः। अन्ते सैव रघुवीरसिंहेन सह परिणयानन्तरं नववधूरूपेण दृश्यते।

संवादसौष्ठवम् :—

शिवराजविजयस्य पात्राणां संवादेषु स्वाभाविकतायाः सरलतायाः हृदयहारितायाश्च दर्शनं भवति। संवादाः प्रकरणानुकूलाः, पात्राणां

विविधानां मनोवृत्तीनां च परिचायका सन्ति । 'नाटकीयतत्त्वपरिपूर्णा इमे संवादा सरलतया अभिनेयाः । दिङ् मात्रमुदाह्रियते –

> **महाराज**[1]– भद्रे, नास्माभिरीदृशा निगडैः किन्तु प्रेम्णा बद्ध्यन्ते ।
> **रसनारी** – कतमोऽसौ भ्राता ?
> **महाराजः**– कुमारो मायाजिह्म : ।
> **रसनारी** – कथमत्रायातः ?
> **महाराजः**– सोऽस्माभिर्योद्धुमायात आसीत् ।

पात्राणां मनोभावास्तेषां स्वरूपानुरूपा एव वर्णिताः सन्ति । रसनार्या सह वार्तायां शिवराजो नारीणां कृते सविनयं शिष्टाचारं प्रदर्शयति । मायाजिह्मेन सह तस्यैव संवादाः वात्सल्यपूर्णा देवशर्मणा सह च नितरामादरसंवलिताः प्रतीयन्ते । शिवराजस्य जयसिंहेन यशस्विसिंहेन च सह संवादा ओजोमयाः क्षात्रधर्मानुकूलाश्च ।

प्रकृतग्रन्थे तात्कालिकराजनीतिकसामाजिकधार्मिकपरिस्थिती-नामुत्कृष्टं वर्णनमुपलभ्यते । भौगोलिकपरिस्थितयोऽपि विस्तरेण वर्णिता दृश्यन्ते । शिवराजेन स्वाधीनतायै कृताः प्रयत्नाः, यवनशासकानाम् अत्या-चाराः, हिन्दुशासकेषु परस्परमैक्यस्याभावः, शिवराजस्य अवरंगजीवस्य च राजनीतिकनियमेषु वैषम्यम्, इत्यादीना वर्णनेन तात्कालिकहिन्दूराष्ट्र-स्य दुर्दशाया यवनशासकानां भयंकरात्याचाराणा च यथार्थचित्रमस्माकं पुरः परिस्फुरति । 'एतेषु वर्णनेषु बाणभट्टस्य भाषायाः सङ्घटनायाश्च प्रभावो दृश्यते ।

बाणभट्टेन यथा हर्षचरिते कादम्बर्यां च धर्म-देवपूजा-लोकविश्वास-प्रणय-विवाह-शिक्षा-कला-उत्सव-वस्त्राभूषणादीनां यथावसरं मनोरमं वर्णनमकारि तथैव शिवराजविजये विविधशास्त्रकलाविदग्धेन व्यास-नापि सम्यग् वर्णितमस्ति । निदाघस्य वात्यायाश्च प्रचण्डतायाः, वर्षणस्य

---

1. शिवराजविजयः नवमनिश्वासः पृ. सं. 59-60

बहुलतायाः सामुद्रिकोपद्रवाणां च नोपपन्नाया वर्णनेऽपि व्यासमहोदयो निपुणतरः।

प्रकृतिचित्रणम् – प्राकृतिकसौन्दर्यस्य विविधरूपाणां प्रदर्शनेऽपि व्यासो बाणभट्ट इव नवनवाभिः कल्पनाभिः सहृदयान् हठात् समाकर्षति। उपन्यासकारेण ग्रन्थस्यारम्भ एव रूपकालंकाराणां माकारेण सह विहित-मरणोदयवर्णनं कस्य रसिकस्य मनो न हरति ? तथा हि—

"**एष**[1] भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, **चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्य-वहारस्य, इनश्च दिनस्य। इति।"**

शब्दगतचमत्कारेण सह सादृश्यमूलकानानर्थालंकाराणां सुललितः प्रयोगः सन्ध्यावर्णने नूनं सचेतसां चेतस्यानन्दसन्दोहं जनयति—[2]

"**घोरसमीरस्पर्शेन मन्दं मन्दमान्दोल्यमानासु वततिषु समुदिते यामिनीकामिनीचन्दनबिन्दाविवेन्दौ कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, मग्नमौनव्रताः शुश्रूषुरिव मौनमाकलयत्सु पतङ्गकुलेषु, कैरव-विकासहर्षं प्रकाशमुररीषु चंचरीकेषु ...।**"

केचन महाकवयः प्रकृतेर्मञ्जुलरूपस्यैव चित्रणे चतुराः दृष्टिपथ-मवतरन्ति, तर्हि केचन प्रकृतेर्भयावहस्य रोमांचकारिणः स्वरूपस्य वर्णने हृदयरिकराः प्रतीयन्ते, परं महाकवेरम्बिकादत्तव्यासस्य इयमेव विलक्षणता वर्तते यत्तस्य लेखिनी समानभावेन मधुरभयंकरोभयविधस्वरूपवर्णने पूर्ण साफल्यमुपगतवती। अत्र व्यासः सम्यक् बाणभट्टमनुसरति।

भाषा—

वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं वृत्तगन्धि उत्कलिकाप्रायं चूर्णकमुक्तकभेदा-च्चतुर्विधम्। व्यासेन एतेषां चतुर्णामपि कमनीयः प्रयोगो विहितः।

---

1. शि. वि. निश्वास- पृ. सं. 2-3
2. शिवराजविजयः पृ. सं. 11 प्रथम निश्वास

कविमूर्धन्यो व्यासो हि शिवराजविजये भाषायां पदसङ्घटनाया च महाकविबाणभट्टमनुकरोति। तस्य भाषा भावानुसारिणी सानन्दं प्रतिपदं विहरति। शृङ्गारवीरकरुणबीभत्सादीनां रसानामुपस्थापने सुकविना व्यासेन तत्तद्रसानुकूलैव पदावली प्रयुक्ता। यथा हि बाणभट्टेन विन्ध्याटव्या[1] राजकुलादीनां च वर्णने दीर्घसमासाया पदावल्याः प्रयोगो विहितस्तथैव अद्भुतवैदुष्यविभूषितेन व्यासेनापि दक्षिणदेशस्य कोंकणदेशस्य च वर्णने प्रायः दीर्घसमासानां प्रयोगः प्रदर्शितः। दिङ्मात्र यथा-कोंकणदेशवर्णने—

"नासाप्रविदारणशाणनच्छुलविहितगण्डशैलखण्डानां खड्गिनाम्, दोदुल्यमानद्विरेफवक्षपेपीयमानदानधाराधुरन्धराणां सिन्धुराणाम्, कृपा-कृपणकृपाणच्छिन्नदीनाध्वनीनगलतलगलत्पीनधारशोणितबिन्दुवृन्दरञ्जित-वारबाणसारसनोत्णीषधारणाकलितासर्वगर्वबर्बराणां लुण्ठकनिकराणां च सर्वथा साक्षात्कार-सम्भवः।"[2]

एवमेव यथा बाणेन विरहविह्वलाया. कादम्बर्याः वर्णने कपिञ्जल-मुखेन पुण्डरीकं प्रति भर्त्सनावसरे च सरला समासरहिता च पदावली प्रयुक्ता, तथैव व्यासेनापि सौवर्णी विरहवर्णने गौरवटोः वर्णने च समास-रहितायाः सरलपदावल्याः प्रयोगः कृतः। गौरब्रह्मचारिवर्णने यथा—

"बटुरसौ[3] आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः कम्बुकण्ठः, आयतललाटः सुबाहु विशाललोचनश्च आसीत्।"

इत्थं शिवराजविजये सर्वत्र वर्ण्यविषयानुकूलनैव प्रायः समास-रहितायाः क्वचिदल्पसमासायाः क्वचिच्च दीर्घसमासायाः सङ्घटनाया यथोचितं प्रयोगं विधाय कविवरेण्येनानेन भाषाया पूर्णाधिकारः प्रदर्शितः।

1. द्रष्टव्यम् कादम्बर्या विन्ध्याटवीवर्णनम्।
2. शिवराजविजयः, तृतीय नि. पृ. सं. 149-150
3. शिवराजविजयः, प्रथमनिश्वासः पृ. सं. 7

इदमेव कारणं यदस्मिन्नुपन्यासे भाषा दासीव कवेरादेशं पालयति प्रकाशयति च अनायासेनैव प्रतिपदं नवनवान् नानाविधान् कमनीयभावान्। बाणभट्ट इवायमपि पाचालीरीतेः ललितप्रयोगे कोऽप्यपूर्वः कलाकार इति निश्चप्रचम्।

अलंकारयोजना—

शिवराजविजये अलकारप्रयोगचतुरेण सहृदयधुरीणेन कविना सरसा सुवर्णा कविताकामिनीम् अलंकारैरलंकर्तुं क्वचिदपि प्रसह्य प्रयासो न विहितः। अस्मादेव कारणात् सुतरामागता शब्दालंकारा अपि तद्ग्रीवाया हारायन्ते, भाराय न भवन्ति। शब्दालंकारेष्वनुप्रासस्तु कवेः क्रीतदास इव प्रतिपदं सेवायामुपस्थितो दृश्यते। किं बहुना उपमालंकारस्य साम्राज्येऽपि कविः न जहात्यनुप्रासं प्रति स्वाभाविकमनुरागम्। तथाहि—

"न वयं मीनानिव पीनान्, इभानिव सुविलान्, भेकानिव निर्विवेकान्, बृदंशकानिव कपटहिंसकान् काकानिवास्वादितदुर्विपाकान् ...... नृपम्मन्यान्[1] स्वप्नेऽपि समुपास्महे।"

प्रथमविरामस्य तृतीयनिश्वासे उदयपुरराज्यस्य परिचयप्रदानावसरे तत्रत्यानां क्षत्रियकुलांगनानां मनोरमवर्णने उपमाया यमकालंकारस्य कमनीयः प्रयोगोऽपि नूनमवलोकनीयः—

"यदीयचित्रकूटदुर्गे परसहस्राः क्षत्रियकुलांगनाः शारदा इव विशारदाः, अनसूया इवानसूयाः, यशोदा इव यशोदा, सत्या इव सत्याः, रुक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव सुवर्णाः।"[2]

अर्थालंकारेषु उपमाया बाहुल्येन प्रयोगोऽत्र द्रष्टुं शक्यते। तत्र लुप्तोपमाया काचिदद्वितीया माला निम्नांकितोदाहरणेन दर्शनीया—

1. शिवराजविजयः, 5 नि., पृ. सं. 9
2. शिवराजविजयः, 3 नि., पृ. सं. 131

"अथ सहासं सोऽब्रवीत्–को नाम खपुष्पायितः शशशृंगायितः, कमठीस्तन्यायितः सरीसृपश्रवणायितः, भेकरसनायितः, वन्ध्यापुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एतं रक्षिष्यति ।[1]

ताम्रकधूमं पिबतो यवनान् प्रति कवेरुत्प्रेक्षा नूनं रसिकान् आनन्दयति—

"तत्र क्वचित् खट्वासु पर्यंकेषु चोपविष्टान् सगडगडाशब्दं ताम्रकधूममाकृष्य मुखात् कालसर्पानिव श्यामलानि श्वासानुद्गिरतः स्व-हृदयकालिमानमिव प्रकटयतः स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकानिव फूत्कारैर-गिनसात् कुर्वतः, मरणोत्तरमतिदुर्लभं मुखाग्निसयोग जीवनदशाया-मेवाकलयतः[2]……।"

एवमेव सूर्यास्तवर्णने कवेः मधुरकल्पना विलोकनीयाः—

"अथ[3] जगतः प्रभाजालमाकृष्य वारुणीसेवनेनेव मांजिष्ठमजिम-रंजितः, अनवरतभ्रमणपरिश्रमश्रान्त इव सुषुप्सुः म्लेच्छगणदुराचार-दुःखाक्रान्तवसुमतीवेदनामिव समुद्रं शायिनि निविवेदयिषुः, वैदिकधर्मध्वंस-दर्शनसंजातनिर्वेद इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः घर्मतापतप्त इव समुद्रजले सिस्नासुः भगवान् भास्वान् । अनेनैव वारुणीपदे श्लेषोऽपि विराजते । व्यासकवे नवनवाः कल्पनास्तस्य सूक्ष्मप्रतिभाया निदर्शनं कारयन्ति ।"

गौरसिंहस्य वर्णने विरोधोऽपि कथमलंकारत्वमुपैतीति समवलो-क्यताम्—

"परितश्च[4] तस्यैव खर्वामप्यखर्वपराक्रमां श्यामामपि यशः समूहश्वे-तीकृतत्रिभुवनां कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयां पठनपाठनादिपरिश्र-

1. शिवराजविजयः, 2 नि., पृ. सं. 101
2. शिवराजविजयः, 2 नि. पृ. सं. 77-78
3. शिवराजविजयः, 2 नि. पृ. सं. 50-51
4. शिवराजविजयः, 2 नि. पृ. सं. 63-64

मानभिज्ञामपि नीतिनिष्णातां, स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनाम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम् मूर्तिम् ......।"

प्रथमनि श्वासे मुनिमवलोक्य ग्रहीतृभेदादेकस्यैव नैकधोल्लेखादुल्लेखालंकारोऽत्र दर्शनीयः—

"तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वसन्ति स्म।"[1]

प्रतीपालंकारो यथा-सौवर्ण्याः सौन्दर्यवर्णने—

"सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुंस्कोकिलान् केशैः रोलम्बकदम्बानि, ललाटेन कलाधरकलाम्, लोचनाभ्याम् खंजनान् अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नां तिरस्कुर्वती ......।"[2]

वीरविक्रमादित्यविषये मुनेः कथने सहोक्त्यलंकारोऽपि चेतश्चमत्करोति—

"अथ[3] स मुनिः-भगवन्! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौष्ठवेन, धर्मेण, विद्यया च सममेव परलोकं समाधितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये......"

एवमेव रूपकविभावनाविशेषोक्त्युदात्तादीनामलंकाराणामपि मंजुलः प्रयोगोऽस्मिन् काव्ये परिलक्ष्यते।

नूतनसंस्कृतशब्दराशिः—

शिवराजविजये उपन्यासोचितायाः सरलललितभाषायाः प्रयोगे व्यासेन बहूनां नित्योपयोगिनां वस्तूनां कृते प्रयोगयोग्यानां नूतनसंस्कृतशब्दानामपि बाहुल्येन सन्निवेशः कृतः। यथा—प्रसाधनिका (कंघी),

1. शिवराजविजयः, 1 नि. पृ. सं. 12
2. शिवराजविजयः, 4 नि. पृ. सं. 189
3. शिवराजविजयः, 1 नि. पृ. सं. 27-28

काचमंजूषा (लालटेन), चुक्रम् (ग्रम्ल), वितुन्नकम् (सौंफ), शृंगवेरम् (ग्रदरक), काष्ठपीठम् (चौकी), भ्राष्ट्रम् (भाड), वडिशम् (वंशी), प्रियाल. (प्याज), इण्डरिकाः (वड़ियां), भोज्यपदार्थेषु कचौरी शष्कुली पेटाः (पेड़े)। क्वचिदुर्दूशब्दानामपि संस्कृतेन सस्कारो विहितः कविना। तथाहि मौलिवी (मौलवी), (ग्रल्ला), मोहरमः (मुहर्रम), रसनारी (रोशनग्रारा), मायाजिह्मः (मुग्रज्जम), मोहावर्तखानः (मुहब्बत खां) इत्यादीनाम्। अस्मिन् विषयेऽपि व्यासेन बाणभट्टादेव प्रेरणा प्राप्ता।

इत्थं शिवराजविजयस्य सूक्ष्मदृष्ट्या परीक्षणानन्तर प्रतीयते यद् वाक्यानां विन्यासे वर्ण्यविषयस्य वर्णनविविधतायाम् ग्रलकाराणां च प्रयोगे व्यासो बाणभट्टस्याधमर्णः, किन्तु उपन्यासस्य शिल्पविधाने पूर्वोक्तयोः बङ्गीयोपन्यासयोः प्रभावो दृश्यते। ग्रस्मादेवात्रसंवादाः लघुकाया ग्रपि गभीरार्थप्रकाशनक्षमाः कथाप्रवाहवर्धने चातिशयेन सहायकाः सन्ति।

बाणस्य रचनासु यद् लालित्यमर्थगाम्भीर्यम् ग्रनेकशास्त्रेष्वद्भुत-पाण्डित्यं च विलोक्यते, तदन्यत्र दुर्लभम्। संस्कृतसाहित्यसाम्राज्ये नहि बाणसदृशः कश्चिदन्यो हृद्यगद्यसम्राट् समजनि, न चेदानीमपि दृश्यते। परमत्रावधेयं यद् बाणभट्टकाले कवेः सर्वोत्कृष्टताया. परीक्षणाय यो मानदण्ड ग्रासीत्, तेनैव मानदण्डेन ग्रर्वाचीनानां कवीनामपि परीक्षणम-नुचितं भविष्यति। इदानीं गद्यकाव्यस्य सर्वोत्कृष्टतां प्रमाणयितुं संस्कृतं मृतभाषेति वदतां जनानां समक्षं नास्ति कादम्बर्याः विशालशब्दजालस्य ग्रधिकं महत्त्वं, न वा हठादाकृष्टानामलङ्काराणां चमत्कारस्य। ग्रत एव लोकशास्त्रव्यवहारचतुरो व्यासो नहि सुबन्धुरिव प्रत्यक्षरश्लेषनिबन्धने मनो निदधाति, न च बाण इव प्रलम्बसमासे जटिलतरवाक्यविन्यासे। ग्रस्मै तु प्रसादमधुराणि ललितललितानि भावगर्भितानि निसर्गसरलायुन्-पन्यासोचितानि पदान्येव रोचन्ते।

महाकविबाणभट्टानन्तरम् आधुनिकोत्कृष्टगद्यकविषु यदि कस्यचित् सुकवेः रचनायां भाषाभावयोः मञ्जुलसमन्वयः, चमत्कारप्रचुरा वर्णनपद्धतिः, नवनवार्थोद्भावना, प्रकृतिवर्णने सूक्ष्मनिरीक्षणशक्तिः, नैसर्गिकी राष्ट्रभक्तिः, चरित्रचित्रणे अलङ्काराणां च प्रयोगे स्वाभाविकता, एवमक्षयोऽतुलशब्दराशिः एतत्सर्वमेकत्र क्वचिदुपलभ्यते, तर्हि श्रीमदम्बिकादत्तव्यासमहानुभावस्य रचनायामेव । इदमेव कारणं यद् बाणस्य यद् गौरवं सप्तमशतके आसीत् विदुषां समाजे, तदेवेदानीम् व्यासमहानुभावस्य वर्तते । इत्थमाधुनिकसंस्कृतगद्यसाहित्ये कविशेखरो व्यासः नूनं बाणायते ।

उपाचार्योऽध्यक्षश्च (साहित्यविभागे)
केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्, जयपुरम्

—※—

पं० अम्बिकादत्तव्यास की भक्तिप्रधान रचनाएँ

● डॉ० (श्रीमती) उर्मिल गुप्ता

विश्व में समस्त प्राणियों में मानव सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें आत्मोद्धार की प्रवृत्ति है। मात्र मानव ही संसार के दु:खों के आत्यन्तिक अभाव एवं एकान्तिक सुख की प्राप्ति कर सकता है। इस संसार-सागर से पार उतरने के लिए विद्वानों ने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दो नौकाओं का विधान बताया है। सम्पूर्ण जगत् में कमलवत् रहकर निर्विकार निराकार ब्रह्म में लीन होना निवृत्ति-नौका से संसार के वैषम्य को पार करना है। यह मार्ग किसी के लिए भी असम्भव तो नहीं है, किन्तु कठिन अवश्य है। परात्पर परब्रह्म के श्रीचरणों में अपने स्व का पूर्ण समर्पण प्रवृत्तिमार्ग है। यही भक्तिमार्ग कहलाता है। विचारकों ने रति स्थायीभाव को भिन्न-भिन्न सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् रूप में पुष्ट होना माना है। सन्तति के प्रति की गई 'रति' 'वात्सल्य' कहलाती है। पुरुष एवं स्त्री की पारस्परिक रति शृङ्गारभाव को पुष्ट करती है तथा श्रद्धेय देव में साधक की रति भक्ति कहलाती है। यह भाव कोई अभिनव भाव न होकर युग-युगान्तर से चला आ रहा भाव है।

संस्कृत वाङ्मय में भक्ति-परम्परा अतिप्राचीन है। हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ वेद में ऋषियों द्वारा देवों के लिए की गई स्तुतियाँ मन्त्रों में सम्प्राप्त हैं। आर्यों का स्तोत्र-साहित्य वस्तुतः भक्ति-साहित्य ही है। ऋषि देव-स्तुति से ही अपने पापों का नाश, दोष परिहार एवं गुण समृद्धि

की प्राप्ति करता है। वस्तुत. वह अपने जीवन की प्रगति को देवाधीन करके स्वकर्तृत्व के अभिमान से मुक्त हो आत्मोन्नति की चरमसीमा को छू लेता है। यही है उसकी भक्ति की उपादेयता। यहा कुत्स ऋषि की भक्ति समस्त देवों के प्रति निरभिमानिता से संवलित द्रष्टव्य है—

> अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
> तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥
> 1/115

अर्थात्—हे देवों! आप आज के सूर्योदय में हमको पाप से निकालकर उबारिए। हमारी इस अर्चना का मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौस् भी पुन-पुनः अनुमोदन करें।

इस प्रकार आदिग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर ऋषियों की सरलता देवों के प्रति अटूट आस्था और भक्ति के दर्शन होते हैं।

वैदिक वाङ्मय के आधार पर लौकिक सस्कृत साहित्य में भी स्तोत्रों का प्रणयन हुआ। भक्त कवि अपने आराध्य तथा इष्टदेव की स्तुति में स्तोत्रों की रचना करते रहे। इससे एक विपुल स्तोत्र साहित्य का भण्डार हमें प्राप्त होता है। रामायण और महाभारत जैसे पौराणिक काव्य भक्तिकाव्यों की महती परम्परा को अभिव्यक्त करते हैं। आदिकाव्य रामायण के युद्धकाण्ड में मुनिश्रेष्ठ अगस्त ने श्रीराम को विजय-प्राप्ति के लिए 'आदित्य हृदयस्तोत्र' का पाठ करने की प्रेरणा दी है। महाभारत पौराणिक ऐतिहासिक महाकाव्य है, इसमें जहां भीष्म और विदुर वासुदेव श्रीकृष्ण का स्तवन करते हुए दृष्टिगत होते हैं, वहाँ भीष्मपर्व में श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं मधुसूदन श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भक्तियोग की महिमा कही है।

जीवन के पुरुषार्थ-चतुष्टय में मोक्ष की प्राप्ति के लिए मानव को सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। एतदर्थ भगवत्स्मरण ही व्यक्ति के लिए श्रेयस्कर है। परमात्मा की कृपा से ही मानव परम शान्ति एवं सनातन

परमधाम को प्राप्त होता है। इस विषय मे अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण का कथ्य द्रष्टव्य है —

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।"

संस्कृत-साहित्य में प्रत्येक कवि ने अपने-अपने इष्टदेव के प्रति भक्ति अभिव्यक्त की है। महाकवि कालिदास के "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" का स्रग्धरा छन्द में लिखा हुआ प्रथम पद्य शिव की अष्टमूर्ति का स्तवन करता है। 'कुमारसम्भव' के द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा की स्तुति, 'किरातार्जुनीयम्' में अर्जुन द्वारा शिव की स्तुति, 'शिशुपालवध' मे भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति, रत्नाकर कविकृत 'हरविजय' मे 167 पद्यो मे चण्डी की स्तुति की गई है।

सातवी शताब्दी में गद्यकवि बाणभट्ट ने 'चण्डीशतक' लिखकर भगवती जगदम्बा के प्रति अपनी भक्ति इस प्रकार प्रकट की है—

"विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणी ध्वस्तवज्रे
जाताशंके शशांके विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ।।"

इनके ही समकालीन, सम्राट् हर्षवर्धन के सभाकवि मयूरभट्ट का सूर्यशतक भी स्तोत्र जगत् में विख्यात है।

आठवी शताब्दी में आद्य-शंकराचार्य ने 'सौन्दर्यलहरी' जैसी स्तोत्र रचना संसार को दी। यह सिद्ध-स्तोत्र है। उन्होंने भगवती जगदम्बा के स्तवन में 103 पद्य कहे हैं। गेयता की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट ये पद्य भक्त के हृदयोद्गारों का प्रकट स्वरूप ही है—

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्याकुवलयैः
कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुराभोगवतिका ।।

श्रवन्तो दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया
ध्रुवं तत्तन्नाम व्यवहरण-योग्या विजयते ॥

'सौन्दर्यलहरी' के अतिरिक्त जगद्गुरु ने लगभग 200 स्तोत्रों की रचना की थी। 'हरविजय' के प्रणेता रत्नाकर कवि ने 'वक्रोक्तिपञ्चाशिका' में 50 पद्यों की रचना वक्रोक्ति में की है। कवि पुष्पदन्त का 'शिवमहिम्न. स्तोत्र', यमुनाचार्य का 'स्तोत्ररत्न', लोष्टक कवि का 'दीनाक्रन्दनस्तोत्र' बिल्वमंगल के 'कृष्णकर्णामृतादि स्तोत्र', काश्मीरी कवि जगद्धरभट्ट की 'स्तुतिकुसुमाञ्जलि' आदि स्तोत्र कवियों के भक्ति पूर्ण उद्‌गार हैं।

हमारे श्रद्धेय कवि पं. अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत वाङ्मय में तथा हिन्दी वाङ्मय में एक सहृदय भक्तकवि के रूप में उभरकर सामने आते है। कवित्व निर्माण के लिए तीन बातें प्रमुख होती हैं— शक्ति, निपुणता और अभ्यास। तीनों का बाहुल्य होने से व्यासजी एक उच्चकोटि के प्रतिभाशाली कवि थे, जो सामान्य कवियों से पृथक्तः देखे जा सकते हैं। इनके पितामह पं. राजाराम तथा पिताश्री पं. दुर्गादत्त अपने समय के जाने-माने उच्चकोटि के प्रकाण्ड विद्वान् एवं ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे। व्यासजी में कवित्व की शक्ति संस्कारगत ईश्वरप्रदत्त ही थी। देदीप्यमान प्रतिभा के धनी व्यासजी को 'घटिकाशतक', 'भारतभूषण' 'भारतरत्न' आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं, इससे इनकी निपुणता और वैदुष्य का प्रमाण मिलता है। 42 वर्ष की अल्पायु में संस्कृत व हिन्दी के कुल मिलाकर 91 ग्रन्थों का प्रणयन इनके सतत लेखन के अभ्यास को पुष्ट करता है। यद्यपि अब इनके केवल 52 ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं।

व्यासजी के पिता पं. दुर्गादत्त जी एक विद्वान् कथावाचक थे। वंशानुक्रम से प्राप्त इस कला में बाल्यकाल में ही लग जाने पर 'व्यास' कहे जाने लगे और पं. अम्बिकादत्त, पं. अम्बिकादत्त व्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है वे कट्टर सनातन धर्मावलम्वी ब्राह्मण थे। पुराणों व अन्य शास्त्रों में वर्णित सभी देवी-देवताओं में उनकी आस्था थी। किसी एक देवता के प्रति विशिष्ट भक्ति न होकर सामान्य हिन्दू ब्राह्मण की भांति सभी देवताओं के प्रति उनकी भक्ति अभिव्यक्त हुई है। अपने धर्म में आस्था रखना, उसका प्रचार-प्रसार करना वे अपना नैतिक दायित्व समझते थे। यही उनकी अपने भगवान् की भेंट है।

उन्हें स्वधर्म विरोधी मुस्लिम-प्रशासन से बड़ी शिकायत रही। अपने धर्म की रक्षा के लिए ही उनमें राजभक्ति भी दृष्टिगत होती है। देश को खोखला बना देने वाली ब्रिटिश-सरकार के जय गीत वस्तुतः उन्होंने धार्मिक-स्वातन्त्र्य के उपलक्ष्य में गाए हैं। वे धार्मिक स्वतन्त्रता को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मानते हैं। सच बात तो यह है कि उस युग से पूर्व बर्बरता का वह युग आचुका था, जब धर्म के नाम पर गुरु तेजबहादुर शीश कटा चुके थे तथा गुरुगोविन्द सिंह अपने दोनों पुत्रों का बलिदान दे चुके थे। देश की पराधीनता को व्यास जी उसका अनिवार्य सत्य स्वीकार कर चुके थे, किन्तु धर्म के विषय में अंग्रेजों का निरपेक्ष भाव देखकर उनके प्रशंसक बन गए थे। वस्तुतः यहां उनकी राजभक्ति नहीं, अपितु अपने भक्त हृदय की स्वायत्तता की प्रसन्नता है।

उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि व्यास जी तत्कालीन आर्य-समाज व ब्रह्मसमाज द्वारा संचालित समाज सुधार के विरोधी थे। इन दोनों समाजों के विचारों से उनकी धार्मिक-भावना को ठेस पहुंचती थी। अतः उन्होंने गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, अवतारकारिका, अबोधनिवारण, दयानन्दमत-मूलोच्छेद, मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था, आश्रमधर्मनिरूपण आदि ग्रन्थों में इन विचारों का प्रतिपादन किया है।

व्यासजी का कवित्व—

व्यासजी सहृदय कवि थे। कवियों में पाए जाने वाले समस्त गुण इनमें विद्यमान थे। धार्मिक प्रवृत्ति से ओतप्रोत होने के कारण

इन्होंने भक्तिकाव्य की रचना की है। यूं भी काव्य सहृदय के हृदयगत भावों और विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति ही तो है। कालरूप और रचनाविधि चाहे कितनी भी मौलिक एवं कलात्मक क्यों न हो, वह रचना तब तक उत्तम काव्यपद की अधिकारिणी नहीं हो सकती, जब तक उसमें भावों की गरिमा और विचारों की उदात्तता न हो। व्यासजी के कृतित्व में उनकी संवेदनशीलता, उदारता, हृदय की निर्मलता और पवित्रता, अनुभूति की कोमलता को लेकर परिलक्षित होती है। भारतवर्ष, भारतीयता, हिन्दूधर्म और जाति की दुर्दशा ने उनके हृदय को पवित्र तथा तीव्र अनुभूति की भावना से भर दिया था। पिता-पितामहादि से प्राप्त सनातन धर्म में आस्था व्यास जी के कवित्व के प्रत्येक कण में समायी हुई थी। सम्भवतः भक्ति संदेश देने के लिए ही पूज्य व्यास जी ने इस पृथ्वी पर अवतरण किया होगा।

लेखन के क्षेत्र में हिन्दी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। हिन्दी में 64 ग्रन्थों में से 38 ग्रन्थ ही आज उपलब्ध हैं तथा संस्कृत भाषा में रचित 27 ग्रन्थों में से 14 ग्रन्थ ही प्राप्त होते हैं। कुल मिलाकर इनके 52 ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं।

व्यासजी की हिन्दी रचनाओं में भक्तिभाव—

1. आश्चर्य वृत्तान्त—अद्भुत घटना से परिपूर्ण इस उपन्यास में इन्होंने एक अंग्रेज के हृदय में 'रामावतार' के प्रति आस्था उत्पन्न की है। पक्षियों और वृक्षों पर राम-राम नाम को चिह्नित दिखाया है।

2. ईश्वरेच्छा—मिथिला नरेश महाराजा लक्ष्मीश्वरसिंह के मृत्यु समाचार को सुनकर उससे विह्वल होकर शोक और वैराग्य की भावनाओं के वशीभूत होकर लिखे गए इस काव्य में ब्रह्म की सत्ता और जगत् की निरर्थकता वर्णित है—

ब्रह्म सत्य अरु मिथ्या सब संसार बखानत।
बात-बात हि माँहि सत्व रज और तम टानत॥

अन्त में मानव के प्रति सदेश है—

> चेत चेत रे जीव अजहुं तो चेत अभागे।
> नारायण के चरनन राखु निज तन मन पागे।।
> हानि-लाभ सुख-दुःख हरष औ सोक एक कं
> एक घनानन्द परमेश्वर मे मन रहियो रे।।

3. **गोसंकट**—सनातन हिन्दू धर्म के प्रति दृढ और गहन आस्था रखने वाले व्यास जी की दृष्टि मे गौओं की रक्षा हिन्दुओ का परम धार्मिक उत्तरदायित्व है। गोकुशी भारतवासियों के ही प्राण लेने का उपक्रम है। इस नाटक मे गो-भक्ति दिखाई देती है।

4. **ललित नाटिका**—शृङ्गार रस एवं हास्य रस से ओत-प्रोत व्रज-भाषा में लिखी गई यह नाटिका कवि के हृदय का उद्गार है। प्रस्तुत नाटिका में श्रीकृष्ण को विष्णु जी का अवतार माना है। गोपियों का श्रीकृष्ण में प्रेम एक भक्त का भगवान् मे प्रेम है। श्रीनारद जी द्वारा कृष्ण जी की यह स्तुति इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है—

> अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
> यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम्।।

5. **सुकवि सतसई**—व्यासजी को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का वरदहस्त प्राप्त था। उन्होंने प्रसन्न होकर इनकी प्रतिभा को देखकर इन्हें 'सुकवि' की उपाधि से विभूषित किया था। व्यासजी की रचनाओं में विभिन्न स्थलों पर इस उपाधि का प्रयोग दिखाई देता है। सन् 1887 में यह काव्य नारायण यन्त्रालय भागलपुर से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ में 700 पद्यों में श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन है और इस काव्य को उन्होंने अपनी उपाधि से अलङ्कृत कर इसका नाम 'सुकवि सतसई' रखा।

यह ग्रन्थ 100-100 पद्यों के 7 विभागों में विभक्त है। यह काव्य कवि ने मिथिला नरेश रामेश्वरसिंह को उपहार स्वरूप दिया था। अतः प्रारम्भ में 75 पद्यों में राजा विषयक वंश परिचय तथा गुणगान का बखान किया है, तदनन्तर 9 पद्यों में मङ्गलाचरण है। अवशिष्ट सातों भागों में कवि ने कृष्ण की जन्मलीला, नन्दमहोत्सव, पूतनावध, ऊखल-बन्धनलीला, कालिया-लीला, गोवर्धनलीला और अन्त में भगवान् की छवि का वर्णन किया है।

यह काव्य दोहा' नामक छन्द में निबद्ध है। भगवान् की भक्ति मे उल्लासित भक्त कवि का हृदय पूरे काव्य में आनन्द की लहरों पर डोल रहा है। गोपियों के हृदय का उल्लास स्वयं कवि के हृदय का उल्लास है—

> चन्द्रवंश भूषण लसत कृष्णचन्द्र जनु आज।
> व्रज में आई चांदनी दूध धार के ब्याज॥
> मोहित गोपिन को अधिक पुलक पसोज्यो देह।
> मनहुं इनके चुप्रत है रोम-रोम तें नेह॥

बाल कान्हा की बाल-लीला का वर्णन हो और मैया यशोदा के वात्सल्य का वर्णन न हो, यह तो किसी को अभीष्ट नहीं हो सकता। माँ यशोदा कन्हैया के प्रेम में उन्मत्त है। उनका मातृत्व उनके वक्ष से उबल कर निकला जाता है। कवि ने मातृ-क्षीर के उफान की कैसी सुन्दर व्यवस्था इस पद्य में अभिव्यक्त की है—

> दूध चुप्रत कुच पै पर्यो आंसुन को जल जाय।
> जनु उफान को रोकि के नैनन करो उपाय॥

पुत्र प्रेम में निकलने वाले नयनाश्रु वात्सल्य रस की चरम सीमा को छू जाते हैं। काव्यरचना की अलौकिक शक्ति रखने वाले व्यासजी जगत् की विसंगतियों से द्रवित होकर संसार से कुछ नहीं माँगते, किन्तु अपने आराध्यदेव, जिन पर उनका पूरा अधिकार है, साफ-साफ कह देते हैं—

मिलन होइ तो राखु मोहि पीर भरे संसार।
नांहि तो करु बाहर लला क्यों तावत दुःख धार ॥

सम्भवतः इसलिए उनके कृष्णलला ने शीघ्र ही 42 वर्ष की अल्पायु में ही इनको पीर भरे संसार से मुक्त कर दिया, जिसने उनके जीवन काल में उन्हें नहीं परखा, समझा।

हिन्दी भाषा मे ही भक्ति-भाव से भरे तीन ग्रन्थ और भी थे। कंसवध, घनश्याम-विनोद तथा शिव-विवाह, जो काल प्रवाह में नष्ट हो चुके हैं।

व्यासजी की संस्कृत रचनाओं में भक्ति-भाव—

(1) **शिवराजविजयम्**— संस्कृत भाषा में इनकी ख्याति विख्यात उपन्यास 'शिवराजविजय' से विशेष रूप से है। संस्कृत गद्य साहित्य मे नई विधा (उपन्यास शैली) में लिखे गए इस काव्य के नायक सनातन धर्म के कट्टर पक्षधर छत्रपति शिवाजी हैं, जो इतिहास के पृष्ठों में मुसलमानों के अत्याचारों से धर्म और जाति की रक्षा के लिए परम आग्रही हैं। वेद-शास्त्रों का अनादर उनके लिए परम असह्य हो जाता है—

"अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते। क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते।"

प्रस्तुत उपन्यास में सनातन धर्म की दुर्दशा देखकर कवि का हृदय हा-हाकार कर उठता है—

'हा! भारत! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे? हा वसुन्धरे! किं दीनप्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि? हा! सनातन धर्म! विलयमेव यास्यसि? हा चातुर्वर्ण्य! किं कथावशेषमेव भविष्यसि? हा मन्दिरवृन्द!

किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे ? हा ! सांगवेद किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ? ग्रहह !! धिग् ! धिग् ! रे ! कलिकाल ! यत्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि ।"

मूर्तिपूजा के पक्षधर श्रीव्यासजी भक्तवत्सल पशुपतिनाथ विश्वनाथ के मन्दिर की दुर्दशा देखकर विह्वल हो जाते हैं—

"हा विश्वम्भर ! काश्यां विश्वनाथमन्दिरं धूलीकृतमेतत् । हा ! माधव! तत्रैव बिन्दुमाधव मन्दिरस्यये बिन्दुमात्रमपि चिह्नं न प्राप्यते । हा! गोविन्द! तव विहारभूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्ददेवमन्दिरस्यापीष्टिकावृन्दं स्वच्छं मपकंराक्रम्यते ।"

उनका क्षोभ उन शासकों के प्रति है जो आर्यों को सताने के लिए ही गो हिंसा व प्रतिमा खण्डन करते हैं तथा हिन्दुओं से जजिया कर लेते हैं। उन्हें अपनी रचनाओं में जब भी ईश्वर की प्रभुता बताने का अवसर मिलता है वे उस समय अवश्य ही स्वभक्ति की अभिव्यञ्जना कर देते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में वे अपने भावोद्‌गार योगिराज के मुख से कहलाते हैं—

"मुने! विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयः पूर-पूरिताम्यकूपारतलानि मरुकरोति । सिंह-व्याघ्र-भल्लूक-गण्डक-फेरु-शश-सहस्रव्याप्तान्यरण्यानि जनपदीकरोति, मन्दिर-प्रसाद-हर्म्यशृङ्गाटक-चत्वारोद्यानतडागगोष्ठमयानि नगराणि च काननीकरोति ।

तोरणदुर्ग में स्थापित हनुमानजी की विशाल प्रतिमा के प्रति कवि के उद्‌गार इस प्रकार हैं—

"ततोऽवलोक्य तां वज्रेणेव निर्मितां, साकारमिव वीरतां, गदमुद्यम्य दुष्टदलनार्थमुच्छलन्तीमिव केशरिकिशोरमूर्तिम्……।"

इसके साथ ही "हनुमान् सर्वं साधयिष्यति" कहकर बजरंगबली में अटूट श्रद्धा का निरूपण करते हैं।

(2) **धर्माधर्मकललम् एवं मित्रालाप:** – मन की उमंग नामक रूपक संग्रह में संगृहीत ये दोनो संस्कृत के रूपक भले ही लक्षणकारों द्वारा विवेचित रूपकों की श्रेणी में न आते हों तथापि इन दोनों को मात्र संवाद कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। इनमें व्यास जी का धार्मिक भाव, सनातन धर्म के प्रति भक्ति अवश्य ही दृष्टिगत होती है। इनका अभिनय मुजफ्फरपुर में तत्कालीन धर्मसभा मे हुआ था।

(3) **अवतार मीमांसा कारिका**—यद्यपि यह काव्य हिन्दी भाषा में लिखित इनकी ही पुस्तक 'अवतार-मीमांसा' का एक भाग है, तथापि भगवान् के अवतार लेने के विषय में जो-जो शकाएं मानव हृदय मे उठती हैं, उनका समाधान इस पुस्तक में है। उस अव्यक्त परब्रह्म का पञ्चभौतिक शरीर धारण करना, उनकी अलौकिक अंशावतार आदि अनेक शकाओं का निवारण इन्होंने वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् और पुराणों के प्रमाण के आधार पर दृढ़ता से किया है। उनकी निश्छल भगवद्भक्ति इस कारिका से सुस्पष्ट है।

> **लीलाप्रियोऽयं भगवान् लीलार्थं कुरुतेऽखिलम् ।**
> **लीलारङ्गालये लीलाः पात्रत्वेनावलम्बते ॥**

(4) **दुःखद्रुमकुठार**—यह ग्रन्थ व्यासजी का संस्कृत साहित्य को एक नूतन विधा प्रदान करने का श्लाघनीय प्रयत्न है। यह काव्य चमत्कारों से युक्त एक दार्शनिक रचना है। अनुज गोविन्द राम को 18 वर्ष की अल्पायु मे ही मृत्यु होने पर व्यथित होकर कवि ने मनुष्य जीवन के संपूर्ण अङ्गों में दुःख को छाया का अनुभव करते हुए दुःख को दूर करने के उपाय का उन्मीलन किया है। गम्भीर अध्ययन और मनन करके लिखा गया यह निबन्ध उनकी वैयक्तिक अनुभूति का परिणाम है।

इस निबन्ध की विषयवस्तु दो भागों में विभाजित हैं। प्रथम भाग मे लौकिक दु खानुभूतियो का वर्णन और दूसरे भाग में इनको दूर करने के उपाय है। व्यक्ति बचपन, यौवन, प्रौढता, वार्धक्य मे अनेक कष्टों को झेलता हुआ 'शव' इस भयंकर नाम को प्राप्त करता है। जीवनोपरान्त भी दु खद्रुम अपनी शाखाओ में व्यक्ति को उलझाए रखता है। मानव निर्विकार, निर्विकल्प, शुद्ध, बुद्ध, सत्य निराकार, परम पुरुष का ध्यान करके इन दु खो से मुक्त हो सकता हैं। यह मार्ग व्यक्ति के लिए असम्भव नही, अपितु कठिन अवश्य है।

दु.खद्रुमकुठार के रूप मे व्यासजी भक्ति के विलक्षण मार्ग को प्रस्तुत करते है। बड़ा नास्तिक भी आपत्ति मे पड़ा हुआ भगवान् की ही शरण लेता है। अत. भक्ति मार्ग ही आदरणीय और आचरणीय है। इस रसना से गोविन्द का ही कीर्तन करना चाहिए। साक्षात् ब्रह्मज्ञान सम्पादित करने वाली परमानुराग रूप भक्ति से जीव जीवित रहते हुए भी सब दुःखों से मुक्त हो जाता है। अतः भगवान् का भजन ही दुःखद्रुम कुठार है। कवि ने निराश जीवन मे ईश्वर के भजन को ही परम आधार स्वीकार किया है। मनुष्य के जीवन उस आनन्दकन्द भगवान् के अतिरिक्त कुछ भी नही है—

"तस्मिंश्च श्रीकेतने भगवति प्रसन्ने किं नाम अलभ्य स्याद् इति निश्चित्य अश्रुकुलाकुलितलोचनः कण्टकितांगो द्रवितचित्तो-नारायण-परमेश्वर-जगदीश्वरपरमात्मन्-विष्णो-वैकुण्ठकेशवमाधवगोविन्दमुकुन्द-पुण्डरीकाक्ष-मधुसूदन-गरुडध्वज-पीताम्बर-अच्युत-जनार्दन-सुरमर्दन पाहि पाहि शरणागतोऽहं छिन्दि-च्छिन्दि दुःखद्रुममेतत्।"

भक्ति के इस मार्ग की पुष्टि प्राचीन शास्त्रों के प्रमाणों से की गई है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का अर्जुन के प्रति उपदेश प्रमुख रूप से प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच: ।। 18/64

प्रस्तुत निबन्ध में इन्होंने अपने सहृदय व्यक्तित्व को लेकर मार्मिक अभिव्यञ्जना की है और उनकी यह अभिव्यञ्जना उनके भक्ति स्रोत को प्रवाहित कर भक्त को आनन्दित करती है।

'विहारी विहार' नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि भक्तिभाव से ओत-प्रोत संस्कृत भाषा में इनकी दो रचनाएं और भी थीं—1. रत्नपुराण, 2. गणेश शतक, किन्तु ये आज उपलब्ध नहीं है।

(5) **सहस्रनाम-रामायणम्**—कवि की भगवान् के प्रति अनन्य भक्ति इनके इस काव्य से सर्वाधिक प्रकट होती है। भक्ति की परम्परागत स्तोत्र-परम्परा का अनुकरण करते हुए व्यास जी ने सहस्रनाम-रामायणम् की रचना की। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के 1000 नामों को इन्होंने 195 पद्यों में निबद्ध किया है। कलियुग के कलिमल को धोने के लिए इन नामों का उच्चारण अत्यन्त अनिवार्य है।

हिन्दी वाङ्मय में देदीप्यमान नक्षत्र गोस्वामी तुलसीदास की भांति श्रीव्यास जी ने दशरथ पुत्र श्रीराम को साक्षात् परब्रह्म का अवतार माना है। इस स्तोत्र पर गोस्वामी जी की 'विनय पत्रिका' की छाप स्पष्टत: परिलक्षित होती है।

गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका में मात्र 9 पद्यों में श्रीराम की स्तुति की है, जिनमें श्रीराम के पूरे जीवन चरित की कथा 'रामस्तुति' नाम से वर्णित है। उसी संक्षिप्त कथा को कुछ विस्तारित करके 195 पद्यों की रचना की है।

विनयपत्रिका की रामस्तुति के प्रत्येक पद्य में 'जयति' इस क्रिया का प्रयोग किया है, किन्तु व्यास जी ने पूरी पुस्तक में कहीं भी क्रिया का प्रयोग नहीं किया है। यह इस पुस्तक की विलक्षणता है।

कवि ने 1000 नामों द्वारा न केवल रामायण की पूरी कथा का वर्णन किया है, अपितु कथा को 7 काण्डों मे विभाजित भी किया है। पुस्तक के प्रारम्भ में श्रीराम और रामकथा की पावनता का स्मरण कर मंगलाचरण के रूप मे उपजाति छन्द मे चार पद्य लिखे हैं। तदनन्तर रामचन्द्रजी के विशेषणो के रूप मे नामो का कथन करते हुए बालकाण्ड मे उनके जन्म से लेकर विवाह पर्यन्त, अयोध्याकाण्ड मे चित्रकूट में श्रीराम द्वारा भरत को पादुका देने पर्यन्त, अरण्यकाण्ड में सीताहरण पर्यन्त, किष्किन्धाकाण्ड मे वानरो द्वारा सीता के अन्वेषण के लिए जाने और सम्पाति के स्वर्गादि प्राप्त करने पर्यन्त, सुन्दरकाण्ड में सीतान्वेषण, लंका-काण्ड मे लंकेशवध और अवधेश का अयोध्या की ओर गमन और उत्तर काण्ड में श्रीराम का सिंहासनारोहण वर्णित है।

जहां कवि ने भगवान् राम को परब्रह्म माना है वहां, इनमें लौकिक गुण भी कवि के लिए विवेच्य हैं। प्रस्तुत काव्य में तीन प्रकार के विशेषणों का संग्रह किया गया है।

1. कथा को गति देने वाले विशेषण,
2. श्रीराम के लौकिक गुणों को अभिव्यक्त करने वाले विशेषण।
3. श्रीराम को परब्रह्म के रूप में स्थापित करने वाले विशेषण।

1. श्रीराम के विशेषणों द्वारा ही कवि ने उनके कर्मों का वर्णन करके कथा को प्रगति दी है, यथा—

हनुमद्विहितालापो हनुमदनुपोपमः।
सुग्रीवालोकप्रीतः सन् श्रुतं सुग्रीवदुर्दशः ॥ 137 ॥

वालिनाशप्रतिज्ञाता सुग्रीवाश्चर्यकारणम्।
दुन्दुभ्यास्थिसमुत्क्षेपी तालच्छेदनकौतुकी ॥ 138 ॥

सुग्रीवभयविच्छेत्ता सुग्रीवप्रत्ययप्रदः ।
सुग्रीवविहितस्नेहो मित्रं मित्रसुखास्पदम् ॥
(कि० काण्ड 139)

रामचन्द्रजी के इन नामों से विदित होता है कि वे हनुमान् से वार्तालाप करके उसके पीछे सुग्रीव के पास गए और उसे देखकर प्रसन्न हुए। सुग्रीव की दुर्दशा का वृत्तान्त सुनकर उन्होंने वालिवध की प्रतिज्ञा की। इससे सुग्रीव को बहुत आश्चर्य हुआ। सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिए उन्होंने दुन्दुभि की अस्थियों को दूर फेंक दिया और ताल के वृक्षों को छेद दिया। राम के इन कार्यों से सुग्रीव का भय दूर हो गया। उसे राम के सामर्थ्य में विश्वास हुआ। श्रीराम ने सुग्रीव से स्नेह करके उसे अपना मित्र बना लिया और उसके लिए सुख की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार लंका-काण्ड में भी—

सीतादृङ्नलिनीवृष्टिपूजितः सर्वसंस्तुतः ।
जानकीशोभिवामांगो वह्निशोधितजानकिः ॥ 182 ॥

वानरर्क्षसमाहर्ता प्रशंसितकपीश्वरः ।
ब्रह्मादिविहितस्तोत्रः समालिंगितवानरः ॥ 183 ॥

इस विशेषणों से स्पष्ट हो रहा है कि रावणवध के बाद समीप हुई सीता ने राम को आदर से देखा। सीता की अग्नि परीक्षा ली गई। सभी ने श्रीराम की स्तुति की, जानकी उनके वामांग में सुशोभित हुई। श्रीराम ने वानरों और ऋक्षों का भी आदर किया और सुग्रीव की प्रशंसा की, ब्रह्मादि ने उनकी स्तुति की और भगवान् ने वानरों का आलिंगन किया।

2. श्रीराम के लौकिक गुणों का वर्णन कवि ने वालकाण्ड में प्रचुर रूप से किया है। नर रूप में अवतीर्ण हुए श्रीराम अनेक लौकिक गुणों से विभूषित हैं। वे यशस्वी, तपस्वी, तेजस्वी और मुनियों द्वारा

समादृत है। प्रजा की पीड़ा को दूर करने वाले उनके नेत्रों को आनन्दित करने वाले हैं—

यशस्वी च तपस्वी च तेजस्वी मुनिमानितः।
प्रजापीडामोचकश्च प्रजालोचनरोचनः॥
(वा० काण्ड 72)

वे व्रती, विद्वान्, सर्वप्रिय, गुणिगण्य, गुणप्रिय, कृतज्ञ, यज्ञ करनेवाले, काम्य, कृती और कार्य को पूरा करने वाले हैं—

व्रती विद्वान् प्रिय' प्रेमी गुणिगण्यो गुणप्रियः।
कृतज्ञः क्रतुकृत्काम्यः कृती कृत्यसमापनः॥ 72॥

3. श्रीराम को परब्रह्म का अवतार मानते हुए व्यास जी ने उनमें अलौकिक गुणों के दर्शन किए। भगवान् राम चिदानन्द चिदाभास, चिन्मूर्ति, चेतनस्थिति और आनन्द हैं। वे सबको प्रसन्न करने वाले हैं और देवगणों द्वारा वन्दित हैं—

"चिदानन्दश्चिदाभासश्चिन्मूर्तिश्चेतनस्थितिः।
आनन्दो नन्दनो नन्दो देवतावृन्दवन्दितः॥"
(बा० काण्ड)

श्रीराम ही परमात्मा, परब्रह्म, अविज्ञेय और पुरुषोत्तम हैं—

"परमात्मा परब्रह्माविज्ञेयः पुरुषोत्तमः॥"
(उ० काण्ड 195)

आनन्दकन्द मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के इन सहस्रनाम संकीर्तन द्वारा कवि ने हरि-नाम-कीर्तन का महत्त्व बताया है। सहस्रनाम संकीर्तनोपरान्त कवि ने देवताओं की स्तुति करने के लिए गणेशाष्टक, शारदाष्टक, विष्णुपदाष्टक, कमलाष्टक, हरिहरस्तोत्र और शरणागति-स्तोत्र की रचना की। इन स्तोत्रों की रचना के पश्चात् भगवद् भजन

विषयक चार गतियां लिखकर 23 पद्यों द्वारा अपना वंशपरिचय और काव्यरचना के प्रयोजनों का कथन किया है।

प्रस्तुत काव्य में कवि की देवविषयक रति की अभिव्यञ्जना है। यही अभिव्यञ्जना भक्ति को पुष्ट करती है। इस काव्य में देवविषयक रति अर्थात् भक्ति की प्रधानता होते हुए अन्य रसों की अभिव्यञ्जना गौण रूप से हुई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'सहस्रनाम - रामायणम्' नामक ग्रन्थ भक्ति के उच्च शिखर पर विराजमान भक्तों को आन्दोलित करने वाला सरस काव्य है। इसी प्रकार अन्य काव्यों में भी उनकी प्रतिभा, काव्य निर्माण शक्ति, सच्चिदानन्द प्रभु और विभिन्न देवी देवताओं के प्रति भक्ति दर्शनीय है। व्यास जी के काव्य अपने सौन्दर्य में सहृदयों को आह्लादित करते हुए भक्ति काव्यों की परम्परा में उत्कृष्ट स्थान रखते हैं।

व्याख्याता-संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय
अजमेर

—%%—

'शिवराजविजय' का सांस्कृतिक पक्ष

o "पद्म" शास्त्री

किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में, मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों की समष्टि को 'संस्कृति' कहा जाता है। समस्त सामाजिक जीवन की परिणति भी 'संस्कृति' में होती है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष तथा अपकर्ष संस्कृति द्वारा ही मापा जाता है। 'संस्कृति' के आधार पर विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं आचारों का समन्वय किया जाता है।

भारतीय-संस्कृति गंगा की धारा की तरह पवित्र है। इसमें विरोधी तत्वों वाली विभिन्न संस्कृतियां विलीन हो चुकी हैं। भारतीय संस्कृति प्रगतिशील एवं व्यापक विचारधारा वाली संस्कृति है। यद्यपि संस्कृति का क्षेत्र व्यापक होता है, पुनरपि समाज, अर्थ, राजनीति तथा धर्म का इसमें समावेश किया जाता है। सभ्यता परिवर्तनशील एवं विकासमान, है किन्तु संस्कृति के तत्त्व अपरिवर्तनीय एवं स्थायी होते हैं।

उन्नीसवी शती का उत्तरार्द्ध भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल था। उस समय भारतीय जनता का मानस पराधीनता एवं जातीय गौरव के नाश की व्यथा से नितान्त उद्वेलित था।

ऐसे समय में स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यासजी ने अपनी 42 वर्ष की अल्पायु में ही 52 रचनाओं का प्रणयन किया। व्यासजी तत्कालीन हिन्दी-लेखक भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्र थे। अतः उन्होंने संस्कृत गद्यलेखन में इस नवीनविधा (उपन्यास) का प्रयोग किया। इस गद्यविधा की

उपस्थापना हेतु इन्होंने "गद्यकाव्यमीमांसा" की रचना की। इससे पहले संस्कृत में जितने भी गद्यकाव्य लिखे गये, उनके लेखक राज्याश्रित थे। उनका जनसामान्य से सम्पर्क कम ही था।

व्यासजी की रचना का उद्देश्य नूतन काव्यविधा की संरचना, हिन्दूधर्म पर होने वाले अत्याचारों का प्रदर्शन, जातीय गौरव एवं धर्म की प्रतिष्ठा करना था।

इसलिए व्यासजी ने अपने नूतन उपन्यास के नायक, इतिहास के चिरपरिचित गो, ब्राह्मण, जाति तथा देश के संरक्षक मराठा शिवाजी को चुना। शिवाजी के सहायक भी सच्चरित्र, देशप्रेमी, धर्मप्रेमी एवं वीरों के प्रतीक हैं, जबकि औरंगजेब, अफजलखां व शाइस्ताखां अहंकारी, विलासी, विश्वासघाती एवं उत्पीड़क हैं।

गौरसिंह, रघुवीरसिंह एवं सौवर्णी ये कल्पित पात्र हैं। इनकी काल्पनिक कथा का भी इसमें सन्निवेश कर दिया गया है। कहीं-कहीं कथा में रागनिबन्ध हेतु अथवा नायक की गरिमा की दृष्टि से परिवर्तन भी किया गया है, यथा रसनारी का शिवाजी पर अनुराग शिवाजी के सैनिकों द्वारा मुअज्जम का अपहरण। यह उपन्यास द्वादश निश्वासों में विभक्त है। इसकी विषय वस्तु है-गौरसिंह द्वारा सौवर्णी को यवनयुवक से मुक्त करना, शिवाजी-अफजलखान का मिलन, सौवर्णी को वृद्ध देव शर्मा के पास रखना, रघुवीरसिंह द्वारा शिवाजी का पत्र तोरणदुर्ग पहुंचना, शास्तिखान का पूना से पलायन, शिवाजी का जोधपुरनरेश जसवन्तसिंह को अपने पक्ष में करना, रघुवीरसिंह व सौवर्णी का प्रेम भाव, गौरसिंह का मुअज्जम को पकड़कर लाना, रसनारी एवं शिवाजी का प्रणय, शिवाजी को दिल्ली कारागार में बन्द कर देना, राघवाचार्य द्वारा शिवाजी को कारागार से मुक्त करना, शिवाजी का महाराष्ट्राधिपति बनना एवं रघुवीर तथा सौवर्णी का विवाह, इस राजनैतिक विषयवस्तु के परिप्रेक्ष्य में विरचित यह रचना अपने ऐतिहासिक ऊहा-

पोह, चारचातुर्य एवं रणकौशल के प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध है। वीररस प्रधान इस उपन्यास की भाषा ओजस्विनी, अर्थपूर्ण एवं सुबोध्य है।

वीरविक्रम के परलोक चले जाने पर महमूद गजनवी ने भारत में प्रवेश किया—

"स च प्रजाः विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिद्य परःशतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतशः उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत् ।"

तत्कालीन भारतीय राजनीतिचक्र का वर्णन करते हुए व्यासजी लिखते हैं—

"ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तं, विस्मृतराजनीति, भारतवर्षदुर्भाग्यायमाण-माकलय्यानायासेनोभावपि विजित्य वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टक-कोटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमंगीचकार । तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः, रिंगत्तरंगभंगा गंगापि शोणितशोणा शोणीकृता । परःसहस्राणि देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि ।"

ब्रह्मचारी-गुरु एवं योगिराज के सम्वाद में व्यासजी ने उपादानों का सांगोपांग निदर्शन किया है। योगिराज पूछते हैं कि विक्रमादित्य के राज्य में यह अत्याचार कैसा? ब्रह्मचारी-गुरु उत्तर देते हैं—

"क्वाधुना विक्रमराज्यम् । वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदशशतकानि व्यतीतानि । क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजयध्वनिः? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे घण्टानादः क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते । धर्मशास्त्राणि उद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते । भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते ।"

यह सुनकर योगिराज कहते हैं कि पर्वतीय शकों पर विजय प्राप्त कर अभी अभी वीरविक्रम अपनी राजधानी आये थे। उनकी विजय पताका

अभी भी मेरे आंखों के सामने फहरा रही है। ब्रह्मचारि-गुरु जो उत्तर देते है, उस उत्तर में भारतीय योगशास्त्र की समाधि का वर्णन व्यासजी ने इस प्रकार किया है—

"भगवन् ! बद्धसिद्धासनैर्निबद्धनिश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनीकैर्विजितदशेन्द्रियैरनाहतनादतन्तुमवलम्ब्याज्ञाचक्रं सस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं भित्वा, तेजः पुञ्जमविगणय्य, सहस्रदलकमलदलान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य तत्रैव रममाणैर्मुमुक्षुभिरानन्दमात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः।"

सेनापति अफजलखान के शिविर में जब गायक वेषधारी गौरसिंह पहुँचते हैं तो उस यवन-शिविर का वर्णन मानो यवन-संस्कृति का निदर्शन ही है—

"तत्र च क्वचित् खट्वासु पर्यंकेषु चोपविष्टान् सगडगडाशब्दं ताम्रकधूममाकृष्य, मुखात कालसर्पानिव श्यामलनिश्वासानुद्गिरतः, स्वहृदयकालिमानमिव प्रकटयतः, स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकानिव फूत्कारैरग्निसात्कुर्वतः मरणोत्तरमतिदुर्लभ मुखाग्निसंयोगं जीवनदशायामेवाकलयतः, प्राप्ताधिकारकलितात्सर्वान्यवान् क्वचित् हरिद्रा, हरिद्रा, लशुनं लशुनं, मरिचं मरिचं, चुक्रं चुक्रम्, रामठं रामठम्, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डी, कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम्, पललं पललमिति कोलाहलैर्बालानां निद्रां विद्रावयतः ...... ।"

शिवाजी से मिलने आ रहे अफजल खां की पालकी का वर्णन देखिये—

"सूक्ष्मवसनपरिधानः, वज्रजटितोष्णीषिकः, गलविलुलितपद्मरागमालः, मुक्तागुच्छचोचुम्ब्यमानभालः, निश्वासप्रश्वासपरिमर्षितमद्यगन्धपरिपूरितपार्श्वदेशान्तरालः शोणश्मश्रुकूर्चविजितनूतनप्रवालः, कञ्चुकस्यूतकाञ्चनकुसुमजालः, विविधवर्णवर्णनीयशिविकामारुह्य निर्दिष्टपटकुटीराभिमुखं प्रतस्थे।"

यद्यपि शिवाजी कद में छोटे थे, किन्तु अफजल खां को क्षणभर में धराशायी करने मे बड़े चतुर सिद्ध हुए। देखिए—

"शिववीरस्त्वालिंगनच्छलेनैव स्वहस्ताभ्यां तस्य स्कन्धौ दृढं, गृहीत्वा सिंहनखैर्जत्रुणी कन्धरां च व्यपाटयत्। रुधिरदिग्धं तच्छरीरं कटिप्रदेशे समुत्तोल्य भूपृष्ठेऽशाययत्।"

हिन्दू-यवन संस्कृतियों का चित्रण भी विचित्र बन पड़ा है। हिन्दू एवं यवनों के रहन-सहन, खानपान आदि का मूलभूत अन्तर देखिये—

"यत्र विशालतिलका:, भगवन्नामामृतरस-रसन-रसिक-रसना: महात्मन सप्रश्रयं, सस्तवं, सपादस्पर्शञ्च प्रणम्यन्त:। तत्र च एवाधुना वीथिषु महामांस-डकारपूतिगन्ध सम्मन्धान्धीकृतपारिपार्श्विक: वारवधू-विघ्नष्टभोजिभि. दुराचारहतकैरवहेल्यन्ते, अवघोर्यन्ते, गालिप्रदानपुरस्सरं तिरस्क्रियन्ते, यवनैः ताडयन्ते निःसार्यन्ते च।"

भारतीय संस्कृति चाटुकारिता को कभी भी प्रश्रय नहीं देती, अपितु चाटुकारों की भर्त्सना ही करती है। जब शिवाजी विपक्षी हिन्दूपण्डित गोपीनाथ से बातचीत करते हैं तो उनका वाक्जाल उन्हें निरुत्तर कर देता है। यथा—

"येऽस्मदिष्टदेवमूर्ति भङ्क्त्वा, मन्दिराणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि यवनीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा वेदपुस्तकानि भिदीर्य आर्यवंशीयान् बलात् यवनीकुर्वन्ति, तेषामेव चरणरजोऽञ्जलि बद्ध्वा लालाटिकतामंगीकुर्याम एवं वेद विश्नं कुलकलंकक्लीबम् यः प्राणपणेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासेरकतां वहेत्। यदि चाहमाहवे म्रियेय, बध्येय, ताडयेय वा तदैव धन्योऽहम्, धन्यौ च मम पितरौ।"

शिवाजी योग्य व्यक्ति का आदर करना जानते थे। उन्होंने भूषण कवि को बीस हाथी देकर अपना दरबारी कवि बनाया। वे बड़े धैर्यशील थे। रोशनआरा ने जब उन्हें पहाड़ी चूहा कहा तो किञ्चिन्मात्र भी क्रोधाविष्ट नहीं हुए।

शिवाजी मानते थे, कि हिन्दुओं में पारस्परिक युद्ध सिद्धान्ततः उचित नहीं है। जयसिंह से उन्हें सन्धि तो करनी ही थी, अतः जयसिंह को धर्मसंकट में डालते हुए उन्होंने पूछा था—

"महाराज, भवान् वृद्धो, दीर्घदर्शी राजधर्ममर्मज्ञः मामप्यनुशास्तु। नाहं यवनरुधिरतृषित खड्गं राजपुत्रदेशीयक्षत्रियरक्तैरारक्तयितुमिच्छामि। न वा मम सहचराः स्वबान्धवविशेषैर्भारतकैर्योद्धुमुत्सहन्ते। तद् यदाज्ञाप्यते तदेव मे शिरोधार्यम्। यथा श्रेयो भवति तथैवानुशासनीयोऽस्मि।"

शिवाजी जब अपने अनुचरों से मिलते हैं तो उनका उचित आदर सत्कार एवं कुशल मंगल पूछना नहीं भूलते। वे शत्रुओं के सन्देशवाहकों के प्रति भी समुचित व्यवहार करते हैं। भारतीय संस्कृति की यही विशिष्टता है। यथा—

"इतो इतो गौरसिंह, उपविश, चिराय दृष्टोऽसि। अपि कुशलं कलयसि? अपि कुशलिनः तव सहवासिनः। अप्यंगीकृतं महाव्रतं निर्वहथ यूयम्। अपि कश्चिन्नूतनो वृत्तान्त.?"

शिवाजी को औरंगजेब से भयंकर आशंका थी। शिवाजी यमुना को प्रणाम करके मनौती मांगते हैं—

"भगवति, कृष्णप्रिये, यथा कालियसदनं प्रविश्यापि भगवान् कृष्णः कालोदरं निर्मथ्य निरगात, यथा च नन्दो ग्राहेण गृहीतस्त्वज्जले निमग्नोऽपि वरुणदेवस्यानुग्रहेण सकुशलं परावृत्तः, तथैव चेदहमपि दिल्लीतः स्वपुण्यपुरीं परावर्ते तद् दुग्धधारासहस्रैः, कमलानां लक्षेण, लक्षेण च घृतदीपानां त्वामभ्यर्चयिष्ये।"

शिवाजी स्वयं दिल्ली से निकलकर अपने आश्रितों को संकट में डालना नहीं चाहते थे। राघवाचार्य ने उनके निकल जाने की व्यवस्था भी कर दी थी। अपने आश्रितों पर सहानुभूति रखना भारतीय संस्कृति का आदर्श है। यथा—

"आचार्य, भवादृशे शुभचिन्तके साहाय्यं विदधति, कारागृहस्थोऽपि स्वातन्त्र्यमासादयिष्यामि, किन्त्वहमार्थितान् मृत्युमुखे कवलवन्निपात्य न हि जिजीविषामि ।"

राघवाचार्य ही रघुवीर है – यह जानकर शिवाजी ने उसे गले से लगा लिया और अपने अकृत्य की क्षमा भी मांगी—

"रघुवीर, क्षमस्व, यद्विनापराधमुपकार्यपि तथाऽऽदृतोऽसि । त्वत्पिता जटिलवेदो वीरेन्द्रसिंहः त्वां विना कष्टेन प्राणान् धास्यति । तव पुरोहितो गणेशशास्त्री मरियमर्यावशेष. । श्रूयते त्वां प्राणनाथं मन्यमाना सौवर्णी श्वासमात्रेण जीवति । आगच्छ, सपदि महाराष्ट्रदेशं गत्वा सर्वानुज्जीवय ।"

रुद्रमण्डल दुर्ग पर आक्रमण की गुप्त सूचना मराठों को पहले ही मिल चुकी थी। इसमें मराठों ने बड़ी सूझ-बूझ, साहस एवं वीरता दिखलायी। युद्ध क्षेत्र में दोनों ओर शवों के ढेर लग गये थे– युद्ध का प्रत्यक्ष वर्णन देखिये—

"सर्वे शिवसहचराः हर हर महादेव, इत्युच्चैः प्रयत्नोन्नूय च शाखिशाखान्तरोदरसुप्तपक्षिपटलान्युन्निद्रयन्तः चन्द्रचन्द्रिकासाक्षिकं घोरं युद्धं कर्तुमुपक्रान्तवन्तः । यवनशरभल्लाहता बहवो महाराष्ट्रवीराः सूर्यभेदं स्वर्गं प्रविविक्षमाणाः शिवं प्रणमन्त इव च पेतुः । महाराष्ट्रशासनमुक्तैः शिलीमुखैः आहताः यवनवीराः अपि च बहुशः प्राचीरमुभयतः पेतुः ।"

शिवाजी जब दरबार से लौटे तो उनका अन्तःस्ताप और भी बढ़ गया। महाराष्ट्र लौटने की युक्तियां सोचते-सोचते उनकी नींद भी उड़ गई। अपने प्रान्त की स्मृति ने उन्हें व्याकुल कर दिया। यथा—

"अहह, किं करोमि, क्व गच्छामि, कथं पुनः पुण्यनगरं प्राप्नोमि ? कथं पुनः प्रतापदुर्गशिखरमारुह्य शस्यश्यामलां महाराष्ट्रभूमिमवलोकयामि।

कथं पुनः तोरणदुर्गसम्मुखीनां मारुतिमूर्तिम् प्रणमामि, कथं पुना राजदुर्गस्थराजसिंहासनमधिरोहामि ।"

ग्रीष्म-ऋतु में दिल्ली के हलवाइयों के स्वाभाविक वर्णन का चित्र उपस्थित करते हुए व्यासजी लेखक के व्यावहारिक ज्ञान की निपुणता प्रदर्शित करते हैं। यथा —

"अथ रात्रौ दिल्लीवास्तव्यपक्वान्नपाचकाः परेऽहनि अधिकं पक्तुमादिष्टाः आदिष्टाः। ते च महति विक्रये महांल्लाभः इति समस्तां रजनीं पक्वान्नानि प्रस्तुतवन्तः, दर्वीरचालयन्त, हस्ताभ्यां मोदकान् वर्तुलीकुर्वन्तः, प्रातरेव पर्वतानिव पक्वान्नानां प्रस्तुतवन्तः ।"

इस प्रकार यह उपन्यास भारतीय संस्कृति के तत्वों की सटीक व्याख्या करता है। इसके नायक वीर शिवाजी भारतीय संस्कृति की प्रतिमूर्ति बनकर, इस संस्कृति की रक्षा करने को कटिबद्ध हैं मानों उनका जन्म भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए ही हुआ हो ।

128 मुक्तानन्दनगर,
गोपालपुरा रोड, जयपुर-18

"पं. अम्विकादत्तव्यास विरचित 'शिवराजविजय' का कथानक –मूलस्रोत व परिवर्तन"

● हरमल रेवारी

राजस्थान की वीरप्रसविनी वसुन्धरा न केवल शौर्य और पराक्रम के लिए विख्यात है, अपितु ज्ञान-गाम्भीर्य एवं सारस्वत साधना के लिए भी विश्वविश्रुत है। इस पुण्यभूमि पर पुरातन काल से वीणापाणि शारदा की समाराधन-परम्परा अनवच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस प्रदेश ने ऐसे कविपुङ्गवों को जन्म दिया, जिन्होंने अपनी अशेषशेमुषी से शारदादेवी की समुपासना की है। प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधि निर्बाधगति से प्रवाहित होती हुई काव्यतरङ्गिणी में नानाविध देदीप्यमान कविकमल विलसित हो रहे हैं। 'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक काव्य के प्रणेता संस्कृतगद्यसम्राट् अभिनवबाण पण्डित अम्बिकादत्त व्यास भी जाज्वल्यमान मौक्तिकमाला के सुमेरु हैं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी अनल्पप्रतिभायुत वैखरी से साहित्याकाश को चमत्कृत करने वाले पं. अम्बिकादत्त व्यास का महत्त्व संस्कृत काव्य-लोक में अनुपम है। आपका जन्म चैत्र शुक्लअष्टमी विक्रम संवत् 1915 (ईस्वी सन् 1858) को जयपुर नगर में हुआ तथा शिक्षा भारतवर्ष की प्रसिद्ध विद्यानगरी वाराणसी के पुनीत वैदुष्यपूर्ण वातावरण में हुई। आपने बाल्यकाल से ही हिन्दी और संस्कृत में काव्य रचना का शुभारम्भ कर दिया था। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आप साहित्य

साधना से विमुख नहीं हुए। आपने गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, दृश्यकाव्य, काव्यशास्त्र, दर्शन, मुक्तक, लोकगीत प्रभृति अनेकविध साहित्य-विधाओं में मौलिक और उत्तम रचनाओं का प्रणयन करके सुरभारती के साहित्यागार को तो सम्पुष्ट किया ही, हिन्दी साहित्य की भी महती सेवा की है। आपकी विलक्षण काव्यसाधना से ही आप 'सुकवि', 'घटिका-शतक', 'विहारभूषण', 'भारतरत्न', 'शतावधान', तथा 'भारतभूषण' इत्यादि उपाधियों से विभूषित हुए हैं।

आपने बयालीस वर्ष की अल्पायु में लगभग अस्सी ग्रन्थों की रचना की। आपके द्वारा विरचित रचनाओं में 'शिवराजविजय' 'साङ्ख्य-सागरसुधा', 'पातञ्जलप्रतिबिम्ब', 'कुण्डलीदर्पण' 'सामवतम्', 'बिहारी-विहार', 'धर्माधर्मकलकलम्', 'मिथ्रालापः' इत्यादि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। आपके द्वारा संसृष्ट साहित्य-सम्पदा परिमाणात्मक दृष्टि से ही नहीं, अपितु गुणात्मक दृष्टि से भी अनुपम है।

'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास पं. अम्बिकादत्त व्यास की सर्वोत्कृष्ट कृति है, जो आपको बाण, दण्डी आदि प्राचीन श्रेष्ठ गद्यकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने में समर्थ है। डा. कृष्णकुमार के अनुसार 'इस रचना के द्वारा आपने संस्कृत गद्य को नवजीवन तो प्रदान किया ही, इस देवभाषा में एक नवीन साहित्यिक विधा का सूत्रपात भी किया। इस रचना द्वारा आपने सिद्ध किया कि संस्कृत कोई मृतभाषा नहीं, अपितु इसमें जीवन का सशक्त स्पन्दन है, जो अन्य भारतीय भाषाओं को भी जीवन प्रदान करने का सामर्थ्य रखता है।[1]

प्रस्तुत लेख व्यास जी के इस उपन्यास के कथनायक के मूल स्रोत एवं परिवर्तन विषय को लेकर लिखा गया है जिसमें सामान्यदृष्टि से संक्षिप्ततः उक्त विषय का समालोचन प्रस्तुत किया गया है।

---

1. पं. अम्बिकादत्तव्यास-एक अध्ययन (प्रकाशित शोधप्रबन्ध) प्रथम संस्करण 1971, अध्याय 1, पृष्ठ 1,

शिवराजविजयः कथानक

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक तीन विभागों में विभक्त किया गया है, जिनमें प्रत्येक में चार निश्वास हैं। प्रारम्भ में दक्षिण में मुसलमानों के आधिपत्य एवं अत्याचारों से विक्षुब्ध वीर शिवाजी द्वारा स्वातन्त्र्य-समर का प्रारम्भ, उनकी (शिवाजी की) निरन्तर विजय से चिन्तित बीजापुर दरबार द्वारा उनसे युद्ध करने के लिए अफजलखां के नेतृत्व में सेना भेजना तथा चालाक शिवाजी द्वारा कूटनीति से अफजलखां का वध करके मुस्लिम सेना को खदेड़ देना एवं गौरसिंह व सौवर्णी की कथा वर्णित है।

तदनन्तर शाइस्ताखां के पूना को अधिकृत करके शिवाजी के महलों में निवास करने पर शिवाजी द्वारा उस पर आक्रमण करके उसे परास्त करना, शिवाजी की भूषण कवि से भेंट होना तथा उसे पारितोषिक देकर अपनी सभा में स्थान देने का वर्णन है। इसमें पश्चात् शहजादा मुअज्जम के प्रति भी उनका आदरभाव वर्णित किया गया है। औरंगजेब के द्वारा प्रेषित जयसिंह के साथ युद्ध न करने की सन्धि करने के शिवाजी के निश्चय का भी वर्णन किया गया है। सन्धि के परिणामस्वरूप रोशनआरा और मुअज्जम मुगलों को सौंप दिये गये तथा शिवाजी को दिल्ली दरबार में उपस्थित होना पड़ा। औरंगजेब ने उनका अपमान किया तथा उन्हें बन्दी बना लिया। किन्तु शिवाजी शीघ्र ही कैद से मुक्त होकर महाराष्ट्र आगये। वहां से आने के थोड़े समय पश्चात् ही शिवाजी ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया तथा औरंगजेब के द्वारा भेजे गये मोहब्बतखां को निष्कासित कर दिया। सम्पूर्ण महाराष्ट्र में विजयनाद होने लगा। इसी के साथ प्रस्तुत उपन्यास के कथानक का विराम हो जाता है।

इस उपन्यास में मुख्य कथा शिवाजी से सम्बद्ध है। साथ ही कथा संगठन की दृष्टि से रघुवीरसिंह, गौरसिंह, वीरेन्द्रसिंह आदि की अन्य कथाएं भी इसमें गौणरूप से वर्णित हैं। ये प्रासंगिक कथाएं मुख्यकथा को उत्कर्षप्रदान करने में सहायक हैं।

कथानक का मूलस्रोत एवं परिवर्तन

डा. कृष्णकुमार के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के सत्य और कवि की कल्पना का सम्मिश्रण होता है।[1] 'शिवराजविजय' में ऐतिहासिक सत्य और कल्पनाओं का सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है। इस आधार पर उक्त उपन्यास के कथानक की ऐतिहासिकता एवं काल्पनिकता के सम्यक् विवेचन के लिए इसके मूलस्रोतो को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(अ) ऐतिहासिक स्रोत—

ऐतिहासिक उपन्यास की कथा का मूल आधार 'इतिहास' होता है और इतिहास के द्वारा ही उसमें निवद्ध घटनाओं की प्रामाणिकता तथा उसमे किए गए परिवर्तनो का विवेचन किया जा सकता है। शिवाजी के जीवन के ऐतिहासिक पक्ष की जानकारी के लिए व्यास जी के समय तक ग्रान्ट डफ विरचित 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पुस्तक ही सर्वाधिक प्रामाणिक थी।[2] इसीलिए 'शिवराजविजय' में वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं और उक्त पुस्तक में चित्रित ऐतिहासिक वर्णनों में अधिकांशरुप में साम्य दिखाई देता है। इससे यह प्रतीत होता है कि पं. अम्बिकादत्त व्यास ने इसी पुस्तक को आधार बनाया था। आधुनिक समय तक मराठा इतिहास के विषय में अनेक नवीन अनुसन्धान हुए हैं, जिनके आधार पर सरदेसाई, जादुनाथ सरकार आदि इतिहासकारों ने कई पुरानी मान्यताओं का खण्डन किया और नये तथ्य उपस्थापित किए हैं। 'शिवराजविजय' में वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं का विवेचन करने के लिए इन इतिहास पुस्तकों का भी उपयोग किया गया है।

इतिहास के अनुसार बीजापुर दरबार ने शिवाजी को पकड़ने के लिए अफजलखां को भेजा, जिसने शिवाजी को पकड़ने की कूटनीतिक

1. पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन, अध्याय 3, पृ. 72
2. पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन, अध्याय 3, पृ. 73

योजना बनाई। शिवाजी को इस षडयन्त्र का पूर्वाभास हो गया था। योजनानुसार दोनों की भेंट हुई, जिसमें शिवाजी ने अफजलखां का वध कर दिया।

पं. अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' में अफजलखां द्वारा धोखा देने की योजना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि बीजापुर दरबार ने शिवाजी को कपट से पकड़ने की योजना बनाई और इसके लिए गोपीनाथ पण्डित को प्रेषित किया गया।[1] यद्यपि ग्रान्टडफ ने इस षड्यन्त्र का उल्लेख नहीं किया, फिर भी गोपीनाथ का शिवाजी के पास भेजा जाना[2] वे स्वीकार करते हैं। इनका यह भी मानना है कि अफजलखां पर शिवाजी ने ही पहले आक्रमण किया था।[3]

व्यासजी ने ग्रान्टडफ[4] के आधार पर लिखा है कि शिवाजी ने अफजलखां पर पहले आक्रमण करके उसे मार दिया।[5] किन्तु नवीन गवेषणाओं से जदुनाथ सरकार[6] और सरदेसाई[7] ने यह सिद्ध किया है कि प्रथम आक्रमण अफजल खां ने किया। इसके बाद शिवाजी ने गुप्त शस्त्रों से उसकी हत्या कर दी।

ग्रान्टडफ ने शिवाजी को धोखा देकर पकड़ने की योजना का उल्लेख नहीं किया, किन्तु व्यासजी ने इस षड्यन्त्र की कल्पना की थी। इसके मूल में सम्भवतः नायक को निर्दोष दर्शाने की ही मूलभावना

1. 'शिवराजविजय' पृ. 47 (छठा संस्करण 1945 ई., व्यास पुस्तकालय मानमन्दिर काशी)
2. 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ. 76, 1878 ईस्वी।
3. वही, पृ. 78
4. वही, पृ. 79
5. शिवराजविजय, पृ. 72
6. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. 67, 1948 ईस्वी
7. न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज, पृ. 129, प्रथम संस्करण 1946 ईस्वी।

रही हो।[1] किन्तु अब ऐतिहासिक अन्वेषणों से यह सिद्ध हो चुका है कि बीजापुर दरबार ने शिवाजी को धोखे से पकड़ने का षड्यन्त्र रचा था।[2]

औरंगजेब ने शाइस्त खां को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। शाइस्त खां ने चाणक्दुर्ग को अधिकार में कर लिया और वह शिवाजी के महल में रहने लगा। शिवाजी ने कुछ सैनिकों के साथ एक रात में उस पर धावा बोलकर अनेक रक्षकों, दासियों और खां के पुत्र का वध कर दिया। पलायन करते हुए शाइस्तखां पर खड्गप्रहार किया, जिससे उसकी अंगुलियां कट गई। व्यासजी द्वारा प्रदत्त उक्त घटना के विवरण और ग्रान्टडफ कृत विवरण में अत्यधिक समानता है। यथा—

शाइस्त खां का चाणकयुद्ध से त्रस्त होकर मराठों से दुर्गयुद्ध नहीं चाहना[3], अपनी (शाइस्त खां) अनुमति के बिना किसी को भी पूना में प्रविष्ट नहीं होने का प्रबन्ध करना,[4] मराठों द्वारा महल के पीछे की दीवार तोड़कर आक्रमण करना, भागते हुए शाइस्तखां की खड्गप्रहार से अंगुलियां कट जाना, उसके पुत्र व अनेक रक्षकों का मारा जाना[5] इत्यादि। ग्रान्टडफ के अनुसार शिवाजी ने नगरप्रवेश की अनुमति प्राप्त करने के लिए दो ब्राह्मणों को भेजा था।[6] व्यासजी ने उक्त घटना में

---

1. पं अम्बिकादत्त व्यास – एक अध्ययन, अध्याय 3, पृ. 74
2. (अ) जदुनाथ सरकार 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' 1948, पृ. 65
   (ब) सरदेसाई 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' वोल्यूम 1, पृ. 124
3. (अ) शिवराजविजय, पृ. 151
   (ब) हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज, पृ. 87
4. (अ) वही, पृ. 145 (ब) वही, पृ. 87
5. (अ) शिवराजविजय, पृ. 252-261
   (ब) हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज, पृ. 88
6. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज, पृ. 88

परिवर्तन करते हुए लिखा कि शिवाजी स्वयं ब्राह्मणवेष में वहां गये थे।[1]

इसी के अन्तर्गत शिवाजी द्वारा शाइस्तखां पर किये गये आक्रमण में राजपूत राजा यशवन्तसिंह का हाथ था या नहीं, यह विवादग्रस्त विषय है। 'शिवराजविजय' के अनुसार यह आक्रमण यशवन्तसिंह की जानकारी और सहमति से हुआ था। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध नहीं हो सका। मुस्लिम इतिहासकार खाफिखा ने (सन्देह होते हुए) भी स्पष्टरूप से यशवन्तसिंह पर दोषारोपण नहीं किया है।[2] ग्रान्टडफ का मानना है कि बाद के किसी घटनाक्रम से शिवाजी और यशवन्तसिंह के मध्य किसी प्रकार का प्रेमभाव प्रकट नहीं हुआ है।[3] सम्भवतः व्यासजी ने हिन्दू धर्म और जाति के उद्धार की भावना को उद्दीप्त करने के प्रयोजन से ही इस घटना को परिवर्तित रूप में संयोजित किया है।[4]

'शिवराजविजय' के अनुसार औरंगजेब द्वारा प्रेषित मुअज्जम को शिवाजी के सैनिकों ने बन्दी बना लिया था।[5] इतिहास मुअज्जम का शाइस्तखा के स्थान पर नियुक्त होकर आना तो स्वीकार करता है,[6] किन्तु शिवाजी द्वारा उसको कैद करने की पुष्टि नहीं करता। डा. कृष्ण कुमार ने इस घटना की योजना के मूल में नायक की प्रतिष्ठा-वृद्धि उपन्यास में रोचकता का आपादन और मुसलमानों की विषयलोलुपता के प्रदर्शन को माना है।[7]

---

1. शिवराजविजय, पृ. 155
2. औरंगजेब, पृ. 59, द्वितीय संस्करण 1951 ईस्वी
3. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज, पृ. 8-9
4. पं. अम्बिकादत्त व्यास – एक अध्ययन, अध्याय 3, पृ. 78
5. शिवराजविजय, पृ. 275-76
6. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. 90
7. पं. अम्बिकादत्त व्यास – एक अध्ययन, अध्याय 3, पृ. 79

इस प्रकार, शिवाजी द्वारा स्वयं सूरत नगर पर आक्रमण करना और उसे जीतना इतिहास सम्मत है।[1] व्यासजी ने इस तथ्य में परिवर्तन करके लिखा है कि सूरतनगर को शिवाजी ने नहीं जीता, बल्कि उनके सेनापति धीरेन्द्रसिंह विजयध्वज ने इस पर आक्रमण किया था।[2]

ऐतिहासिक विवरण के अनुसार 30 सितम्बर 1664 ई को औरंगजेब ने राजा जयसिंह और दिलेरखां को शिवाजी से युद्ध करने के लिए भेजा। शिवाजी ने इनसे सन्धि कर ली। इस सन्धि में शिवाजी 35 किलों में से 23 किले मुगलों को सुपुर्द करने और बीजापुर के युद्ध में मुगलों की सहायता करने पर सहमत हो गये। जयसिंह के आश्वासन पर वे औरंगजेब के दरबार में जाने को भी सहमत हो गये।

उक्त ऐतिहासिक घटना में व्यास जी ने कतिपय परिवर्तन किए हैं, यथा—'शिवराजविजय' में यवन सेनापति दिलेरखा और उसके द्वारा किए गए युद्धों का वर्णन नहीं किया गया। वहीं जयसिंह से अपनी पराजय अङ्गीकार करने की शिवाजी की कमजोरी पर देवशर्मा के भविष्य कथन से पर्दा डालने का प्रयत्न किया गया है।[3] इतिहास के अनुसार शिवाजी ने रघुनाथपन्त को जयसिंह के पास भेजा था,[4] जबकि 'शिवराजविजय' में माल्यश्रीक, वृद्धपुरोहित और भूषणकवि के भेजे जाने का उल्लेख है।[5] जयसिंह और शिवाजी के मध्य हुई सन्धि की शर्तों के विषय में भी 'शिवराजविजय' और इतिहास में अन्तर दृष्टिगत होता है। जैसे-ऐतिहासिक वर्णन के अनुसार शिवाजी ने औरंगजेब को 'कर देना स्वीकार करके मुगलों को अनेक किले लौटा दिए और बीजापुर के अनेक

1. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. 91
2. शिवराजविजय, पृ. 287
3. वही, पृ. 337
4. ग्रान्ट डफ 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ. 93
5. 'शिवराजविजय' पृ. 339

किले भी मुगलों के लिए जीते[1], जबकि व्यासजी ने रोशनआरा और मुअज्जम को खोजकर मुगलों को सौंपने सम्बन्धी शर्त[2] का भी उल्लेख किया है।

इसके पश्चात् शिवाजी के औरंगजेब के दरबार में जाने से सम्बद्ध घटना मे भी परिवर्तन किया गया है। कुछ इतिहासकारों ने शिवाजी का आगरा जाने का उल्लेख किया है।[3] जबकि 'शिवराजविजय' में दिल्ली जाने का वर्णन है।[4] यह वर्णन ग्रान्टडफ[5] के अनुसार प्रस्तुत किया गया है।

इसी प्रकार 'शिवराजविजय' में उल्लेख है कि शिवाजी के साथ जयसिंह के सौ घुड़सवार भी दिल्ली तक गये थे।[6] किन्तु इतिहास इसकी पुष्टि नही करता। इतिहास में शिवाजी के साथ उनके पुत्र सम्भाजी के दिल्ली जाने का उल्लेख मिलता है, जबकि 'शिवराजविजय' मे यह वर्णन अप्राप्य है। डा. कृष्णकुमार ने सम्भाजी का उल्लेख नहीं करने के पीछे जो कारण बताया वह है, शिवाजी और रोशनआरा के प्रेम-प्रसंग की रोचकता मे व्याघात उत्पन्न होना।[7] शिवाजी के दिल्ली से दक्षिण लौटने की घटना मे भी परिवर्तन किया गया है। इतिहासकार ग्रान्टडफ के अनुसार शिवाजी सर्वप्रथम रायगढ़ पहुंचे[8] जबकि 'शिवराजविजय' में उनकी प्रथम उपस्थिति प्रतापदुर्ग में दर्शाई गई है।[9]

---

1. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज, पृ. 94
2. 'शिवराजविजय', पृ. 354-355
3. (अ) जदुनाथ सरकार: 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ. 135
   (ब) सरदेसाई: न्यू हिस्ट्री आफ दी मरट्टाज, पृ. 168
4. 'शिवराजविजय', प. 412
5. 'हिस्ट्री आफ दी मरट्टाज' प. 91
6. 'शिवराजविजय' पृ. 402
7. पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन, अध्याय पृ. 83
8. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज, पृ. 97
9. शिवराजविजय, पृ. 496, 511-513

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिवाजी के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं की ऐतिहासिकता को व्यासजी ने सुरक्षित रखने का यथा-सम्भव प्रयास किया है। उपन्यास के काव्यविधा होने के कारण कथानक संघटन की दृष्टि से कुछ घटनाओं में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किये हैं। प. अम्बिकादत्त व्यास ने कलाकार के सत्य और इतिहास के सत्य का समन्वय करते हुए राष्ट्रीय और जातीय गौरव की भावनाओं को उद्‌बुद्ध करने का प्रयत्न किया है और इस प्राचीन इतिहास से अपने युग की समस्याओं को हल करने का उद्योग किया है।[3]

(ब) काल्पनिक स्रोत

ऐतिहासिक उपन्यास में यद्यपि मूल आधार 'इतिहास' होता है, किन्तु काव्य (उपन्यास) में इतिहास की नीरसता के अपाकरण के लिए काल्पनिकता का समावेश आवश्यक है, जिसमें पाठक काव्यानन्द की प्राप्ति कर सके। व्यास जी ने भी ऐतिहासिक घटनाओं में कुछ काल्पनिक घटनाओं का समावेश किया है जिनमें कुछ तो उनकी निजी कल्पना है, जबकि कुछ उन्होंने पूर्ववर्ती उपन्यासों (महाराष्ट्र जीवन प्रभात व अंगुरीयविनिमय) से ग्रहण करके उन्हें स्वरचना कौशल से संजोया है। निःसन्देह ये घटनाएं उपन्यास में सरसता का आधात करने वाली है, जिन्हें इस रूप में देखा जा सकता है।

'शिवराजविजय' की काल्पनिक घटनाओं पर 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' नामक उपन्यास का पर्याप्त प्रभाव है। शिवाजी के मुगल दरबार में जाने और वहां से लौटने के वर्णन में इन दोनों उपन्यासों मे काफी समानता है। कतिपय स्थलों पर वैषम्य भी दृष्टिगोचर होता है। जैसे-(i) 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में शिवाजी के साथ उनके पुत्र की भी मुगल दरबार में उपस्थिति दिखाई गई है, जबकि व्यास जी ने उल्लेख नहीं

3. पं. अम्बिकादत्त व्यास–एक अध्ययन, अध्याय 3, पृ. 87

किया। (ii) 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' के अनुसार दिल्ली से भागने की योजना मे माल्यश्रीक का योगदान था, जबकि 'शिवराजविजय' के अनुसार यह कार्य सुरेश्वर ने किया था।[1]

'शिवराजविजय' में चित्रित शिवाजी और रोशनआरा के प्रणय की पुष्टि किसी ऐतिहासिक प्रमाण से नहीं होती है। पं अम्बिकादत्त व्यास ने इस प्रसंग की कल्पना 'अंगुरीयविनिमय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास से ग्रहण की है, क्योंकि इन दोनों के कल्पना प्रसंगों में बहुत साम्य प्रतीत होता है। यद्यपि व्यास जी ने उक्त उपन्यास से कल्पनाओं का ग्रहण किया है, तथापि यथावसर उनमें परिवर्तन भी किये है। यथा—

(i) 'अंगुरीयविनिमय' में वर्णन किया है कि शिवाजी ने रोशन आरा के अपहरण के लिए एक निश्चित योजना बनाई और उनके सैनिकों ने रोशनआरा का अपहरण लिया।[2] जबकि 'शिवराजविजय' मे शिवाजी के सैनिकों द्वारा रोशनआरा के अपहरण का उल्लेख है। इस योजना में शिवाजी का कोई योगदान नही है।[3] इस प्रकार अपहरण की योजनाओं में अन्तर होते हुए भी दोनो उपन्यासों में एक ही उद्देश्य दर्शाया गया है।[4]

(ii) 'अंगुरीयविनिमय' में उल्लेख है कि शिवाजी के साथ एक सैनिक ने विश्वासघात किया, इसलिए वे तोरणदुर्ग छोड़कर भाग गए और रोशनआरा मुगलों के अधिकार में चली

---

1. पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन, अध्याय 3, पृ. 90
2. वही, पृष्ठ 90
3. 'शिवराजविजय' पृ. 242-245
4. (अ) पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन, पृ. 91
   (ब) शिवराजविजय, पृ. 272

गई ।[1] जबकि 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी और जयसिंह के मध्य सम्पन्न सन्धि के फलस्वरूप रोशनआरा मुगलों को सौंपी गई थी ।[2]

(iii) अंगुरीयविनिमय के अनुसार शिवाजी जब दिल्ली गये तो रोशनआरा ने उनको पाने का कोई प्रयास नहीं किया । केवल अन्तःपुर से उनको देखा ।[3] 'शिवराजविजय' के अनुसार रोशनआरा ने शिवाजी के दर्शन न करके अपनी सखी के माध्यम से दो बार प्रणयसंदेश भेजा ।[4]

इससे स्पष्ट है कि व्यास जी ने 'अंगुरीयविनिमय' से शिवाजी और और रोशनआरा के प्रणय कथा के संकेत लेकर उसमें यथारुचि परिवर्तन भी किए हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि गद्यसम्राट् पं व्यास जी ने ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों स्रोतों से कथ्य सामग्री लेकर उसमें अपनी कथा योजना के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किये हैं । आपने एक सफल उपन्यासकार की दृष्टि से ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाकर उसमें कुछ परिवर्तन करते हुए चारुत्व एवं स्वारस्य के आस्वादन हेतु काल्पनिकता का भी समावेश किया है, जो आपके उत्कृष्ट गद्य-कौशल का परिचायक है ।

शोध-छात्र
(यू जी. सी)
संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1. पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन पृ. 91
2. शिवराजविजय, पृ.354
3. पं. अम्बिकादत्त व्यास-एक अध्ययन पृ. 92
4. शिवराजविजय, पृ. 415-418, 449-454

पं० अम्बिकादत्त व्यास का नाट्य साहित्य

● डॉ० प्रभाकर शास्त्री

यद्यपि 'अभिनव-बाण' के नाम से विश्रुत महाकवि पं अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत साहित्य के इतिहास मे ऐतिहासिक गद्य काव्य "शिवराज-विजय" के माध्यम से बहुचर्चित रहे हैं, तथापि उनकी अन्यान्य रचनाओं पर भी विवेचन अत्यावश्यक है। उनकी संस्कृत रचनाओं मे नाट्य विधा के अन्तर्गत उन तीन रूपकों की चर्चा करना आवश्यक है, जिनके सम्बन्ध में अधिकांश लोग अपरिचित है। "विहारीविहार" नामक पुस्तक के अन्तिम भाग मे उनके ग्रन्थों का विवरण प्राप्त होता है, परन्तु उस सूची में उनके एक ही रूपक "सामवतम्" का उल्लेख किया गया है। "सामवतम्" रूपक के अध्ययन मे यह तथ्य उजागर होता है कि उन्होंने तीन संस्कृत रूपको की रचना की थी। उनके नाम हैं—

(1) सामवतम्

(2) धर्माधर्मकलकलम् तथा

(3) मित्रालापः

व्यासजी के नाटकों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, जिसका नाम है—"मन की उमंग"। इस संग्रह में पांच रूपक हिन्दी में तथा दो रूपक संस्कृत मे हैं। संस्कृत के रूपकों का नामोल्लेखन ऊपर किया जा चुका है। इन रूपकों को उन्होने धार्मिक उत्सवों पर अभिनय करने की दृष्टि से लिखा था। "मन की उमंग" संग्रह की भूमिका से यह भी सूचना प्राप्त होती है कि इनका अभिनय मुजफ्फरपुर की धर्मसभा

में सम्पन्न हुआ था। हिन्दी के रूपकों में "ललिता नाटिका", "गोसंकट" नाटक, "भारत सौभाग्य", "कलियुग और घी" तथा "मन की उमंग" प्रसिद्ध हैं। "मन की उमंग" में निम्नलिखित पांच रूपकों का संकलन है, जो हैं—

(i) भारतवर्ष (ii) धर्म पर्व (iii) संस्कृत-संताप (iv) देव-पुरुष दृश्य तथा (v) जटिल वणिक्।

इन समस्त हिन्दी रूपकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(1) ललिता नाटिका—इसकी रचना काशीस्थ ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के पं. रामशिश्र शास्त्री के अनुरोध पर रासलीला का सुगमता से अभिनय कराने के लिए की गई थी। यह शृङ्गार और हास्य रसमय गीत प्रधान रचना है, जो ब्रजभाषा में निबद्ध है। इसकी समाप्ति शान्त रस में होती है। इस नाटिका में बालस्वरूप गोपालकृष्ण तथा गोपिका ललिता का शृङ्गार वर्णन ललित गीतों और संवादों द्वारा किया गया है। इस नाटिका की रचना सम्वत् 1935 में हुई थी तथा हरिप्रकाश यंत्रालय काशी से 5 वर्ष बाद प्रकाशित हुई थी। इस नाटिका के गीत, ललित, मधुर, गेय और आकर्षक हैं। इसके संवादों में व्यंग्यात्मकता, वक्रोक्ति तथा अनेक स्थलों पर चुटीलापन है।

(2) गोसंकट नाटक—भारतीय संस्कृति के परम संरक्षक तथा हिन्दू धर्म के प्रति आस्थावान् व्यासजी ने इस रचना के द्वारा समस्त हिन्दुओं को गोरक्षा के लिए सम्बोधित किया है। मुसलमान गोवध करने में तत्पर रहे हैं, किन्तु हिन्दू उसे माता के समान सम्मान देते रहे हैं। ऐसा कहा जाता है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के प्रोत्साहन से इस नाटक की रचना सम्वत् 1939 में सम्पन्न हुई। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम "उचित वक्ता" नामक पत्रिका (सन् 1882) में हुआ तथा बाद में सम्वत् 1941 में खड्गविलास प्रेस से पुस्तक के आकार में इसका प्रकाशन हुआ।

इस नाटक का कथानक अकबर बादशाह के समय का है। इसमें श्री व्यास ने मुसलमानों का नृशंस और हिन्दुजाति पर अत्याचार करने

वाला रूप व्यक्त किया है। उनका कथन है कि मुसलमान केवल हिन्दुओं को उत्तेजित करने के लिए गोवध किया करते थे। आपने इस नाटक में गो की उपयोगिता का विशद वर्णन किया है। इस नाटक की भाषा सशक्त एवं प्रवाहमयी है, संवाद ओजस्वी हैं, और वस्तुस्थिति का चित्रण सजीव बन पड़ा है। मुसलमानों के अत्याचारों का भी मर्मस्पर्शी वर्णन है। एक बार गोवध के लिए जिद करने वाले मुसलमानों से हिन्दु बलात् उस गाय को छुड़ा तो लेते हैं, परन्तु उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। सारे विषय की जानकारी कर अकबर गोवध के निषेध की आज्ञा प्रसारित करता है। यह नाटक उद्देश्य और काव्य दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

(3) भारतसौभाग्य—सम्वत् 1944 में इस नाटक की रचना की गई, जो उसी वर्ष खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुआ। श्री कृष्णमिश्र रचित "प्रबोधचन्द्रोदय" नाटक के सदृश्य यह भी एक भावात्मक रूपक है जिसमें भारतसौभाग्य, विषयभोग, भारतदौर्भाग्य, प्रताप, उत्साह तथा शिल्प पुरुष पात्र है तथा मूर्खता, फूट, शिक्षा, एकता, भारत-पताका, अंग्रेजीपताका, राजभक्ति, यंत्रविद्या, उदारता तथा दया स्त्री पात्र हैं। नाटककार की यह मान्यता प्रकट होती है कि अंग्रेजों के शासन से पूर्व मुसलमानों के शासनकाल में इस भारत की अत्यन्त दुर्दशा थी। अंग्रेजों के शासन से यहां सुव्यवस्था हुई, इसका श्रेय महारानी विक्टोरिया को दिया गया है। इसीलिए अनेक भाषाओं में रचित कविताओं द्वारा महारानी विक्टोरिया के प्रति शुभकामनाएं व्यक्त की गई हैं। नाटक की भाषा प्रौढ़ और प्राञ्जल है। इस नाटक से व्यासजी की बहुभाषाविज्ञता प्रकट होती है।

(4) **कलियुग और घी**—यह छोटा सा रूपक है, जिसमें कवि ने घी में मिलावट के कारण हृदय की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। उनकी यह मान्यता है कि कलियुग के प्रभाव से ही घी में चर्बी आदि अपवित्र द्रव्यों का संयोग हुआ है। इस रूपक की रचना सम्वत् 1942 में हुई।

यह उसी वर्ष नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर से प्रकाशित हुआ। यह रूपक वस्तुतः एक प्रचारात्मक रचना है, जिसमें कवि ने हिन्दुओं की सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराओं में सुधारों का विरोध किया है। उस समय आर्यसमाजियों और ब्रह्मसमाजियों द्वारा किए जाने वाले बालविवाह और मूर्तिपूजा के खण्डन आदि का विरोध इस रूपक में है। अपने कथन की पुष्टि के लिए श्रीव्यास ने स्थान-स्थान पर संस्कृत के वाक्यों व श्लोकों को उद्धृत किया है।

(5) भारतधर्म—इसका प्रकाशन 'मन की उमग' सग्रह में हुआ है। इसमें भारतीय-भाषा, वेशभूषा, संस्कृत एव सनातन धर्म पर पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव की चर्चा की गई है। उनकी यह मान्यता है कि प्राचीन गौरव की गरिमा से ही भारत उन्नति कर सकता है।

(6) धर्मपर्व—इसमें भी व्यासजी की भारतीय धर्म, संस्कृति, भाषा, आदि के प्रति हार्दिक आस्था तथा भारतीयता के ह्रास से उत्पन्न मार्मिक पीडा अभिव्यञ्जित हुई है। इसके द्वारा वे भारतीय जनमानस को स्वदेशी कर्म, धर्म और उन्नति के प्रति संकल्पित करते हैं यह रूपक संवादात्मक शैली में है।

(7) संस्कृतसन्ताप—इस रूपक में लेखक ने संस्कृत भाषा की अवनति पर खेद प्रकट किया है। लेखक के काल में शासकों की भाषा अंग्रेजी तथा उससे पहले उर्दू का ही प्रचार था। उनकी दृष्टि में भारतीय धर्म तथा संस्कृति का आधार संस्कृत ही है। अतः इनके पुनरुत्थान के लिए सस्कृत की उन्नति करना आवश्यक है।

(8) देवपुरुष-दृश्य—इस रूपक में व्यासजी ने ब्राह्मणों को भारत के प्राचीन गौरव का आधार-स्तम्भ स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि प्राचीन काल के धार्मिक, सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मणों के कारण ही भारत की गरिमा थी।

(9) जटिल-वणिक्—इस रूपक में व्यासजी ने मुसलमानी राज्य की अपेक्षा अंग्रेजी राज्य की श्रेष्ठता अभिव्यक्त की है। इसके लिए उन्होंने एक जटिल तपस्वी और एक वणिक् का वार्तालाप कराया है। एक जटिल तपस्वी जब अपनी तपस्या से उठता है तो वह चित्तौड़ की रक्षा तथा उस पर मुसलमानों के आक्रमण की घटना से क्षुब्ध है तथा उनका संहार करने के लिए उस वणिक् से वह खड्ग मांगता है, परन्तु वणिक् वह बताता है कि मुसलमानों का शासन समाप्त हो चुका है तथा इस समय राज-राजेश्वरी विक्टोरिया का राज्य है। इस समय प्रजा सुखी और धर्माचरण में पूर्ण स्वतन्त्र है।

उपर्युक्त हिन्दी रूपकों के परिचय के बाद संस्कृत रूपकों की चर्चा आवश्यक है। इनमें भी उन दो रूपकों पर चर्चा की जा रही है, जिनका प्रकाशन 'मन की उमंग' में हुआ है। व्यासजी ने "धर्माधर्म-कलकलम्" और "मित्रालाप." के रूप मे एक नवीन रचना शैली संस्कृत नाट्यपरम्परा मे जोड़ी है। इन दोनों रूपको का आधार बहुत छोटा है। दोनों एक-एक संवाद के छोटे रूपक हैं। कुछ पद्यों से युक्त यह संवाद प्रधानतः गद्य में है और नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से इस रचना को किसी नाट्यविधा में परिगणित नहीं किया जासकता।

वस्तुतः व्यास जी की इन दोनों कृतियों को शास्त्रीय दृष्टिकोण से 'रूपक' नाम देना युक्तियुक्त भी नहीं है। कथावस्तु, पात्र, नायक आदि किसी भी दृष्टि से इनको रूपक नहीं कहा जा सकता। 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में होने वाले सामाजिक सुधारों से उद्विग्न होकर अथवा उस आन्दोलन के विरोध मे श्रीव्यासजी ने इन रचाओं को प्रस्तुत किया है। इन दोनों रचनाओं को यदि संवाद मात्र कह दिया जाय तो अनौचित्यपूर्ण नहीं होगा। इसलिए उनकी सुप्रसिद्ध नाट्य रचना "सामवतम्" पर ही विस्तार से विवेचना की जा रही है।

सामवतम्

कथावस्तु—इस नाटक के प्रारम्भ में एक लम्बी प्रस्तावना लिखी है, जिसमें मिथिलादेश और वहां के राजा का अत्यन्त विस्तार से तथा

नाट्य एवं कवि का परिचय संक्षेप मे प्रस्तुत किया है। परम्परानुसार प्रस्तावना के अन्त में नटी द्वारा उक्त वाक्य को लेकर नाटक का आरम्भ किया गया है।

सारस्वत और वेदमित्र नामक ऋषि अपने पुत्रों-सामवान् एवं सुमेधा को विवाह के लिए धन प्राप्त करने हेतु विदर्भराज के पास भेजते है। जब ये दोनों विदर्भराज के पास जाने के लिए प्रस्थान करते है, तो मार्ग मे वन के प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ऋषियों के आश्रम के समीप संगीत की ध्वनि सुनते है। एक आश्रम में स्थित दुर्वासा मुनि अपने मित्रपुत्र सामवान् को पुकारते है, परन्तु सामवान् उनकी आवाज को नही सुनता, क्रोधवश दुर्वासा उसे स्त्री हो जाने का शाप दे देते है, जिसका भी सामवान् को परिज्ञान नही होता।

विदर्भनगर में होलिकोत्सव का समय है, वहा का अमात्य अपनी प्रजा से सीमा में रहकर होली खेलने का आदेश देता है। उसी समय सामवान् और सुमेधा वहां पहुंचते है। राजा का मित्र विदूषक उन दोनो ऋषिकुमारों को होली के रग में रंगना चाहता है, किन्तु अमात्य उसे रोकते है परन्तु उसकी हठधर्मिता के कारण विदूषक को बन्दी बना लिया जाता है। इधर राजपुरोहित देवशर्मा वहां के वातारण से भयभीत दोनों ऋषिकुमारो को अपने साथ ले जाते हैं। दूसरे दिन विदर्भराज के मित्र चित्राङ्गद की पत्नी सीमन्तिनी ने भगवान् कृष्ण के दोलोत्सव का आयोजन किया है और उत्सव के बाद ब्राह्मण दम्पतियो को भोजन एवं दक्षिणा देने का व्रत लिया है। राजपुरोहित देवशर्मा दोनों मुनिपुत्रों के साथ राजसभा में आते हैं, जहां विदूषक और मद्यपान से मत्त राजा उनका उपहास करते हैं। मुनिपुत्र अपने आगमन का प्रयोजन राजा से निवेदित करते हैं। मुनिपुत्रों पर चिढ़े हुए विदूषक की सलाह मे राजा आदेश देता है कि महाराजा चित्राङ्गद की रानी सीमन्तिनी के द्वारा सोमवार को ब्राह्मण दम्पतियों को दिये जाने वाले भोजन में सुमेधा पति के रूप मे तथा सामवान् उसकी पत्नी का रूप बनाकर वहां उपस्थित हों और

दानदक्षिणा प्राप्त कर अपने आश्रम को लौट आएं। विवश होकर दोनों मुनिपुत्रों को राजाज्ञा मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

राजा के पाप के कारण विदर्भराज्य में बहुत उपद्रव होते हैं। लूट-पाट व अन्य उत्पात होते हैं। एक ब्रह्मचारी आकर सूचित करता है कि स्त्रीवेश को धारण किए हुए सामवान् को महारानी सीमन्तिनी ने मातृ-भाव से पूजा की, अतः उनके भक्तिभाव के प्रभाव से सामवन् वास्तव में स्त्रीत्व को प्राप्त हो गए और अब दोनों जंगल के मार्ग से आश्रम को लौट रहे हैं। स्त्रीरूप धारण किए हुए सामवान् को साथ लेकर सुमेधा जब आश्रम लौट रहे है, तब मार्ग में सामवान् जो अब सामवती के रूप में हैं, काम पीड़ित होकर सुमेधा से प्रणय याचना करती है। सुमेधा को आश्चर्य होता है, परन्तु सामवती उसके अविश्वास को दूर करने के लिए अपने अंगों को दिखाती है। सुमेधा किसी प्रकार सामवती को समझाकर आश्रम ले आते हैं, जहां पुत्र के स्त्रीरूप होने से दुःखी सारस्वत अत्यधिक क्रुद्ध होते हैं, वे अगले ही दिन राजा को इस धृष्टता का दण्ड देने का संकल्प करते हैं। रात्रि में राजा को दुःस्वप्न होते हैं, राजा जब इसका कारण पुरोहित से पूछता है, तो उसे यह समाचार मिलता है कि अत्यन्त क्रुध सारस्वत मुनि राजा के पास आ रहे हैं। राजा उनसे क्षमायाचना करता है और मुनि को इस प्रार्थना को स्वीकार कर लेता है कि वह सामवती को पुनः पुरुषरूप में परिवर्तित करने के लिए देवी की आराधना करेगा। राजा की भक्ति से प्रसन्न देवी जगदम्बिका प्रकट होती है, परन्तु वह महारानी सीमन्तिनी की चेष्टा के विरुद्ध कुछ भी करने में समर्थ नहीं है। वह राजा की प्रार्थना पर सारस्वत को एक पुत्र का वरदान देकर सन्तुष्ट करती है और सामवती व सुमेधा का विवाह करने का आदेश देकर अन्तर्धान हो जाती है। दोनों के विवाह की व्यवस्था का दायित्व राजा उठाता है और इस प्रकार सुमेधा एवं सामवती का विवाह हो जाता है।

कथावस्तु का स्रोत एवं समीक्षण

'सामवतम्' की कथावस्तु के स्रोत के सम्बन्ध मे विवाद इसलिए नहीं है कि स्वयं लेखक श्रीव्यासजी ने नाटक के उपोद्घात में इस ओर संकेत किया है। स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड की एक कथा को उन्होने अपने कथानक का आधार बनाया है। 'सामवतम्' के उपोद्घात मे प्राप्त निम्नलिखित पंक्तिया इस कथन को परिपुष्ट करती है—

"स्कन्दपुराणीय-ब्रह्मोत्तरखण्डे सोमव्रतप्रकरणे सीमन्तिन्या पार्वती-धिया पूजितः पुरुषोऽपि सामवांस्तद्भक्तिमहिम्ना स्त्रीत्व लेभे इति संक्षिप्ताऽस्याख्यायिका। सेव समूलेति पवित्रेति मनोहरेति अद्भुतेति भिक्षादायिनीति भक्तिपर्यवसायिनीति च मया तामेवाऽऽश्रित्य बहूनि सहायकानि रसो जृम्भकाणि कौतुकोत्पादकानि कार्यनिर्वहणक्षमाणि बिन्दुप्रकरीपताकास्थानकादिसंघटकानि पात्राणि प्रकल्प्य विषयममुमंक षट्के विभज्य नाटकमिदं घटितम्।"

स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तरखण्ड के अष्टम अध्याय की इस कथा का शीर्षक है 'सोमवारव्रतवर्णने सीमन्तिनी-कथावर्णनम्।' इस कथा के अनुसार सीमन्तिनी का पति नदी में डूब जाता है, किन्तु उसके द्वारा सोमवार का व्रत करने से वह उसे पुनः प्राप्त हो जाता है। नवम अध्याय में सीमन्तिनी के व्रत के प्रभाव का वर्णन है और यही 'सामवतम्' के कथानक का स्रोत है। इस नवम अध्याय की कथा का संकेत इस प्रकार है—विदर्भदेश में वेदमित्र और सारस्वत दो ब्राह्मणों का होना, इनमें सुमेधा और सामवान् नामक दो पुत्र, विवाह योग्य होने पर इन्हें धन-प्राप्ति के लिए विदर्भ नगर भेजना, इनका विदर्भराज से धनप्राप्ति के लिए निवेदन करना, प्रत्युत्तर में विदर्भराज का निषधदेश की महारानी सीमन्तिनी द्वारा प्रतिसोमवार साम्ब सदाशिव की पूजन तथा वेदज्ञ ब्राह्मणों को धनादि वितरण करने की सूचना देना, इसीलिए उन्हें दम्पती के रूप में वहां जाकर सोमवार को सम्पत्ति प्राप्त करने का आदेश देना, सीमन्तिनी द्वारा इन ब्राह्मण पुत्रों को कृत्रिम दम्पती जानकर

भी ससम्मान घनादि-प्रदान कर सम्मानित करना, पार्वती बुद्धि से पूजित होने के कारण पतिव्रता सीमन्तिनी के प्रभाव से सामवान् का पुरुषत्व को भूलकर स्त्रीरूप होकर मित्र पर आसक्त होना, स्त्री चिह्नों से युक्त अपने मित्र को देखकर सुमेघा का उसे समझाना व आश्रम लौटकर अपने पिता आदि से सारा वृत्तान्त सुनाना, दोनों ब्राह्मणों का क्रोध एवं शोक से विह्वल होकर विदर्भराज के पास जाना, सारस्वत का राजा से अपने पुत्र के कन्या रूप में परिवर्तित होने की घटना का संकेत करना, विदर्भराज का विस्मृत होना, सभी का अम्बिका मंदिर में पहुंचना, तीन दिन तक निराहार रहकर देवी की उपासना करना, भगवती का प्रकट होना और अपने द्वारा किए हुए परिवर्तन पर पुनर्विचार न करने के निर्णय को घोषित करना, सारस्वत की प्रार्थना पर उसे सन्तुष्ट करने के लिए द्वितीय पुत्र का वरदान देना, तथा सामवती को सुमेघा की पत्नी घोषित करना, सभी का आश्रम लौटकर आना तथा देवी के कथनानुसार कार्य सम्पन्न करना।

स्कन्दपुराण की इस कथा को व्यासजी ने नाटकीय रूप दिया है। इसलिए उन्होंने नाटक के उपयुक्त नान्दी प्रस्तावना, अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, सन्धि आदि से युक्त करके और नवीन पात्रों तथा घटनाओं की कल्पना करके रसनिष्ठ नाटक के रूप में परिणत किया है। मूल कथानक के रूप को यथासम्भव सुरक्षित रखते हुए आपने कुछ परिवर्तन भी किए हैं। इस प्रकार स्कन्दपुराण की कथा तथा 'सामवतम्' की कथा में निम्नलिखित अन्तर है—

(1) पुराण की कथा में नाटकीय सौंदर्य उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित पात्रों की विशेषतः कल्पना की गई है—वन्यूजीव, कलि, दुर्वासा, जटिल (बहरा ब्राह्मण), राजभट, अमात्य, वसन्तक, देवशर्मा, राजपुरोहित, सीमन्तिनी का उद्यानरक्षक और पुरोहित, भतआदि भिक्षु, ब्रह्मचारी, धीवर, प्रतीहार, मदालसा, इन्दुवदना, नर्तकी, मालतिका और मधुरवचना।

(2) पुराण की अपेक्षा नाटक मे पात्रो को अधिक सशक्त एवं सामर्थ्यशाली चित्रित किया है। पुराण में सारस्वत और वेदमित्र विनयशील एवं सामान्य ब्राह्मण होते हैं, जबकि 'सामवतम्' में उन्हें अधिक तपस्वी, शक्ति-सम्पन्न, क्रोधी एवं सामर्थ्यवान् चित्रित किया है। स्कन्दपुराण में विदर्भराज को विनयी राजा बताया है, जबकि 'सामवतम्' में अधिक उच्छृङ्खल किन्तु ऋषियों से भयभीत होने वाला चित्रित किया है।

(3) नाटकीय सौन्दर्य एवं सशक्तता के लिए अनेक घटनाओं तथा वर्णनों की कल्पना है—यथा, सामवान् और सुमेधा के प्रस्थान के समय मांगलिक कृत्य, यज्ञधूम से अन्धे कलि द्वारा ऋषिपुत्रो के प्रति कोप और राजा की बुद्धि का भ्रष्ट करना, अप्सराओ का पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर गायन करना, दुर्वासा का शाप, विदर्भनगर में होलिकोत्सव, ऋषिपुत्रों द्वारा नगर परिभ्रमण एवं सौंदर्य का अवलोकन, राजसभा का संगीत-नृत्य, ग्रामो को लूटा जाना, ब्रह्मचारी की अलौकिक शक्तियां, वन की मनोहारी सुषमा, सारस्वत का राजा के प्रति प्रचण्ड कोप, देवी की स्तुति, राजा द्वारा ऋषियों से क्षमा प्रार्थना, सामवती और सुमेधा की विरहावस्थायें, वैवाहिक विधि आदि के वर्णन कवि ने प्रस्तुत किये हैं।

(4) पुराण के कथानक में ब्राह्मणवर्ग एवं तपस्वियों को अत्यन्त सामान्य रूप में चित्रित किया है, जबकि 'सामवतम्' में कवि ने इन दोनों का विशिष्ट प्रभावशाली वर्णन किया है।

(5) पुराण की कथा में सामवान् के स्त्रीरूप में परिणत होने का एकमात्र कारण महारानी सीमन्तिनी का प्रभाव बताया है, जबकि कवि ने पूर्वजन्म कृत कर्म, दुर्वासा का शाप तथा कलि के कोप को भी कारण माना है।

(6) पुराण की कथा में विदर्भराज की बुद्धि के भ्रष्ट होने का कोई विशेष कारण नहीं दिया गया, किन्तु सामवतम् में कवि ने अनेक कारण प्रस्तुत किए और उनसे राजा के दोषों को कम करने का प्रयत्न किया है इनमें कलि द्वारा वसन्तोत्सव में राजा की बुद्धि को भ्रष्ट करना, सीमन्तिनी के आवास से निकाले गए भूत-प्रेतों का राजसभा में आना, तथा विदूषक की प्रेरणा से राजा की बुद्धि का भ्रष्ट होना प्रमुख है।

उपर्युक्त बिन्दुओं से यह स्पष्ट है कि व्यासजी ने पुराण की सीधी-साधी कथा को नाटकीय रूप देने में पर्याप्त श्रम किया है। इस श्रम पर अन्यान्य कवियों का प्रभाव भी रहा है। उदाहरणार्थ नाटक के प्रथमाङ्क में सामवान् और सुमेधा, इन्दुमती और मदालसा की वार्ता को तथा इनके गायन को छिपकर सुनते हैं। दुर्वासा द्वारा सामवान् को शाप दिया जाता है। नेपथ्य से हाथी के उपद्रव को सुनकर अप्सराएं घबराकर चली जाती है। इन सब घटनाओं पर महाकवि कालिदास के "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी प्रकार छठे अंक में नायिका की विरहवेदना का ज्ञान नायक को सारिका के द्वारा होता है, जिस पर श्रीहर्ष की रत्नावली का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

'सामवतम्' नाटक में दोनों प्रकार की कथावस्तु प्राप्त होती है— आधिकारिक और प्रासंगिक। इनमें सामवती और सुमेधा का कथानक आधिकारिक है, तथा होलिकोत्सव, नगरभ्रमण, भिक्षु, अमात्य आदि की घटनाएं प्रासंगिक हैं। प्रासांगिक कथाएं भी प्रख्यात एवं उत्पाद्य होने से मिश्र कथावस्तु का निदर्शन हैं। नाट्यशास्त्रियों ने कथावस्तु को दिव्य एवं मर्त्य भेद से दो प्रकार की माना है, यहां यह कथा मृत्युलोक कथा होने से मर्त्य कथा ही है।

इस नाटक की कथावस्तु को अर्थप्रकृतियों एवं कार्यावस्था में भी विभक्त किया जा सकता है, जिनके संयोग से पंचसन्धियों का फलन स्पष्ट होगा। इस विन्दु पर यहां विशेष विवेचन प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

'सामवतम्' के नामकरण का औचित्य

"सामवतम्" शब्द की व्युत्पत्ति है-"सामवन्तम् अधिकृत्य कृतं नाटकम्।" व्युत्पत्ति में सामवत् शब्द से 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र से अण् प्रत्यय करके सामवत शब्द निष्पन्न होकर नपुंसकलिंग प्रथमा के एकवचन में "सामवतम्" रूप बनता है। सामवतम् का तात्पर्य है कि इस नाटक का कथानक सामवान् को लक्ष्य करके निबद्ध किया गया है।

सारस्वत का पुत्र सामवान् अपने मित्र सुमेधा के साथ पिता के निर्देश से विदर्भराज के पास विवाह लिए धन की इच्छा से जाता है, जहां होली के मद से मत्त दरबारियों के कुचक्र में उसे सुमेधा की पत्नी का वेष रखकर सीमन्तिनी की पूजा स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। स्त्रीरूप में परिवर्तित होने के पश्चात् सामवती प्रणय निवेदन में अग्रसर होती है और सारस्वत के विदर्भनगर के लौटने के बाद सुमेधा के साथ उसका विवाह होता है।

इस नाटक के कथानक में सामवान् का चरित्र सबसे अधिक विस्मयोत्पादक और मुख्य है, अतः इसी नाम के आधार पर कवि का इस नाटक को "सामवतम्" नाम देना सर्वथा उचित है।

चरित्रचित्रण

वस्तु अथवा कथावस्तु के विवेचन-विश्लेषण के बाद दूसरा महत्व पूर्ण विन्दु होता है-चरित्रचित्रण। इसका विशेष सम्बन्ध कथावस्तु से होता है। नाटक के महत्त्व में चरित्रचित्रण आधारभूत एवं स्थायी प्रभाव रखता है। सामान्य चरित्रचित्रण की अपेक्षा नाटककार के लिए यह आवश्यक होता है कि वह इन बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दें। वस्तुतः चरित्रचित्रण नाटक में संक्षिप्त हो और केन्द्रीभूत हो। वह पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने वाला होना चाहिए। नाटक में एक बिन्दु पर विवेचन के लिए नाटककार पर कुछ बाध्यताएं भी होती है, एक तो यह कि नाटक में स्थान की कमी होती है और दूसरे वह स्वयं की उसकी विशेषताओं का उल्लेख नहीं कर पाता। वह अर्थात् नाटककार पात्रों की

क्रियाओं और कथोपकथन द्वारा ही उसकी चरित्रगत विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए बाध्य है, परन्तु उसका यह चित्रण संक्षिप्त और केन्द्रीभूत होना आवश्यक है। नाटक में पात्रों का अभिनय किया जाता है। नाटककार स्वयं अलग खड़ा होकर पात्रों द्वारा ही घटनाओं और विचारों को उपस्थित करता है। इसलिए पात्रों का उभरा हुआ और प्रभावशाली व्यक्तित्व हो, उस नाटक को सफल बना सकता है। वस्तुतः एक नाटककार कथानक और संवादों द्वारा चरित्रचित्रण प्रस्तुत करता है। नाटक के कथानक में पात्र अनेक क्रियाएं करता है, परिणामतः अनेक घटनाएं घटती हैं, इनसे जो परिस्थितिया उत्पन्न होती हैं, वे पात्रों के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करती है, परन्तु यह अभिव्यक्ति केवल उसके व्यक्तित्व के बाह्य रूप को ही प्रकट करती है, आन्तरिक भावों की उद्‌भावना के लिए संवादो का प्रयोग अत्यावश्यक होता है। ये संवाद भी अनेक प्रकार के होते हैं, जिनमें श्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य तीन मुख्य भाग किए जाते हैं। तीनों प्रकार के संवादों से चरित्र की विशेषताएं परिलक्षित होती हैं। नाट्यसमीक्षकों का कथन है कि इन संवादों में श्राव्य से गूढ नियतश्राव्य से गूढतर और अश्राव्य से गूढतम आन्तरिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति होती है।

सामान्यतया नाटक में नायक और नायिका के अतिरिक्त कुछ ऐसे पात्रों का उपयोग किया जाता है, जो घटनाप्रवाह में सहायक होते हैं। सामवतम् नाटक की पात्र योजना संस्कृत नाटकों की सामान्य पद्धति से कुछ भिन्न है। इसमें नायक का मित्र ही नायिका बन गया है, नाटक का अंगीरस शृङ्गार है और नाटककार का इसकी रचना में विशेष उद्देश्य है। वस्तुतः नाटककार श्रीव्यास इस नाटक के माध्यम से ब्राह्मणों के प्रभाव और शक्ति उनकी पूजनीयता, योग शक्ति का चमत्कार, चरित्र का आदर्श, भक्ति की महिमा, भक्त का सामर्थ्य आदि भारतीय संस्कृति की इन विशेषताओं को आज के युग मे भी प्रभावशाली मानता है, इसीलिए उन्हें प्रदर्शित करना चाहता है, अतः एव उसने अपनी विचार-धारा के अनुरूप पौराणिक कथन का चयन किया है और उसे नाटकीय

रूप दिया है। व्यासजी के पात्रों की एक विशेषता यह देखी गई है कि वे संगीत और नृत्य कला में निपुण होते हैं, इसीलिए उन्होंने इस नाटक में भी इन्दुवदना, मदालसा, भावकलावती नामक नर्तकी एवं भृकुंशक के साथ-साथ वन्धुजीव, वसन्तक, भिक्षुक और ब्रह्मचारी के द्वारा भी संगीत प्रस्तुत करवाया है। इनका विदूषक भी कुछ भिन्न स्वभाव का है। यह नाटक शृङ्गाररस प्रधान होते हुए भी पुरुष पात्रों से अधिक मण्डित है। व्यासजी ने चरित्रचित्रण के लिए संस्कृत नाटकों मे प्रचलित "आकाशभाषित" और "स्वगत कथन" का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने पाश्चात्य नाट्य परम्परा की स्वगतोक्ति का भी आश्रय लिया है।

संवादतत्त्व

संवादतत्त्व नाटक का प्रधान और मूलभूत तत्त्व है, जिसका संकेत अभी किया जा चुका है और साथ ही उनका वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया जा चुका है। इनमें श्राव्य से अभिप्राय है इस प्रकार के संवाद, जिसको सभी पात्र सुन सकें। अश्राव्य से अभिप्राय है स्वगत अर्थात् जिन संवादों को बोलने वाले के अतिरिक्त रंगमंच पर उपस्थित अन्य कोई भी पात्र न सुन सके, केवल दर्शक ही सुन सके। नियत श्राव्य संवाद कुछ विशिष्ट पात्रों के लिए होते हैं, इनके लिए नाट्यशास्त्र में "जनान्तिक" और "अपवारित" का उल्लेख प्राप्त होता है। "आकाशभाषित" और "कर्णे निवेद्य" का भी नाट्यशास्त्र में उल्लेख मिलता है। व्यासजी ने अपने इस नाटक में इन समस्त संवादों का प्रयोग किया है। "सामवतम्" नाटक में संवादों के कुछ अन्य प्रयोग भी किए हैं, कुछ संवाद ऐसे हैं, जिनमें बोलने वाले भी सभी पात्र नेपथ्य से बोलते हैं। और कुछ संवाद ऐसे हैं जिनमें कुछ पात्र रंगमंच पर उपस्थित रहते हैं और कुछ नेपथ्य से बोलते हैं।

संवादों मे देशकाल का परिचय भी प्राप्त होता है, जैसे सुमेधा सामवान् से कहता है—

"पश्यैतत् विपिनम्"

सामवान् उत्तर देता है—

"सत्यं विदर्भविषयस्तत्"
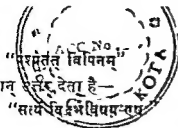
इन दोनों संवादों से दर्शक यह जान लेते हैं कि पात्र विदर्भदेश में पहुंच गए हैं। वार्तालाप के प्रसंग में पुरोहित कहता है—अपरञ्च 'श्वस्तु चन्द्रवासरोऽस्ति' इस कथन से परिज्ञात होता है कि होलिकोत्सव के दिन रविवार था और इसीलिए राजा उन ब्राह्मण बालकों को दूसरे दिन होने वाली व्रतकथा में सम्मिलित होने के लिए संकेत करता है।

संवादों द्वारा उद्देश्य की अभिव्यक्ति भी होती है। श्री व्यासजी के अन्य दो रूपक "मित्रालाप" तथा "धर्माधर्मकलकलम्" संवादरूप रूपक हैं और उनका उद्देश्य भी स्पष्ट है। "मित्रालाप." का उद्देश्य है कि धर्म की रक्षा केलिए सनातन धर्मसभाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार "धर्माधर्मकलकलम्" का उद्देश्य है भगवान् के नाम का संकीर्तन करने से अधर्म का नाश होता है।

इन उद्देश्यों की अभिव्यक्ति संवादों से होती है। "सामवतम्" नाटक के भी अनेक उद्देश्य हैं– इसमें प्रमुख उद्देश्य हैं। युवकों को विषय-लोलुप नहीं होना चाहिए। ब्राह्मणों को समाज में उचित सम्मान प्राप्त हो, भारतीय संस्कृति का स्वरूप सुरक्षित रहे, आदि अनेक गौण उद्देश्य भी हैं। संवादों से प्रसंगानुकूल भावनाओं की भी अभिव्यक्ति होती है। वसन्तमहोत्सव के समय राजसभा राजनर्तकी के हास्य विनोद का प्रसंग है। श्री व्यास जी के शब्दों में देखिए--

राजा :– अस्तु, किंचिद् वर्णय तावद् भावकलावनीम्।

वसन्तक :—जं आणवेदि वअस्समहाराओ। (इति स्वीकृत्य संस्कृतमाश्रित्य)

हंसीशोभा कलयति गतौ शशिवदनेयम्।

लोलन्मुक्ता प्रवालामलमणिरचितस्रग्धरा भाति यस्याः श्रीः।

अमात्य :—अहो किमिदं छन्दः ?

वसन्तकः—अच्चरिअं ण आणिदं मंअदा एदं विसमं छन्दो जा पडिपदं अणं जेव्व होदि।

अमात्य :—अथ प्रतिपदमेषां छन्दसां किं नाम ?

वसन्तक :—अमच्च ! पडिपदं सुमरिदं जेव्व।

व्यास जी के रूपकों में संवाद सुसंगठित, गतिशील और कथानक के अनुकूल हैं। इनमें संवाद मर्मस्पर्शी भी है। संवादों में विवाद और भाषण के तत्त्व भी प्राप्त होते हैं। उनमें संवाद भाव और वक्ताओं के बौद्धिक स्वर के अनुरूप है। इसी प्रकार संवादों की भाषा पात्रों के बौद्धिक व सामाजिक स्वर के अनुरूप है। "सामवतम्" नाटक में उच्च-वर्ग के पात्रों की भाषा संस्कृत तथा निम्नवर्ग की प्राकृत है। अनेक स्थानों पर नाट्यशास्त्रीय परम्पराओं की विसंगतियों का भी उल्लेख मिलता है। जैसे सूत्रधार द्वारा नटी को 'आर्ये' सम्बोधन न कर 'प्रिय' का सम्बोधन करना। इसी प्रकार भृत्यों द्वारा राजा को देव और अन्यों के द्वारा महाराजा कहा जाना चाहिए। परन्तु इस परम्परा का पालन इस नाटक में नहीं हुआ है। ये बिन्दु समीक्षा की दृष्टि से इतने महत्त्व-पूर्ण नहीं है। इस नाटक पर डा. कृष्णकुमार अग्रवाल द्वारा अपने शोध-प्रबन्ध "पं. अम्बिकादत्त व्यास—एक अध्ययन" में विस्तार से विवेचन विश्लेषण प्राप्त होता है एतदर्थ अध्येताओं को उस शोधप्रबन्ध का विशिष्ट अध्ययन करना चाहिए।

निदेशक
मानविकी पीठ, सह-आचार्य
संस्कृत विभाग, राज. विश्वविद्यालय, जयपुर